अमृत की दिशा

एक साधु के आश्रम में एक युवक बहुत समय से रहता था। फिर ऐसा संयोग आया कि युवक को आश्रम से विदा होना पड़ा। रात्रि का समय है, बाहर घना अंधेरा है। युवक ने कहा, रोशनी की कुछ व्यवस्था करने की कृपा करें।

उस साधु ने एक दीया जलाया, उस युवक के हाथ में दीया दिया, उसे सीढ़ियां उतारने के लिए खुद उसके साथ हो लिया। और जब वह सीढ़ियां पार कर चुका और आश्रम का द्वार भी पार कर चुका, तो उस साधु ने कहा कि अब मैं अलग हो जाऊं, क्योंकि इस जीवन के रास्ते पर बहुत दूर तक कोई किसी का साथ नहीं दे सकता है। और अच्छा है कि मैं इसके पहले विदा हो जाऊं कि तुम साथ के आदी हो जाओ। और इतना कह कर उस घनी रात में, उस अंधेरी रात में उसने उसके हाथ के दीये को फूंक कर बुझा दिया।

वह युवक बोला, यह क्या पागलपन हुआ? अभी तो आश्रम के हम बाहर भी नहीं निकल पाए, साथ भी छोड़ दिया और दीया भी बुझा दिया!

उस साधु ने कहा, दूसरों के जलाए हुए दीये का कोई मूल्य नहीं है। अपना ही दीया हो तो अंधेरे में काम देता है, किसी दूसरे के दीये काम नहीं देते हैं। खुद के भीतर से प्रकाश निकले तो रास्ता प्रकाशित होता है, और किसी तरह रास्ता प्रकाशित नहीं होता है।

तो मैं निरंतर सोचता हूं, लोग सोचते होंगे कि मैं आपके हाथ में कोई दीया दे दूंगा, जिससे आपका रास्ता प्रकाशित हो जाए, तो आप गलती में हैं। आपके हाथ में कोई दीया होगा तो मैं उसे बड़ी निर्ममता से फूंक कर बुझा दे सकता हूं। मेरी मंशा और मेरा इरादा यही है कि आपके हाथ में अगर कोई दूसरे का दिया हुआ प्रकाश हो तो मैं उसे फूंक दूं, उसे बुझा दूं। आप अंधेरे में अकेले छूट जाएं, कोई आपका संगी-साथी हो तो उसे भी छीन लूं। और तभी जब आपके पास दूसरों का जलाया हुआ प्रकाश न रह जाए और दूसरों का साथ न रह जाए, तब आप जिस रास्ते पर चलते हैं, उस रास्ते पर परमात्मा आपके साथ हो जाता है और आपकी आत्मा का दीया जलने की संभावना पैदा हो जाती है।

सारी जमीन पर ऐसा हुआ है। सत्य की तो बहुत खोज है, परमात्मा की बहुत चर्चा है, लेकिन, लेकिन ये सारे कमजोर लोग कर रहे हैं, जो साथ छोड़ने को राजी नहीं हैं और जो दीया बुझाने को राजी नहीं हैं। अंधेरे में जो अकेले चलने का साहस करता है बिना प्रकाश के, उसके भीतर साहस का प्रकाश पैदा होना शुरू हो जाता है। और जो सहारा खोजता है, वह निरंतर कमजोर होता चला जाता है।

भगवान को आप सहारा न समझें। और जो लोग भगवान को सहारा समझते होंगे, वे गलती में हैं। उन्हें भगवान का सहारा नहीं उपलब्ध हो सकेगा। कमजोरों के लिए इस जगत में कुछ

भी उपलब्ध नहीं होता। और जो शक्तिहीन हैं और जिनमें साहस की कमी है, धर्म उनका रास्ता नहीं है। दिखता उलटा है। दिखता यह है कि जितने कमजोर हैं, जितने साहसहीन हैं, वे सभी धार्मिक होते हुए दिखाई पड़ते हैं। कमजोरों को, साहसहीनों को, जिनकी मृत्यु करीब आ रही है उनको, घबड़ाहट में, भय में धर्म ही मार्ग मालूम होता है। इसलिए धर्म के आस-पास कमजोर और साहसहीन लोग इकट्ठे हो जाते हैं। जब कि बात उलटी है। धर्म तो उनके लिए है, जिनके भीतर साहस हो, जिनके भीतर शक्ति हो, जिनके भीतर बड़ी दुर्दम्य हिम्मत हो और जो कुछ अंधेरे में अकेले बिना प्रकाश के चलने का दुस्साहस कर सकें।

तो यह मैं प्राथमिक रूप से आपसे कहूं। दुनिया में यही वजह है कि जब से कमजोरों ने धर्म को चुना है, तब से धर्म कमजोर हो गया। और अब तो सारी दुनिया में कमजोर ही धार्मिक हैं। जिनमें थोड़ी सी हिम्मत है, वे धार्मिक नहीं हैं। जिनमें थोड़ा सा साहस है, वे नास्तिक हैं। और जिनमें साहस की कमी है, वे सब आस्तिक हैं।

भगवान की तरफ सारे कमजोर लोग इकट्ठे हो गए हैं, इसलिए दुनिया में धर्म नष्ट होता चला जा रहा है। इन कमजोरों को भगवान तो बचा ही नहीं सकता, ये कमजोर भगवान को कैसे बचाएंगे? कमजोरों की कोई रक्षा नहीं है, और कमजोर तो किसी की रक्षा कैसे करेंगे? सारी दुनिया में मनुष्य के इतिहास के इन दिनों में, इन क्षणों में, जो धर्म का अचानक ह्रास और पतन हुआ है, उसका बुनियादी कारण यही है।

तो मैं आपको कहूं, अगर आपमें साहस हो, तो ही धर्म के रास्ते पर चलने का मार्ग खुलता है। न हो, तो दुनिया में बहुत रास्ते हैं। धर्म आपके लिए नहीं हो सकता।

तो जो आदमी भय के कारण भयभीत होकर धर्म की तरफ आता हो, वह गलत आ रहा है। लेकिन सारे धर्म-पुरोहित तो आपको भय देते हैं--नरक का भय, स्वर्ग का प्रलोभन, पाप-पुण्य का भय और प्रलोभन, और घबड़ाहट पैदा करते हैं। वे घबड़ाहट के द्वारा आपमें धर्म का प्रेम पैदा करना चाहते हैं। और यह आपको पता है, भय से कभी प्रेम पैदा नहीं होता। और जो प्रेम भय से पैदा होता है, वह एकदम झूठा होता है, उसका कोई मूल्य नहीं होता। आप भगवान से डरते हैं, तो आप नास्तिक होंगे, आस्तिक नहीं हो सकते।

कुछ लोग कहते हैं कि जो भगवान से डरे, वह आस्तिक है। गॉड फियरिंग, जो ईश्वर से डरता हो, ईश्वर-भीरु हो, वह आस्तिक है।

यह बिलकुल झूठी बात है। ईश्वर से डरने वाला कभी आस्तिक नहीं हो सकता। क्योंकि डरने से कभी प्रेम पैदा नहीं होता। और जिसको हम भय करते हैं, उसे बहुत प्राणों के प्राण में घृणा करते हैं। यह तो संभव ही नहीं है। भय के साथ भीतर घृणा छिपी होती है। जो लोग

भगवान से भयभीत हैं, वे भगवान के शत्रु हैं, और उनके मन में भगवान के प्रति घृणा होगी।

तो मैं आपसे कहूं, ईश्वर से भय मत खाना। ईश्वर से भय खाने का कोई भी कारण नहीं है। इस सारे जगत में अकेला ईश्वर ही है जिससे भय खाने का कोई कारण नहीं है। और सारी चीजें भय खाने की हो सकती हैं। लेकिन हुआ उलटा है। और मैं बड़े-बड़े धार्मिकों को यह कहते सुनता हूं: ईश्वर का भय खाओ। और ईश्वर के भय खाने से पुण्य पैदा होगा। और ईश्वर के भय खाने से सच्चरित्रता पैदा होगी।

ये निहायत झूठी बातें हैं। भय से कहीं सदाचार पैदा हुआ है? जैसे हमने रास्तों पर पुलिसवाले खड़े कर रखे हैं, वैसे ही हमने परलोक में भगवान को खड़ा कर रखा है। वह एक बड़े पुलिसवाले की हैसियत से है। एक बड़े कांस्टेबल की हैसियत से है। भगवान को जिन्होंने कांस्टेबल बना दिया है, उन लोगों ने धर्म को बहुत नुकसान पहुंचाया है।

भगवान के प्रति भय से कोई विकसित नहीं होता। भगवान के प्रति तो बड़ा अभय चाहिए। और अभय का अर्थ क्या होगा? अभय का अर्थ होगा कि जो लोग श्रद्धा करते हैं, वे लोग भय के कारण श्रद्धा करते हैं। इसलिए श्रद्धा को मैं धर्म की आधारभूत शर्त नहीं मानता।

आपने सुना होगा कि जिसको धार्मिक होना है, उसे श्रद्धालु होना चाहिए।

गांधीजी को एक बहुत बड़े व्यक्ति ने जाकर पूछा कि मैं परमात्मा को जानना चाहता हूं तो क्या करूं? तो गांधीजी ने कहा, विश्वास करो। अगर वह मुझसे पूछता, मैं उससे यह नहीं कह सकता था कि विश्वास करो। गांधीजी की बात ठीक नहीं है। और उस आदमी ने गांधीजी को कहा कि विश्वास करूं? जिस बात को मैं जानता नहीं, विश्वास कैसे करूं? जिस बात से मैं परिचित नहीं हूं, उसे मानूं कैसे? गांधीजी ने कहा, बिना माने तो परमात्मा को जाना नहीं जा सकता। और मैं आपसे यह कहना चाहता हूं, जो मान लेते हैं, वे कभी नहीं जान सकेंगे। मैं आपसे यह कहता हूं कि जो परमात्मा को मान लेते हैं, वे कभी नहीं जान सकेंगे। यह आपका दुर्भाग्य होगा कि आप परमात्मा को मानते हों। क्योंकि मानने का अर्थ यह हुआ कि आपने जिज्ञासा और खोज के द्वार बंद कर दिए। मानने का अर्थ यह हुआ कि अब आपकी कोई तलाश नहीं है, आपकी कोई खोज नहीं है, अब आपकी कोई इंक्वायरी नहीं है। अब आप कुछ खोज नहीं रहे हैं, आप तो मान कर बैठ गए, आप तो मर गए।

श्रद्धा मृत्यु है। और संदेह? संदेह जीवन है। संदेह खोज है। तो मैं आपसे श्रद्धालु होने को नहीं, मैं आपसे संदेह करने को कहता हूं। लेकिन संदेह करने का यह मतलब मत समझ लेना कि मैं आपको ईश्वर को न मानने को कह रहा हूं। क्योंकि न मानना भी मानने का एक रूप है। आस्तिक भी श्रद्धालु होता है, नास्तिक भी श्रद्धालु होता है। आस्तिक की श्रद्धा है कि

ईश्वर है, नास्तिक की श्रद्धा है कि ईश्वर नहीं है। ये दोनों अज्ञानी हैं। इन दोनों की श्रद्धाएं हैं। इन दोनों की खोज नहीं है। संदेह तीसरी अवस्था है--आस्तिक और नास्तिक, दोनों की नहीं। संदेह तो स्वतंत्र चित्त की अवस्था है। वैसा व्यक्ति निर्भय होकर पूछता है: क्या है? और न वह परंपरा को मानता है, न वह रूढ़ि को मानता है, न वह शास्त्र को मानता है। वह किसी दूसरे के दीये को अंगीकार नहीं करता। वह यह कहता है कि खोजूंगा अपना दीया। वही साथी हो सकेगा। दूसरों के दीये कितनी दूर तक, कितनी सीमा तक साथ दे सकते हैं? और इस जीवन के रास्ते पर सच है यह कि अपने सिवाय, स्वयं के सिवाय कोई साथी नहीं है और। कितनी ही बड़ी भीड़ खड़ी हो, कोई साथी नहीं है।

महावीर को, बुद्ध को, कृष्ण को, क्राइस्ट को कितना ही ज्ञान मिला हो, एक रत्ती भर भी अपने ज्ञान को आपको देने में वे समर्थ नहीं हैं। इस जगत में ज्ञान दिया-लिया नहीं जा सकता, और सब चीजें ली-दी जा सकती हैं। और स्मरण रखें, जो नहीं लिया जा सकता, नहीं दिया जा सकता, उसका ही मूल्य है। जो लिया जा सकता है, दिया जा सकता है, उसका कोई मूल्य नहीं है। मैं तो ऐसा ही मानता हूं कि वही चीज संसार का हिस्सा है जिसको हम ले-दे सकते हैं। और वह चीज सत्य का हिस्सा हो जाती है जिसको लेना-देना संभव नहीं है।

कोई इस आशा में न रहे कि वह अपनी श्रद्धाओं से सत्य की या परमात्मा की खोज कर लेगा। साधारणतः यही हमें सिखाया जाता है। और इसके दुष्परिणाम हुए हैं। इसके दुष्परिणाम हुए हैं कि दुनिया में इतने लोग धार्मिक हैं, लेकिन धर्म कहां है? इतने मंदिर हैं, इतने मस्जिद हैं, लेकिन मंदिर-मस्जिद हैं कहां?

कल रात मैं बात करता था। एक संन्यासी के पास मेरा एक मित्र मिलने गया। उस संन्यासी ने कहा कि मंदिर जाते हो? उस मेरे मित्र ने कहा, मंदिर है कहां? हम तो जरूर जाएं, कोई मंदिर बता दे। वह संन्यासी हैरान हुआ। वह संन्यासी तो मंदिर में ही ठहरा हुआ था। उस संन्यासी ने कहा, यह जो देख रहे हो, यह क्या है? उस युवक ने कहा, यह तो मकान है, मंदिर कहां? यह तो मकान है। और उस युवक ने कहा कि सारी जमीन पर जिनको लोग मंदिर और मस्जिद कहते हैं, वे मकान हैं, मंदिर कहां हैं? और जिनको आप मूर्तियां कह रहे हैं, जिनको आप भगवान की मूर्तियां कह रहे हैं...

कैसी आत्मप्रवंचना है! कैसा धोखा है! मिट्टी और पत्थर को अपनी कल्पना से हम भगवान बना लेते हैं। जैसे कि हम भगवान के स्रष्टा हैं।

सुना था मैंने कि भगवान मनुष्यों का स्रष्टा है, देखा यह कि मनुष्य ही भगवान के स्रष्टा हैं। और हरेक आदमी अपनी-अपनी शक्ल में भगवान को बनाए हुए बैठे हैं। भगवान ने दुनिया को कभी बनाया या नहीं, यह तो संदेह की बात है, लेकिन आदमी ने भगवान की खूब

शक्लें बनाई हैं, यह स्पष्ट ही है। और जो भगवान आदमी का बनाया हुआ हो, उसे भगवान कहना आदमी के अज्ञान और अहंकार की घोषणा के सिवाय और कुछ भी नहीं है। जो आदमी का बनाया हुआ हो, उसे भगवान कहना आदमी के अज्ञान और अहंकार की घोषणा के सिवाय और क्या है? कैसा धोखा आदमी अपने को दे सकता है! यह हमारा निम्नतम अहंकार है कि हम सोचते हों कि जो हम बनाते हैं वह भगवान हो सकता है। जो नहीं बनाया जा सकता और जिसे कभी कोई नहीं बना सकेगा और जो सब बनाने के पहले है और सबके मिट जाने के बाद भी शेष रह जाता है, उसे हम भगवान कहते हैं।

उसका मंदिर कहां है? और उसकी मस्जिद कहां है? और उसके मानने वाले लोग कहां हैं? असल में उसका कोई मानना नहीं होता, उसका तो जानना होता है। मानना नहीं होता उसका कोई, उसका जानना होता है। अंधा प्रकाश को मान लेगा, तो उसके मानने में क्या मूल्य होगा? और वह प्रकाश की जो कल्पना करेगा, वह भी कैसी होगी? उसका प्रकाश से क्या संबंध होगा?

रामकृष्ण के पास एक दफा एक व्यक्ति आया और रामकृष्ण से उसने कहा, मुझे सत्य के संबंध में कुछ बताएं! और रामकृष्ण से उसने कहा कि मुझे परमात्मा के संबंध में कुछ कहें! रामकृष्ण ने कहा, मुझे तुम्हारे पास आंखें तो दिखाई नहीं देतीं, तुम समझोगे कैसे?
वह बोला, आंखें मेरे पास हैं।

रामकृष्ण ने कहा, अगर इन्हीं आंखों से परमात्मा और सत्य जाना जाता होता, तो परमात्मा और सत्य को जानने की जरूरत ही न रह जाती, सभी लोग उसे जानते। और भी आंखें हैं।

वह बोला, फिर भी कुछ तो समझाएं!

तो रामकृष्ण ने एक कहानी कही। वह कहानी बड़ी मीठी है। बड़ी अदभुत है। बड़ी प्राचीन कथा है। हजारों-हजारों ऋषियों ने उस कहानी को कहा है और आने वाले जमाने में भी हजारों-हजारों ऋषि उस कहानी को कहेंगे। उसमें बड़ी पवित्रता समाविष्ट हो गई है। बड़ी छोटी सी कहानी, बड़ी सरल सी ग्रामीण कहानी है।

रामकृष्ण ने कहा, एक गांव में एक अंधा था और उस अंधे को दूध से बहुत प्रेम था। उसके मित्र जब भी आते, उसे भेंट में दूध ले आते थे। उसने एक दफा अपने मित्रों को पूछा, इस दूध को मैं इतना प्रेम करता हूं, इतना प्रेम करता हूं कि मैं जानना चाहता हूं कि यह दूध कैसा है? क्या है? मित्रों ने कहा, बड़ा मुश्किल है, कैसे बताएं! फिर भी उस अंधे ने कहा, कुछ तो समझाएं, किसी तरह समझाएं कि यह दूध क्या है? कैसा है? उसके एक मित्र ने कहा कि दूध, बगुला होता है, बगुले के पंख जैसा सफेद है। अंधा बोला, मुझसे मजाक न

करें। बगुले को मैं जानता नहीं। उसके पंख की सफेदी को भी नहीं जानता। मैं कैसे समझूंगा कि दूध कैसा है? कुछ और सरल रास्ता अख्तियार करें तो शायद मैं समझ जाऊं। तो उसके मित्र ने कहा, कैसे समझाएं! तो एक मित्र ने कहा, बगुला जो होता है, वह घास काटने के हंसिए की तरह टेढ़ी उसकी गर्दन होती है। अंधा बोला, आप पहेलियां उलझा रहे हैं। मैंने कभी देखा नहीं हंसिया, मुझे पता नहीं वह कैसा टेढ़ा होता है। तीसरे मित्र ने कहा, इतनी दूर क्यों जाते हो? उसने अपने हाथ को मोड़ कर और उस अंधे को कहा, इस हाथ पर हाथ फेरो, इससे पता चल जाएगा कि हंसिया कैसा होता है। उसने उसके तिरछे हाथ पर हाथ फेरा। घूमा हुआ, मुड़ा हुआ हाथ अनुभव हुआ। वह अंधा नाचने लगा, वह बोला, मैं समझ गया, दूध मुड़े हुए हाथ की तरह होता है।

और रामकृष्ण ने कहा कि सत्य के संबंध में, जो नहीं जानते हैं, उनको बताई हुई सारी बातें ऐसी ही हो जाती हैं।

इसलिए आपसे सत्य के संबंध में न कभी कुछ कहा गया है और न कभी कुछ कहा जा सकेगा। आपसे यह नहीं कहा जा सकता कि सत्य क्या है, आपसे इतना ही कहा जा सकता है कि सत्य को कैसे जाना जा सकता है। सत्य तो नहीं बताया जा सकता, लेकिन सत्य की विधि विचार की जा सकती है। और उस विधि में श्रद्धा कोई हिस्सा नहीं है। खोज और अन्वेषण, जिज्ञासा और अभीप्सा। उसमें कोई चीज को मान लेने की कोई जरूरत नहीं है। और जब से दुनिया के धार्मिकों ने यह शुरुआत की कि भगवान को मान लो, स्वीकार कर लो, अंगीकार कर लो, तब से जो भी विवेकशील हैं, वे सब भगवान के विरोध में खड़े हो गए हैं। क्योंकि स्वीकार करना, अज्ञान में किसी चीज को मान लेना, कभी भी जिसका थोड़ा भी विचार जाग्रत हो और विवेक प्रबुद्ध हो, उसके लिए संभव नहीं होगा। अपने हाथों से धार्मिकों ने धर्म को विवेक-विरोधी बना कर खड़ा कर दिया है।

तो मैं आज की सुबह आपसे यह कहना चाहूंगा, धर्म का विवेक से कोई विरोध नहीं है, धर्म ही परिपूर्ण रूप से विवेक को प्रतिष्ठा देता है। और विवेक धर्म का खंडन नहीं है। विवेक के माध्यम से ही धर्म की परिपूर्ण उपलब्धि होती है। पर अपने भीतर विवेक को जगाना होता है, श्रद्धा को नहीं। अपने भीतर विवेक को जगाना होता है, श्रद्धा को नहीं। विवेक और श्रद्धा मनुष्य के भीतर दो दिशाएं हैं।

श्रद्धा का अर्थ है कि मैं मान लूं जो कहा जाए। दुनिया के जितने प्रचारवादी हैं, वे सब यही चाहते हैं कि वे जो कहें, आप मान लें। दुनिया के जितने प्रोपेगेंडिस्ट हैं, चाहे वे राजनैतिक हों, चाहे वे धार्मिक हों, वे चाहते हैं कि जो वे कहें, आप मान लें। उनकी कही हुई बात में आपमें कोई इनकार न हो। उनकी सबकी चेष्टाएं ये हैं कि आपका विवेक बिलकुल सो जाए और आपके भीतर एक अंधी स्वीकृति पैदा हो जाए।

इसका परिणाम यह हुआ है कि जो बहुत कमजोर थे, और जिनके भीतर विवेक की कोई संभावना नहीं थी, या जिनका विवेक बहुत क्षत था, क्षीण हो गया था, या जो साहस नहीं कर सकते थे किसी कारण से अपने विवेक को जगाने का, वे सारे लोग धर्म के पक्ष में खड़े रह गए। और जिनमें थोड़ा भी साहस था, वे सब धर्म के विरोध में चले गए। उन विरोधी लोगों ने विज्ञान को खड़ा किया और इन कमजोर लोगों ने धर्म को सम्हाले रखा। आज दोनों सामने खड़े हैं। और धर्म रोज क्षीण होता जाता है और विज्ञान रोज विकसित होता चला जाता है। इसे कोई देखता नहीं कि यह क्या हो रहा है? हम समझ रहे हैं कि विज्ञान नुकसान पहुंचा रहा है। विज्ञान नुकसान नहीं पहुंचा रहा है। धर्म के दरवाजे विवेकशील के लिए जब तक बंद रहेंगे, तब तक विवेकशील विज्ञान के पक्ष में खड़ा रहेगा।

धर्म के द्वार विवेकशील के लिए खुल जाने चाहिए और विवेकहीन के लिए बंद हो जाने चाहिए। श्रद्धा धर्म के लिए आधार नहीं रह जाना चाहिए। ज्ञान, विवेक, शोध धर्म का अंग हो जाना चाहिए। अगर यह हो सका, तो धर्म से बड़ा विज्ञान इस जगत में दूसरा नहीं है। और जिन लोगों ने धर्म को खोजा और जाना है, उनसे बड़े वैज्ञानिक नहीं हुए हैं। उनकी अप्रतिम खोज है। और मनुष्य के जीवन में उस खोज से बहुमूल्य कुछ भी नहीं है। उन सत्यों की थोड़ी सी भी झलक मिल जाए, तो जीवन अपूर्व आनंद और अमृत से भर जाता है।

तो मैं आपको कहूंगा: विवेक-जागरण; श्रद्धा नहीं। स्वीकार कर लेना नहीं; शोध करना। किसी दूसरे को अंगीकार कर लेना नहीं; स्वयं अपनी साधना और अपने पैरों पर खड़ा होना और जानना। चाहे अनेक जन्म लग जाएं। दूसरे के हाथ से लिया हुआ सत्य अगर एक क्षण में मिलता हो, तो भी किसी कीमत का नहीं है; और अगर अनेक जन्मों के श्रम और साधना से अपना सत्य मिलता हो, तो उसका मूल्य है। और जिनके भीतर थोड़ी भी मनुष्य की गरिमा है, जिनको थोड़ा भी गौरव है कि हम मनुष्य हैं, वे किसी के दिए हुए झूठे सत्यों को स्वीकार नहीं करेंगे।

लेकिन हम सब झूठे सत्यों को स्वीकार किए बैठे हैं। और हमने अच्छे-अच्छे सत्य ईजाद कर लिए हैं, जिनके माध्यम से हम अपनी श्रद्धा को जाहिर करते हैं। यह बहुत बड़ी प्रवंचना है। यह बहुत बड़ा डिसेप्शन है। यह समाप्त होना जरूरी है।

तो मैं आपसे कहूंगा, आपके भीतर बहुत बार श्रद्धा होती होगी कि मान लें। क्योंकि कमजोर मन है। कौन खुद खोजे? जितने आलसी हैं, जितने तामसी हैं, वे सब श्रद्धालु हो जाएंगे। क्योंकि कौन खुद खोजे? खुद की कौन चेष्टा करे? कृष्ण कहते हैं, तो ठीक ही होगा। और महावीर कहते हैं, तो ठीक ही होगा। क्राइस्ट कहते हैं, तो ठीक ही होगा। उन्होंने सारी खोज कर ली, हमें तो सिर्फ स्वीकार कर लेना है।

यह वैसा ही पागलपन है जैसे कोई आदमी दूसरों को प्रेम करते देख कर यह समझे कि मुझे प्रेम करने से क्या प्रयोजन? दूसरे लोग प्रेम कर रहे हैं, मुझे तो सिर्फ समझ लेना है, ठीक है। लेकिन दूसरों को प्रेम करते देख कर क्या आप समझ पाएंगे कि प्रेम क्या है? इस जगत में सारे लोग प्रेम करते हों और मैं देखता रहूं, तो भी मैं नहीं समझ पाऊंगा, जब तक कि वह आंदोलन मेरे हृदय में न हो। जब तक कि वे किरणें मुझे आंदोलित न कर जाएं, जब तक कि वे हवाएं मुझे न छू जाएं, तब तक मैं प्रेम को नहीं जान सकूंगा। सारी दुनिया प्रेम करती हो, तो किसी मतलब की नहीं है।

यह सारी दुनिया बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट से भरी पड़ी हो और मुझे सत्य का स्वयं अनुभव न होता हो, तो मुझे कुछ पता नहीं चलेगा। कोई रास्ता नहीं है। सारी दुनिया में आंख वाले हों और मैं अंधा हूं, तो क्या होगा? उनकी सबकी मिली हुई आंखें भी मेरी दो आंखों के बराबर मूल्य नहीं रखती हैं। इस दुनिया में दो अरब लोग हैं, तीन अरब लोग हैं। छह अरब आंखें हैं। एक अंधे आदमी की दो आंखों का जो मूल्य है, वह छह अरब आंखों का नहीं है।

तो मैं आपको यह कहना चाहूंगा, अपने भीतर श्रद्धा की जगह विवेक को जगाने के उपाय करने चाहिए। और विवेक को जगाने के क्या नियम हो सकते हैं, उस संबंध में थोड़ी सी बात आपसे कहूं।

पहली बात, जन्म के साथ प्रत्येक मनुष्य को, दुर्भाग्य से, किसी न किसी धर्म में पैदा होने का मौका मिलता है। जन्म के साथ हर मनुष्य को, दुर्भाग्य से, किसी न किसी धर्म में पैदा होने का मौका मिलता है। दुनिया अच्छी होगी, तो हम यह दुर्भाग्य कम कर सकेंगे। लेकिन अभी यह है। और तब परिणाम यह होता है कि जब उसमें विवेक का कोई जागरण नहीं होता, बाल-मन होता है, चुपचाप चीजें स्वीकार कर लेने की मनःस्थिति होती है, तब सारे धर्मों के सत्य उसके मन में प्रविष्ट करा दिए जाते हैं। तब उसके मन में सारी बातें डाल दी जाती हैं। वह उन पर श्रद्धा करने लगता है।

मैं एक गांव में गया, तो वहां एक अनाथालय मैं देखने गया। वहां कोई पचास बच्चे थे। उस अनाथालय के संयोजक ने मुझे कहा कि इनको हम धार्मिक शिक्षा भी देते हैं। मुझे यह समझ कर कि मैं साधु जैसा हूं, उसने सोचा, ये खुश होंगे कि हम इनको धर्म की शिक्षा देते हैं। मैंने कहा, इससे बुरा काम दूसरा नहीं है दुनिया में। क्योंकि धर्म की शिक्षा आप क्या देंगे? धर्म की कोई शिक्षा होती है? धर्म की साधना होती है, शिक्षा नहीं होती।

अभी मैं सुनता हूं कि एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक ने वहां अमरीका में एक संस्था डाली है, जहां वे प्रेम की शिक्षा देते हैं। यह तो बड़ी बेवकूफी की बात है। यह तो बड़ी मूर्खतापूर्ण बात है। और उस संस्था से जो लोग प्रेम की शिक्षा लेकर निकलेंगे, इस जगत में वे प्रेम कभी नहीं कर पाएंगे, इसको स्मरण रखें। वे कैसे प्रेम करेंगे? वे जब भी प्रेम करेंगे, तभी शिक्षा बीच में आ जाएगी। और जब उनके भीतर प्रेम उठेगा, तब उनके सिखाए हुए ढंग बीच में आ जाएंगे और वे अभिनय करने लगेंगे, प्रेम नहीं कर सकेंगे। जब भी उनके हृदय में कुछ

कहने को होगा, तब वे उन किताबों को कहेंगे, जिनमें लिखा हुआ है कि प्रेम की बातें कैसे कहनी चाहिए। और तब वैसा आदमी जो प्रेम में शिक्षित हुआ है, प्रेम से वंचित हो जाएगा। और यही मैं कहता हूं, जो आदमी धर्म में शिक्षित होगा, वह धर्म से वंचित हो जाएगा, क्योंकि धर्म तो प्रेम से भी बड़ी गूढ और बड़ी रहस्य की चीज है। प्रेम को तो कोई सीख भी ले, धर्म को कैसे सीख सकेगा?

धर्म की कोई लघनग नहीं होती। यह कोई गणित थोड़े ही है, कोई फिजिक्स थोड़े ही है, कोई भूगोल थोड़े ही है कि आपने समझा दिया और लोगों ने याद कर लिया और परीक्षा दे दी। धर्म की कोई परीक्षा हो सकती है? अगर धर्म की परीक्षा नहीं हो सकती, तो शिक्षा भी नहीं हो सकती। जिस चीज की परीक्षा हो सके, उसकी ही शिक्षा हो सकती है।

तो मैंने उनसे कहा, यह तो आप बड़ा बुरा कर रहे हैं। इन बच्चों के मन में बड़ा नुकसान पहुंचा रहे हैं। क्या शिक्षा देते होंगे?

वे बोले, आप क्या कहते हैं! अगर धर्म की शिक्षा न होगी, तो लोग बिलकुल बिगड़ जाएंगे। मैंने कहा, दुनिया में इतनी धर्म की शिक्षा है, लोग बने हुए दिखाई पड़ रहे हैं? दुनिया में इतनी धर्म की शिक्षा है--जितनी बाइबिल बिकती है, कोई किताब नहीं बिकती। जितनी गीता पढ़ी जाती है, कोई किताब नहीं पढ़ी जाती। जितने रामायण के पाठ होते हैं, कौन सी किताब के होते होंगे? कितने संन्यासी हैं! कितने साधु हैं! एक-एक धर्म के कितने प्रचारक हैं! कैथलिक ईसाइयों के प्रचारकों की संख्या ग्यारह लाख है। और इसी तरह सारी दुनिया के धर्म-प्रचारकों की संख्या है। यह इतना प्रचार, इतनी शिक्षा, इसके बाद आदमी कोई बना हुआ तो मालूम नहीं होता। इससे बिगड़ी और शक्ल क्या होगी जो आदमी की आज है?

तो मैं आपको यह कहना चाहूं, धर्म-शिक्षा से आदमी नहीं ठीक होगा। मैंने उनसे कहा, यह तो गलत बात है। फिर भी मैं समझूं, आप क्या शिक्षा देते हैं? उन्होंने कहा, आप इनसे कोई भी प्रश्न पूछिए, ये हर प्रश्न का उत्तर देंगे। मैंने कहा, यही दुर्भाग्य है। सारी दुनिया में किसी से भी पूछिए, ईश्वर है? कोई भी कह देगा, है। यही खतरा है। जिनको कोई पता नहीं है, वे कहते हैं, है। और इसका परिणाम यह होगा कि वे धीरे-धीरे अपने इस उत्तर पर खुद विश्वास कर लेंगे कि ईश्वर है, और तब उनकी खोज समाप्त हो जाएगी।

मैंने उन बच्चों को पूछा, आत्मा है? वे सारे बच्चे बोले, है। उनके संयोजक ने पूछा, आत्मा कहां है? उन सबने अपने हृदय पर हाथ रखा और कहा, यहां। मैंने एक छोटे बच्चे से पूछा, हृदय कहां है? वह बोला, यह हमें सिखाया नहीं गया। यह हमें बताया नहीं गया।

मैं उन संयोजक को कहता था कि ये बच्चे जब बड़े हो जाएंगे, ये यही बातें दोहराते रहेंगे, और जब भी प्रश्न उठेगा, आत्मा है? तो यांत्रिक, मेकेनिकल रूप से इनके हाथ भीतर चले जाएंगे और ये कहेंगे, यहां है। यह बिलकुल झूठा हाथ होगा, जो सीखे की वजह से चला जाएगा।

आपके जितने उत्तर हैं परमात्मा के संबंध में, धर्म के संबंध में, वे सब सीखे हुए हैं।

विवेक-जागरण के लिए पहली शर्त है: जो भी सीखा हुआ हो सत्य के संबंध में, उसे कचरे की भांति बाहर फेंक देना। जो आपके मां-बाप ने, आपकी शिक्षा ने, आपकी परंपरा ने, आपके समाज ने सिखाया हो, उसे कचरे की तरह बाहर फेंक देना। धर्म इतनी ओछी बात नहीं है कि कोई सिखा सके। इसमें आपके मां-बाप का, आपकी परंपरा का अपमान नहीं कर रहा, इसमें मैं धर्म की प्रतिष्ठा कर रहा हूं, स्मरण रखें। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि परंपरा बुरी बात है, मैं यह कह रहा हूं कि धर्म इतनी बड़ी बात है कि परंपरा नहीं सिखा सकती। मैं यह कह रहा हूं कि धर्म इतनी बड़ी बात है कि कोई मां-बाप नहीं सिखा सकते। मैं यह कह रहा हूं कि धर्म इतनी बड़ी बात है कि कोई पाठशाला नहीं सिखा सकती। जो लोग समझते हैं कि सिखाया जा सकता है धर्म, उनको धर्म की महिमा का पता नहीं है।

तो पहली बात है: जिज्ञासा। स्वतंत्र जिज्ञासा। और जो सिखाया गया है, उसे कचरे की भांति फेंक देने की जरूरत है। इसके लिए साहस चाहिए। अपने वस्त्र छोड़ कर नग्न हो जाने के लिए उतने साहस की जरूरत नहीं है, जितनी साहस की जरूरत उन मन के वस्त्रों को छोड़ने के लिए है जो परंपरा आपको सिखा देती है, और उन ढांचों को तोड़ने के लिए है जो समाज आपको दे देता है। हम सबके मन बंधे हुए हैं एक ढांचे में। और उस ढांचे में जो बंधा है वह सत्य की उड़ान को नहीं ले सकेगा। इसके पहले कि कोई सत्य की तरफ अग्रसर हो, उसे सारे ढांचे तोड़ कर मिटा देने होंगे। मनुष्य ने जितने भी विचार परमात्मा के संबंध में सिखाए हैं, उसे उन्हें छोड़ देना होगा।

एक रात को कुछ शराबी एक नदी पर गए थे। और उन्होंने सोचा कि पूर्णिमा की रात है, वे नाव में बैठ कर यात्रा करें। वे नाव में बैठे, उन्होंने पतवार चलाई और उन्होंने समझा कि नाव चलनी शुरू हो गई है। वे रात भर नाव चलाते रहे। उन्होंने सोचा कि बड़ी यात्रा हो गई। सुबह जब ठंडी हवाएं चलने लगीं और उनका नशा थोड़ा उतरा, तो उनमें से एक ने कहा कि हम देखें तो कि कितनी दूर निकल आए? अब वापस लौटें। वे घाट पर उतरे और उन्होंने देखा कि अरे, रात भर मेहनत व्यर्थ गई। वे नाव को छोड़ना भूल गए थे। वह नाव वहीं खूंटे से बंधी हुई थी। चलाई उन्होंने रात भर और समझा कि यात्रा हो रही है, लेकिन नाव को खूंटे से छोड़ना भूल गए थे।

वे लोग, जिन्होंने अपनी आत्मा की नाव को सत्य या परमात्मा की तरफ लगाया हो, अगर उन्होंने परंपरा और समाज के खूंटे से अपने को नहीं छोड़ा, एक दिन वे पाएंगे कि नाव वहीं खड़ी हुई है। एक दिन जब वे तट पर उतर कर देखेंगे तो पाएंगे कि जीवन व्यर्थ गया। हमने पतवार तो बहुत खेई, लेकिन नाव एक इंच आगे नहीं जा सकी। नाव को गतिमान करने के लिए चलाना ही काफी नहीं, छोड़ना भी जरूरी है।

तो इसके पहले कि आप सत्य की तरफ चलें, आप अपने को छोड़ें। जो छोड़ना भूल जाएगा, उसका चलना सार्थक नहीं होगा। आपने कहीं अपने को छोड़ा है क्या? मैं तो हैरान हूं। सत्य की तरफ जो लोग उत्सुक होते हैं, वे उतने ही जोर से बांधने लगते हैं, छोड़ने की बजाय। अगर वे जैन हैं, तो वे और ज्यादा जैन होने लगते हैं। अगर वे हिंदू हैं, तो और ज्यादा

हिंदू होने लगते हैं। अगर मुसलमान हैं, तो और ज्यादा मुसलमान होने लगते हैं। वे उस खूंटे पर जंजीर को और गहरा करने लगते हैं।

सत्य की तरफ जिसे जाना है, उसे हिंदू होने का मौका कहां है? जिसे सत्य की तरफ जाना है, वह जैन कैसे हो सकता है? जिसे परमात्मा में उत्सुकता है, उसकी उत्सुकता मुसलमान में और ईसाइयत में कैसे हो सकती है? और अगर ये उसकी उत्सुकताएं हैं, तो ये तो खूंटे हैं, और ये उसकी नाव को आगे नहीं जाने देंगे।

विवेक-जागरण के लिए पहली जरूरत है उन खूंटों से अपने को छोड़ लें जिनसे समाज ने आपको बांध दिया है। समाज की जरूरत है बांधने के लिए। समाज को मुश्किल पड़ेगी अगर आप बंधे हुए न हों। समाज का सारा ढांचा दिक्कत में पड़ जाएगा अगर वह आपको न बांधे। इसलिए समाज आपको बांधने की चेष्टा करता है। समाज की व्यवस्था, समाज की सुव्यवस्था इस पर निर्भर है कि आप बंधे हुए हों। हर आदमी खूंटे से बंधा हुआ हो, समाज व्यवस्थित होगा। समाज अपनी व्यवस्था के लिए आपका बलिदान चढ़ा देता है। समाज व्यक्तियों का बलिदान कर लेता है व्यवस्था के लिए। इसलिए जितना समाज व्यवस्थित होगा, व्यक्तियों का उतना ही बलिदान करना जरूरी हो जाएगा।

सोवियत रूस, या हिटलर जैसे लोगों ने व्यक्तियों को बिलकुल समाप्त कर दिया, क्योंकि समाज की पूरी व्यवस्था उनको करनी है। उन्होंने व्यक्तियों को खूंटों से बांधा ही नहीं, व्यक्तियों को खूंटे बना दिया। अब उनके छूटने की गुंजाइश भी नहीं रखी।

समाज की जरूरत है कि व्यक्ति बिलकुल मर जाए। वह बिलकुल मशीन की तरह व्यवहार करे। समाज जो कहे, उस तरफ जाए। समाज जो व्यवस्था दे, उसको माने। समाज को सत्य से कोई मतलब नहीं है, समाज को तो सुव्यवस्था से मतलब है। इसलिए समाज की जरूरतें हैं, वह आपको बांधेगा ही। लेकिन एक सीमा पर आपकी अपनी जरूरत है सत्य, और आपको छोड़ना पड़ेगा। छोड़ने का मतलब यह नहीं है कि आप उच्छृंखल हो जाएंगे। छोड़ने का यह मतलब नहीं है कि आप स्वच्छंद हो जाएंगे। छोड़ने का मतलब यह नहीं है कि आप समाज-विरोधी हो जाएंगे। छोड़ने का मतलब केवल इतना है कि आपकी चित्त की भूमिका जंजीरों से बंधी नहीं रह जाएगी। आप किन्हीं धारणाओं में अपने को कैद नहीं करेंगे। किन्हीं कंसेप्ट्स में अपने को बांधेंगे नहीं। और किन्हीं संस्कारों को आप अज्ञान में स्वीकार नहीं करेंगे। आप खोज में संलग्न होंगे। आप आंतरिक जिज्ञासा के लोक में प्रवेश करने में लगे होंगे। और धीरे-धीरे वहां जितनी गति आपकी होगी और जो अनुभव आपको होंगे, वे ही अनुभव आपके पथ के प्रदीप बनेंगे। वे ही अनुभव आपके लिए प्रकाश बनेंगे।

तो पहली जरूरत है, समाज ने जो ढांचे और संस्कार दिए हैं, उनको कोई व्यक्ति क्षीण करे, उनको छोड़े मन से। लेकिन इतना ही काफी नहीं है। समाज के ढांचे क्षीण हो जाएं तो मन उड़ने को मुक्त हो जाता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उड़ान शुरू हो गई। उड़ने की संभावना पैदा हो जाती है। समाज के ढांचे, परंपरा, शास्त्र, संप्रदाय, इनके द्वारा प्रचारित संस्कार, इनको छोड़ कर चेतना इतनी हलकी हो जाती है कि उड़ सकती है। फिर

साथ दूसरी चेष्टा अंतर्दृष्टि के लिए करनी होती है। एक तो खूंटे से छोड़ देना और फिर अंतर्दृष्टि की पतवार चलानी होती है, तब नाव में गति होती है।

अंतर्दृष्टि की पतवार का क्या अर्थ है?

अंतर्दृष्टि की पतवार का अर्थ है कि चीजों को, जैसी वे दिखाई पड़ती हैं, उनको वैसी ही मत मान लेना। उनके भीतर बहुत कुछ है।

एक आदमी मर जाता है। हमने कहा, आदमी मर गया। जिस आदमी ने इस बात को यहीं समझ कर चुप हो गया, उसके पास अंतर्दृष्टि नहीं है।

गौतम बुद्ध एक महोत्सव में भाग लेने जाते थे। रास्ते पर उनके रथ में उनका सारथी था और वे थे। और उन्होंने एक बूढ़े आदमी को देखा। वह उन्होंने पहला बूढ़ा देखा। जब गौतम बुद्ध का जन्म हुआ, तो ज्योतिषियों ने उनके पिता को कहा कि यह व्यक्ति बड़ा होकर या तो चक्रवर्ती सम्राट होगा और या संन्यासी हो जाएगा। उनके पिता ने पूछा कि मैं इसे संन्यासी होने से कैसे रोक सकता हूं? तो उस ज्योतिषी ने बड़ी अदभुत बात कही थी। वह समझने जैसी है। उस ज्योतिषी ने कहा, अगर इसे संन्यासी होने से रोकना है, तो इसे ऐसे मौके मत देना जिसमें अंतर्दृष्टि पैदा हो जाए। पिता बहुत हैरान हुए कि हम...। यह क्या बात हुई? उनके पिता ने पूछा। ज्योतिषी ने कहा, इसको ऐसे मौके मत देना कि इसको अंतर्दृष्टि पैदा हो जाए। तो पिता ने कहा, यह तो बड़ा मुश्किल हुआ, क्या करेंगे? उस ज्योतिषी ने कहा कि इसकी बगिया में फूल कुम्हलाने के पहले अलग कर देना। यह कभी कुम्हलाया हुआ फूल न देख सके। क्योंकि यह कुम्हलाया हुआ फूल देखते ही पूछेगा, क्या फूल कुम्हला जाते हैं? और यह पूछेगा, क्या मनुष्य भी कुम्हला जाते हैं? और यह पूछेगा, क्या मैं भी कुम्हला जाऊंगा? और इसमें अंतर्दृष्टि पैदा हो जाएगी। इसके आस-पास बूढ़े लोगों को मत आने देना। अन्यथा यह पूछेगा, ये बूढ़े हो गए, क्या मैं भी बूढ़ा हो जाऊंगा? यह कभी मृत्यु को न देखे। पीले पत्ते गिरते हुए न देखे। अन्यथा यह पूछेगा, पीले पत्ते गिर जाते हैं, क्या मनुष्य भी एक दिन पीला होकर गिर जाएगा? क्या मैं गिर जाऊंगा? और तब इसमें अंतर्दृष्टि पैदा हो जाएगी।

पिता ने बड़ी चेष्टा की और उन्होंने ऐसी व्यवस्था की कि बुद्ध के युवा होते-होते तक उन्होंने पीला पत्ता नहीं देखा, कुम्हलाया हुआ फूल नहीं देखा, बूढ़ा आदमी नहीं देखा, मरने की कोई खबर नहीं सुनी। फिर लेकिन यह कब तक हो सकता था? इस दुनिया में किसी आदमी को कैसे रोका जा सकता है कि मृत्यु को न देखे? कैसे रोका जा सकता है कि पीले पत्ते न देखे? कैसे रोका जा सकता है कि कुम्हलाए हुए फूल न देखे?

लेकिन मैं आपसे कहता हूं, आपने अभी मरता हुआ आदमी नहीं देखा होगा, और अभी आपने पीला पत्ता नहीं देखा, अभी आपने कुम्हलाया हुआ फूल नहीं देखा। बुद्ध को उनके बाप ने रोका बहुत मुश्किल से, तब भी एक दिन उन्होंने देख लिया। आपको कोई नहीं रोके हुए है और आप नहीं देख पा रहे हैं। अंतर्दृष्टि नहीं है, नहीं तो आप संन्यासी हो जाते। यानी सवाल यह है, क्योंकि उस ज्योतिषी ने कहा था कि अगर अंतर्दृष्टि पैदा हुई, तो यह

संन्यासी हो जाएगा। तो जितने लोग संन्यासी नहीं हैं, मानना चाहिए, उन्हें अंतर्दृष्टि नहीं होगी।

खैर, एक दिन बुद्ध को दिखाई पड़ गया। वे यात्रा पर गए एक महोत्सव में भाग लेने और एक बूढा आदमी दिखाई पड़ा। और उन्होंने तत्क्षण अपने सारथी को पूछा, इस मनुष्य को क्या हो गया?

उस सारथी ने कहा, यह वृद्ध हो गया।

बुद्ध ने पूछा, क्या हर मनुष्य वृद्ध हो जाता है?

उस सारथी ने कहा, हर मनुष्य वृद्ध हो जाता है।

बुद्ध ने पूछा, क्या मैं भी?

उस सारथी ने कहा, भगवन, कैसे कहूं! लेकिन कोई भी अपवाद नहीं है। आप भी हो जाएंगे।

बुद्ध ने कहा, रथ वापस लौटा लो, रथ को वापस ले लो।

सारथी बोला, क्यों?

बुद्ध ने कहा, मैं बूढा हो गया।

यह अंतर्दृष्टि है। बुद्ध ने कहा, मैं बूढा हो गया। अदभुत बात कही। बहुत अदभुत बात कही। और वे लौट भी नहीं पाए कि उन्होंने एक मृतक को देखा और बुद्ध ने पूछा, यह क्या हुआ?

उस सारथी ने कहा, यह बुढापे के बाद का दूसरा चरण है, यह आदमी मर गया।

बुद्ध ने पूछा, क्या हर आदमी मर जाता है?

सारथी ने कहा, हर आदमी।

और बुद्ध ने पूछा, क्या मैं भी?

और सारथी ने कहा, आप भी। कोई भी अपवाद नहीं है।

बुद्ध ने कहा, अब लौटाओ या न लौटाओ, सब बराबर है।

सारथी ने कहा, क्यों?

बुद्ध ने कहा, मैं मर गया।

यह अंतर्दृष्टि है। चीजों को उनके ओर-छोर तक देख लेना। चीजें जैसी दिखाई पड़ें, उनको वैसा स्वीकार न कर लेना, उनके अंतिम चरण तक। जिसको अंतर्दृष्टि पैदा होगी, वह इस भवन की जगह खंडहर भी देखेगा। जिसे अंतर्दृष्टि होगी, वह यहां इतने जिंदा लोगों की जगह इतने मुर्दा लोग भी देखेगा--इन्हीं के बीच, इन्हीं के साथ। जिसे अंतर्दृष्टि होगी, वह जन्म के साथ ही मृत्यु को भी देख लेगा, और सुख के साथ दुख को भी, और मिलन के साथ विछोह को भी।

अंतर्दृष्टि आर-पार देखने की विधि है। और जिस व्यक्ति को सत्य जानना हो, उसे आर-पार देखना सीखना होगा। क्योंकि परमात्मा कहीं और नहीं है, जिसे आर-पार देखना आ जाए उसे यहीं परमात्मा उपलब्ध हो जाता है। वह आर-पार देखने के माध्यम से हुआ दर्शन है।

एक बहुत बड़ा राजा हुआ। वह एक रात सोया हुआ था। वह बगदाद में हुआ। एक मुसलमान राजा था। वह अपने महल में रात सोया हुआ था। और उसने अपने ऊपर छप्पर पर किसी के चलने की आवाज सुनी। तो उसने सोचा, यह क्या पागलपन है! इतनी रात को महल के छप्पर पर कौन चलता है? उसने चिल्ला कर पूछा कि आधी रात है, यह कौन ऊपर छत पर चल रहा है? यह कौन ऊपर छप्पर पर चल रहा है? एक आदमी ने ऊपर से कहा, मेरा ऊंट खो गया है, उसे खोजता हूं। वह राजा हैरान हुआ। उसने कहा, पागल मालूम होते हो। ऊंट कहीं छप्परों पर खोते हैं? मकानों के छप्परों पर ऊंट खोते हैं? उस आदमी ने कहा कि अगर मकानों के छप्परों पर ऊंट नहीं खो सकते, और अगर मकानों के छप्परों पर ऊंट नहीं खोजे जा सकते, तो तुम जहां राज-सिंहासन पर परमात्मा को खोज रहे हो, कभी सोचा कि मकान पर तो ऊंट खो भी जाएं और मिल भी जाएं, राज-सिंहासन पर परमात्मा नहीं मिलेगा।

राजा बहुत हैरान हुआ। उसने बहुत कोशिश की कि उस फकीर को, कौन आदमी था जिसने ऊपर से यह बात कही, खोजवाया जाए। उसने बहुत ढुंढ़वाया, लेकिन उसका कोई पता नहीं चला। दिन बीते, वह बात भूल गया।

फिर एक दिन एक संन्यासी, एक फकीर दरबार में आया। वह इतना महिमायुक्त था, इतना प्रभावी था कि संतरी उसे रोक नहीं सके। उससे पूछ नहीं सके कि आप कैसे जाते हैं? और किसकी आज्ञा से? वह भीतर प्रविष्ट हुआ और दरबार में पहुंच गया। सारे दरबारी घबड़ा कर खड़े हो गए, खुद राजा भी खड़ा हो गया। लेकिन उसने पूछा कि कौन हैं आप और कैसे आए? क्या प्रयोजन है?

उस फकीर ने कहा, इस सराय में कुछ दिन ठहरना चाहता हूं।

उस राजा ने कहा, सराय? अशिष्ट बात बोल रहे हो। थोड़े शिष्टाचार का भी बोध नहीं। यह मेरा महल है, मेरा निवास है।

वह फकीर जोर से हंसने लगा और बोला, इसके पहले भी मैं आया था, लेकिन तुमको नहीं पाया था। तब दूसरा आदमी सिंहासन पर था। उसके पहले भी आया था, तब उसको भी नहीं पाया था, तीसरा आदमी सिंहासन पर था। यूं मैं कई दफे आया, हर दफा आदमी बदल जाते हैं, इसलिए क्षमा करें, मुझे ऐसा शक हुआ कि यह सराय है, यहां लोग आते हैं और जाते हैं। और इसलिए मैंने कहा कि इस सराय में मुझे ठहरने का कोई अवकाश मिल जाए तो बड़ी कृपा हो।

राजा ने उठ कर उसके पैर पकड़ लिए और कहा कि यह निश्चित हो गया, जिस आदमी को मैं खोजता था वह तुम्हीं हो सकते हो। क्या उस रात मेरे छप्पर पर ऊंट तुम्हीं खोजते थे? क्योंकि तुम्हारे सिवाय और कौन खोजेगा?

वह फकीर बोला, मैं ही था, और आया था कि तुम्हें शायद अंतर्दृष्टि पैदा हो जाए। और आज फिर आया हूं कि शायद अंतर्दृष्टि पैदा हो जाए।

उस राजा ने कहा, बात समझ में आ गई। और उसने पीछे लौट कर नहीं देखा, वह महल के बाहर हो गया।

उससे जब भी लोग पूछते कि ऐसा तुमने इतना जल्दी क्यों किया? उसने कहा, अंतर्दृष्टि जब पैदा होती है तो जल्दी और देर का कोई सवाल नहीं है।

आर-पार देखने की जरूरत है, तो मकान सराय दिखाई पड़ेगा और आप चलते-फिरते हुए मुर्दे मालूम होंगे। खुद अपने को मुर्दे मालूम होंगे। क्योंकि जो चीज मर जानी है, वह आज ही मरी हुई होनी चाहिए। जो चीज मर जानी है, वह हमेशा मर रही है धीरे-धीरे।

मैं जिस दिन पैदा हुआ, उसी दिन से मर रहा हूं। एक दिन यह मरने की प्रक्रिया पूरी हो जाएगी, मैं समाप्त हो जाऊंगा। उसे लोग मृत्यु कहेंगे। लेकिन जो देखता है, वह जान रहा है कि मैं प्रतिक्षण मर रहा हूं। नहीं तो मृत्यु घटित कैसे होगी? मरने का क्रमिक विकास ही, ग्रेजुअल ग्रोथ, वह जो रोज बढ़ती हो रही है मृत्यु की, वही एक दिन मरण हो जाएगा। हम यहां बैठे जितने लोग हैं, मर रहे हैं। यहां घंटे भर हम मर गए, घंटा मर गया हमारे भीतर। जो जीवन में आर-पार देखेगा, उसे अनेक बातें दिखाई पड़नी शुरू होंगी। जिज्ञासा मुक्त हो और अंतर्दृष्टि की तलाश रहे, और किसी चीज को हम जैसी वह दिखाई पड़ती हो, उसका चेहरा जैसा मालूम पड़ता हो, वैसा ही स्वीकार न कर लें, उसके भीतर प्रवेश करें और देखें, तो यह सारा जगत संन्यास का उपदेश बन जाता है। यह सारा जगत परित्याग का उपदेश बन जाता है। यह सारा जगत धर्म का शिक्षालय हो जाता है। और जो आर-पार देखने में समर्थ हो जाता है, जिसकी शिक्षा, जिसकी जीवन-शिक्षा और अनुशासन आर-पार देखने में समर्थ हो जाता है, वह व्यक्ति घटनाओं के पीछे उसको देखने लगता है जिस पर कोई घटना नहीं घटती। वह व्यक्ति परिवर्तन के पीछे उसको अनुभव करने लगता है जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। वह व्यक्ति जड़ता के पीछे उसको देखने लगता है जो चैतन्य है। उस व्यक्ति की जैसे-जैसे क्षमता गहरी होती जाती है, वह अनित्य के पीछे नित्य को और सामयिक के पीछे शाश्वत का दर्शन करने लगता है। जब उसे सारे तथ्यों के पीछे वह शाश्वत मिल जाता है, वह सनातन मिल जाता है, जिसके पार देखना असंभव है, उस बिंदु का नाम ईश्वर है--जिसके पार देखना असंभव है। जिसके पार देखा जा सकता है उसका नाम संसार है और जिसके पार नहीं देखा जा सकता उसका नाम सत्य है।

जहां तक हमारी दृष्टि प्रवेश कर सकती है, जहां तक दृष्टि को गति है, वहां तक संसार है। और जहां दृष्टि की अगति हो जाती है, जहां दृष्टि आगे जा ही नहीं सकती, अंतिम क्षण आ जाता है, अंतिम बिंदु आ जाता है, जिसके पार दृष्टि शून्य हो जाती है, जिसके पार देखने को कुछ रह नहीं जाता, उस जगह का नाम सत्य है, उस जगह का नाम परमात्मा है।

उसे जो मंदिर में खोज रहा है, वह नासमझ है। मंदिर के तो पार देखा जा सकता है, वह तो संसार का हिस्सा है। जो उसे शास्त्र में खोज रहा है, वह नासमझ है। शास्त्र के तो पार देखा जा सकता है, शास्त्र तो पदार्थ का हिस्सा है। परमात्मा को तो वहां खोजना होगा जिसके पार नहीं देखा जा सके।

कौन सी चीज है ऐसी जिसके पार आप नहीं देख सकते?

अगर आप अपने भीतर प्रविष्ट होंगे, तो आपके सिवाय ऐसी कोई चीज नहीं है जिसके पार आप नहीं देख सकते। हर चीज के पार देखा जा सकता है, सिवाय आपको छोड़ कर। जब आप भीतर प्रविष्ट होंगे, तो आपको अपने ही भीतर एक बिंदु उपलब्ध होगा, जिसके आर-पार कहीं नहीं देखा जा सकता। वह द्रष्टा का बिंदु है। जो देख रहा है, उसको ही केवल देखा नहीं जा सकता है। जो देख रहा है इस जगत में, उसको ही केवल देखा नहीं जा सकता। उस बिंदु पर थिर होकर व्यक्ति सत्य को अनुभव करता है, परमात्मा को अनुभव करता है। और उस दिन जो प्रकाश उसमें उत्पन्न होता है, उस दिन जो अनुभूति उसे स्पष्ट होती है, उस दिन जो दिखाई पड़ता है, उस दिन जो प्रतीति में आता है, वह उसके सारे जीवन को बदल देता है। उसके बाद मृत्यु नहीं रह जाती, क्योंकि उसे जान कर वह जानता है कि अमृत है। उसके बाद कोई दुख नहीं रह जाता, क्योंकि उसे जान कर वह जानता है कि सब आनंद है। उसके बाद यह सारा जगत सच्चिदानंद रूप में परिणत हो जाता है।

ऐसी परिणति को साहसी उपलब्ध होते हैं। ऐसी परिणति को दुर्दम्य साहसी उपलब्ध होते हैं, दुस्साहसी उपलब्ध होते हैं। जो सब छोड़ कर अनंत के सागर में अपनी नाव को खेते हैं। जो सारे खूंटे तोड़ कर अज्ञात सागर में अपने को छोड़ देते हैं अनजान--कहां जाएंगे, कुछ पता नहीं है! जिन्हें तटों का मोह है, वे सत्य को नहीं पा सकते। जिन्हें मंझधार में डूब जाने का साहस है, जिन्हें किनारों का कोई मोह नहीं, जो मंझधार को ही किनारा मान सकते हैं, जो बीच सागर को भी सहारा मान सकते हैं, केवल उनके लिए ही सत्य की खोज है।

ईश्वर ऐसा साहस पैदा करे। ईश्वर ऐसी हिम्मत दे। ईश्वर ऐसा दुर्दम्य बोध, ऐसी अंतर्दृष्टि, ऐसी जिज्ञासा उत्पन्न करे, तो हम इस सारी दुनिया में फिर से धर्म को प्रतिष्ठित करने में समर्थ हो जाएंगे। जो धर्म वीरों का था, वह वृद्धों का बना हुआ है। जो धर्म साहसियों का था, वह आलसियों का बना हुआ है। जिस धर्म पर केवल वे ही चढ़ते थे जो पर्वतों में अपने को अकेले खो देने का साहस रखते हैं, जिन्हें मृत्यु का कोई प्रश्न नहीं, वह उनका बना हुआ है जो मृत्यु से बहुत भयभीत हैं, बहुत डरे हुए हैं, और जो धर्म में अपना बचाव खोजते हैं। धर्म कोई सुरक्षा नहीं है। धर्म कोई बचाव नहीं है। धर्म को इस अर्थों में शरण मत समझना। धर्म तो आक्रमण है। और जो लोग आक्रमण करते हैं सत्य पर, जो उसे विजय करते हैं, वे ही केवल उसे उपलब्ध होते हैं। ईश्वर ऐसी सदबुद्धि दे, ऐसा साहस दे, ऐसी हिम्मत दे कि अनंत सागर में आप अपनी नाव को छोड़ सकें। तो किसी दिन, किसी क्षण, किसी सौभाग्य के क्षण में कोई अनुभूति आपके जीवन को उपलब्ध होगी, जो आपको परिपूर्ण बदल देगी, जो आपकी सारी दृष्टि को बदल देगी। संसार तो यही होगा, लेकिन आप बदल जाएंगे। सब कुछ यही होगा, लेकिन आप दूसरे हो जाएंगे।

उस दूसरे हो जाने का नाम संन्यासी है। संन्यासी का अर्थ यह नहीं है कि किसी ने कपड़े बदले और वह भीख मांगने लगा तो संन्यासी हो गया। या किसी ने टीके लगाए और किसी ने कपड़े रंग लिए तो वह संन्यासी हो गया। और कोई घर में रहा तो वह गृहस्थी हो गया।

संन्यासी का यह अर्थ नहीं है। सत्य के अनुसंधान में इतने साहस को लेकर जो कूद पड़ता है, वही संन्यासी है। और जिसके घरघूले हैं, और जिसके खूंटे हैं, और जो अपने घर के बाहर नहीं निकलता, वही गृही है, वही गृहस्थ है। कोई पत्नी और बच्चों से दुनिया में गृहस्थ नहीं होता, और न कोई पत्नी-बच्चों के न होने से संन्यासी होता है। और न कोई कपड़ों के परिवर्तन से गृहस्थ होता है, न कोई संन्यासी होता है। अगर ये छोटी और ओछी बातों से दुनिया में संन्यास होता हो, तो उसका मूल्य दो कौड़ी हो जाएगा। उसका कोई मूल्य नहीं रह जाएगा। संन्यास तो बड़ी आंतरिक परिवर्तन की, एक इनर ट्रांसफार्मेशन की बात है। और वह परिवर्तन आंतरिक जीवन की दिशा को बदलने से शुरू होता है।
उस दिशा के दो चरणों की मैंने आपसे बात की है। एक चरण है: जिज्ञासा को स्वतंत्र और उन्मुक्त कर देना। आस्थाओं, श्रद्धाओं के खूंटों से उसे अलग कर लेना। और दूसरी बात है: तथ्यों के आर-पार देखना। जो तथ्यों के आर-पार देखता है, वह सत्य को उपलब्ध होता है।

इन थोड़ी सी बातों को आपने बड़े प्रेम और बड़ी शांति से सुना है, उसके लिए मैं बहुत अनुगृहीत हूं। ईश्वर की अनुकंपा आपको उपलब्ध हो, उसका प्रसाद आपको मिले, यह कामना करता हूं। और पुनः धन्यवाद देता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

मेरे प्रिय आत्मन्!

आज की संध्या आपके बीच उपस्थित होकर मैं बहुत आनंदित हूं। एक छोटी सी कहानी से आज की चर्चा को मैं प्रारंभ करूंगा।

बहुत वर्ष हुए, एक साधु मरणशय्या पर था। उसकी मृत्यु निकट थी और उसको प्रेम करने वाले लोग उसके पास इकट्ठे हो गए थे। उस साधु की उम्र सौ वर्ष थी और पिछले पचास वर्षों से सैकड़ों लोगों ने उससे प्रार्थना की थी कि उसे जो अनुभव हुए हों, उन्हें वह एक शास्त्र में, एक किताब में लिख दे। हजारों लोगों ने उससे यह निवेदन किया था कि वह अपने आध्यात्मिक अनुभवों को, परमात्मा के संबंध में, सत्य के संबंध में उसे जो प्रतीतियां हुई हों, उन्हें एक ग्रंथ में लिख दे। लेकिन वह हमेशा इनकार करता रहा था। और आज सुबह उसने यह घोषणा की थी कि मैंने वह किताब लिख दी है जिसकी मुझसे हमेशा मांग की गई थी। और आज मैं अपने प्रधान शिष्य को उस किताब को भेंट कर दूंगा।

हजारों लोग उत्सुक होकर बैठे थे कि वह किताब भेंट की जाएगी जो कि मनुष्य-जाति के लिए हमेशा के लिए काम की होगी। उसने एक किताब अपने प्रधान शिष्य को भेंट की और उससे कहा, इसे सम्हाल कर रखना, इससे बहुमूल्य शास्त्र कभी भी लिखा नहीं गया है, इससे महत्वपूर्ण कभी कोई किताब नहीं लिखी गई है और जो लोग सत्य की खोज में होंगे उनके लिए यह मार्गदर्शक प्रदीप सिद्ध होगी। इसे बहुत सम्हाल कर रखना। इसे मैंने पूरे जीवन के अनुभव से लिखा है।

उसने वह किताब अपने शिष्य को दी और सारे लोग धन्यवाद में सिर झुकाए। लेकिन उस शिष्य ने क्या किया? सर्दी के दिन थे और वहां आग जलती थी, उसने उस किताब को आग में डाल दिया। वह तो आग ने उस किताब को पकड़ लिया और वह तो राख हो गई। और सारे लोग हैरान हो गए कि यह क्या किया? लेकिन लोग देख कर हैरान हुए, वह मरता हुआ साधु अत्यंत प्रसन्न था। उसने उठ कर उस शिष्य को गले लगा लिया और उससे कहा, अगर तुम किताब को बचा कर रख लेते तो मैं बहुत दुखी मरता, क्योंकि मैं समझता कि एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है मेरे पास जो यह जानता हो कि सत्य शास्त्रों में उपलब्ध नहीं हो सकता है। तुमने किताब को आग में डाल दिया, इससे मैं प्रसन्न हूं। कम से कम एक व्यक्ति मेरी बात को समझता है। यह बात कि सत्य शास्त्रों में उपलब्ध नहीं हो सकता, कम से कम एक के अनुभव में है। और उसने कहा, और यह भी स्मरण रखो, अगर तुम उस किताब को आग में न डालते और मेरे मरने के बाद देखते तो बहुत हैरान हो जाते। उसमें कुछ लिखा हुआ नहीं था, वे कोरे कागज थे।

और मैं आपसे कहूंगा कि आज तक धर्मग्रंथों में कुछ भी लिखा हुआ नहीं है, वे सब कोरे कागज हैं। जो लोग उनमें कुछ पढ़ लेते हैं, वे गलती में पड़ जाते हैं। जो गीता में कुछ पढ़ लेगा, या कुरान में कुछ पढ़ लेगा, या बाइबिल में कुछ पढ़ लेगा, वह गलती में पड़ जाएगा।

स्मरण रखना, उन शास्त्रों में कुछ भी लिखा हुआ नहीं है। और जो आप पढ़ रहे हैं, वह आप अपने को पढ़ रहे हैं, उन शास्त्रों को नहीं। और तब जिन संप्रदायों को आप खड़े कर लेते हैं और सत्य के जिन पंथों को आप निर्मित कर लेते हैं, वे क्राइस्ट के और कृष्ण के बनाए हुए नहीं हैं, वे बुद्ध और महावीर के बनाए हुए नहीं हैं, वे आपके निर्माण हैं, वे आपकी बुद्धि और आपके विचार से उत्पन्न हुए हैं। इन सारे पंथों का निर्माण, इन सारे पंथों का जन्म आपसे हुआ है, जिन्होंने सत्य को जाना है उनसे नहीं। क्योंकि जो सत्य को जानता है, वह किसी संप्रदाय को जन्म कैसे दे सकता है? और जो सत्य को जानता है, वह मनुष्य के भीतर विभाजन की रेखाएं कैसे खड़ी कर सकता है? और जिसने सत्य को जाना हो, उसके लिए तो सारे भेद और सारी दीवालें गिर जाती हैं। लेकिन सत्य के नाम पर खड़े हुए ये संप्रदाय तो दीवालों को और भेदों को खड़े किए हुए हैं। ये सारे भेद मेरे और आपके निर्मित किए हुए हैं।

आज की संध्या मैं आपसे यह कहना चाहूंगा कि जो व्यक्ति सत्य की खोज करना चाहता हो--और ऐसा कोई भी व्यक्ति इस जमीन पर खोजना मुश्किल है जो किसी न किसी रूप में सत्य की खोज में न लगा हो--उस व्यक्ति को इन सारे शास्त्रों को, इन सारे संप्रदायों को, इन सारे विचार के पंथों को छोड़ देना होगा। इन्हें छोड़ कर ही कोई सत्य के आकाश में गति कर सकता है। जो इनसे दबा है, इनके भार से बंधा है, जिसके ऊपर इनका बोझ है, वह पर्वत पर नहीं चढ़ सकेगा। वह इतना भारी है कि उसका ऊपर उठना असंभव है। सत्य को पाने के लिए निर्भार होना जरूरी है। सत्य को पाने के लिए निर्भार होने की अत्यंत आवश्यकता है। जो लोग भारग्रस्त हैं, वे लोग सत्य की ऊंचाइयों पर नहीं उठ सकेंगे। उनके पंख टूट जाएंगे और वे नीचे गिर जाएंगे।

हम यदि उत्सुक हैं, और यदि हम चाहते हैं कि सत्य का कोई अनुभव हो...और मैं आपको यह कहूं कि जो व्यक्ति सत्य के अनुभव को उपलब्ध नहीं होगा, उसके जीवन में न तो संगीत होता है, न उसके जीवन में शांति होती है, न उसके जीवन में कोई आनंद होता है। ये इतने लोग दिखाई पड़ते हैं--अभी रास्ते से मैं आया, और हजारों रास्तों से निकलना हुआ है, लाखों लोगों के चेहरे दिखाई पड़ते हैं--पर कोई चेहरा ऐसा दिखाई नहीं पड़ता कि उसके भीतर संगीत का अनुमान होता हो। कोई आंखें ऐसी दिखाई नहीं पड़तीं कि भीतर कोई शांति हो। कोई भाव ऐसे प्रदर्शित नहीं होते कि भीतर आलोक का और प्रकाश का अनुभव हुआ हो। हम जीते हैं--इस जीवन में कोई आनंद, इस जीवन में कोई शांति और कोई संगीत अनुभव नहीं होता।

सारी दुनिया इस तरह के विसंगीत से भर गई है, सारी दुनिया के लोग ऐसी पीड़ा और संताप से भर गए हैं कि उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा है, जो ज्यादा विचारशील हैं उन्हें दिखाई पड़ता है कि इस जीवन का तो कोई अर्थ नहीं है, इससे तो मर जाना बेहतर है। और बहुत से लोगों ने पिछले पचास वर्षों में, बहुत विचारशील लोगों ने आत्महत्याएं की हैं। वे लोग नासमझ नहीं थे जिन्होंने अपने को समाप्त किया है।

जीवन की यह जो स्थिति है, आज जीवन की यह जो परिणति है, आज जीवन का यह जो दुख और पीड़ा है, इसे देख कर कोई भी अपने को समाप्त कर लेना चाहेगा। ऐसी स्थिति में केवल नासमझ जी सकते हैं। ऐसी पीड़ा और तनाव को केवल अज्ञानी झेल सकते हैं। जिसे थोड़ा भी बोध होगा, वह अपने को समाप्त कर लेना चाहेगा। इसका तो अर्थ यह हुआ कि जिनको बोध होगा, वे आत्महत्या कर लेंगे?

लेकिन महावीर ने और बुद्ध ने आत्महत्या नहीं की। और क्राइस्ट ने आत्महत्या नहीं की। कनफ्यूशियस ने और लाओत्से ने आत्महत्या नहीं की। दुनिया में ऐसे लोग हुए हैं जिन्होंने आत्महत्या के अतिरिक्त एक और मार्ग सोचा और जाना। मनुष्य के सामने दो ही विकल्प हैं--या तो आत्महत्या है, या आत्मसाधना है। जो व्यक्ति इन दो में से कोई विकल्प नहीं चुनता, उसे जानना चाहिए कि वह एक व्यर्थ के बोझ को ढो रहा है। वह जीवन को अनुभव नहीं कर पाएगा। वह करीब-करीब मृत है। उसे जीवित भी नहीं कहा जा सकता।

क्राइस्ट के जीवन में एक उल्लेख है। वे एक गांव से गुजरते थे। और एक मछुए को उन्होंने मछलियां मारते देखा। वे उसके पीछे गए, उसके कंधे पर हाथ रखा और उन्होंने उस मछुए से कहा, तुम कब तक मछलियां मारने में ही जीवन गंवाते रहोगे? मछलियां मारने के अलावा भी कुछ और है।

और क्राइस्ट हमारे कंधे पर भी हाथ रख कर यही पूछ रहे हैं कि हम कब तक मछलियां मारते रहेंगे? मछलियां मारने के अलावा कुछ और भी है। उन्होंने उस मछुए से पूछा कि कब तक मछलियां मारते रहोगे? उसने लौट कर देखा उनकी आंखों में और उसे प्रतीत हुआ कि जीवन में मछलियां मारने से ज्यादा भी कुछ पाया जा सकता है। उसकी गवाही वे क्राइस्ट की आंखें थीं। उसने कहा, मैं तैयार हूं। जिस रास्ते पर आप ले चलना चाहें, मैं चलूंगा। क्राइस्ट ने कहा, मेरे पीछे आओ। उसने जाल को वहीं फेंक दिया और वह क्राइस्ट के पीछे गया। वह गांव के बाहर भी नहीं निकल पाया था कि किसी ने आकर खबर दी कि तुम्हारा पिता, जो बीमार था, उसकी अभी-अभी मृत्यु हो गई है। तुम घर लौट चलो। उसका अंतिम संस्कार करके फिर जहां भी जाना हो चले जाना। उस व्यक्ति ने, उस मछुए ने क्राइस्ट को कहा कि मैं जाऊं और अपने पिता की अंत्येष्टि कर आऊं, फिर मैं लौट आऊंगा। तो क्राइस्ट ने एक बड़ी अदभुत बात कही। उन्होंने कहा: लेट दि डेड बरी देयर डेड। उन्होंने कहा: मुर्दों को मुर्दे को दफना लेने दो, तुम मेरे पीछे आओ।

यह वचन बहुत अदभुत है। उन्होंने यह कहा कि मुर्दे मुर्दे को दफना लेंगे, तुम मेरे पीछे आओ। हम सबकी गिनती उन्होंने मुर्दों में की है। और इस सारी जमीन पर बहुत कम लोग जीवित हैं, अधिक लोग मुर्दे हैं। तीन अरब लोग हैं अभी, इनमें अधिक लोग मुर्दे हैं। मुश्किल से कोई आदमी जीवित है।

यह मैं क्यों कह रहा हूं आपसे कि हम मुर्दे हैं? हम तब तक मुर्दे ही हैं, तब तक हम मरे हुए लोग हैं जो किसी भांति जी रहे हैं और चल रहे हैं; हम लाशों की भांति हैं जो चल रही हैं; हम तब तक लाशों की भांति होंगे, जब तक हमें वास्तविक जीवन का पता न चल जाए। वह व्यक्ति जीवित कैसे हो सकता है जिसे जीवन के मूलस्रोत का कोई पता न हो? वह व्यक्ति जीवित कैसे कहा जा सकता है जिसे अपने भीतर जो जीवन की धारा बह रही है, उसमें जिसकी कोई प्रतिष्ठा न हो? वह व्यक्ति जीवित कैसे हो सकता है या कैसे जीवित कहा जा सकता है जिसे उस तत्व का पता न हो जिसकी कोई मृत्यु नहीं होती है?

मेरे भीतर, आपके भीतर, सबके भीतर वह तत्व भी मौजूद है जिसकी कोई मृत्यु नहीं होती। हमारे भीतर दोहरे तरह का व्यक्तित्व है--एक जो मर जाएगा और एक जो शेष रहेगा। जो व्यक्ति अपने को इतना ही मानते हों कि मरण पर उनकी समाप्ति हो जाती है, वे जीवित नहीं हो सकते, वे जीवित नहीं कहे जा सकते हैं। अपने भीतर उस जीवन को अनुभव करने के बाद ही कोई व्यक्ति जीवित होता है, जिसकी कोई मृत्यु नहीं होती। और ऐसे तत्व के अनुसंधान का नाम सत्य की खोज है। सत्य की खोज कोई बौद्धिक, तार्किक खोज नहीं है

कि हम कुछ विचार करें और गणित करें। सत्य की खोज किन्हीं शास्त्रों के अध्ययन, किन्हीं विद्याओं के सीख लेने की बात नहीं है। सत्य की खोज अपने भीतर अमृत की खोज है।

जो व्यक्ति अपने भीतर अमृत को उपलब्ध होता है, वही केवल सत्य को जानता है। और जो व्यक्ति अमृत को उपलब्ध नहीं होता, उसके जीवन में सब असत्य है, सब झूठ है। उसके जीवन में कुछ भी सार्थक नहीं है।

तो हमारी दिशा, हमारे सोचने-विचारने की, हमारी साधना की, हमारे जीवन की दिशा यदि अमृत की तलाश में संलग्न होती हो, अगर हम उस दिशा में थोड़े चलते हों, अगर हमारे कदम उस रास्ते पर थोड़े पड़ते हों और हमारे चरण उस मार्ग पर जाते हों, तो जानना चाहिए कि हम जीवन की तरफ विकसित हो रहे हैं। अन्यथा हमारी प्रति घड़ी हमारी मौत को करीब लाती है और हम मर रहे हैं।

मैं जिस दिन पैदा हुआ, उसी दिन से मरना शुरू हो गया हूं। मैं रोज मरता जा रहा हूं। और अगर मैं कुछ जीवन के ऐसे सत्य को अनुभव न कर लूं जो इस मरने की क्रिया के बीच भी थिर हो, जो इस मरने की क्रिया के बीच भी मर न रहा हो, तो मेरे जीवन का क्या मूल्य हो सकता है? या मेरे जीवन में कौन सा अर्थ और कौन सा आनंद उपलब्ध हो सकता है?

जो लोग मृत्यु पर केंद्रित हैं, या जो लोग अपने भीतर केवल उसे जानते हैं जो मरणधर्मा है, वे आनंद को अनुभव नहीं कर सकेंगे। आनंद की अनुभूति अमृत की अनुभूति की उत्पत्ति है। अमृत को जान कर ही कोई केवल आनंद को जानता है। इसलिए हमने अपने देश में, या जिन लोगों ने कहीं भी जमीन पर कभी जाना है, उन्होंने परमात्मा को आनंद का स्वरूप माना है।

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, जिसको आप खोज लेंगे। परमात्मा एक आनंद की चरम अनुभूति है। उस अनुभूति में आप कृतार्थ हो जाते हैं। और सारे जगत के प्रति आपके मन में एक धन्यता का बोध पैदा हो जाता है। आपमें कृतज्ञता पैदा होती है। उस कृतज्ञता को ही मैं आस्तिकता कहता हूं। ईश्वर को मानने को नहीं, वरन अपने भीतर एक ऐसे आनंद को अनुभव करने को कि उस आनंद के कारण आप सारे जगत के प्रति कृतज्ञ हो जाएं। वह जो कृतज्ञता, वह जो ग्रेटीटयूड का अनुभव है, वही परम आस्तिकता है। और ऐसी आस्तिकता की खोज, ऐसी कृतज्ञता की खोज जो मनुष्य नहीं कर रहा है, वह अपने जीवन के अवसर को व्यर्थ खो रहा है। यह चिंतनीय और विचारणीय है। और यह हर मनुष्य के सामने एक प्रश्न की तरह खड़ा हो जाना चाहिए। यह असंतोष हर मनुष्य के भीतर पैदा हो जाना चाहिए कि वह खोजे और जीवन को गंवा न दे। वह खोजे।

लेकिन हम दो तरह के लोगों में सारी दुनिया में लोग बंट गए हैं। एक तो वे लोग हैं, जो मानते ही नहीं कि कोई आत्मा है, कोई परमात्मा है। एक वे लोग हैं, जो मानते हैं कि परमात्मा है और आत्मा है। ये दोनों ही लोगों ने खोजें बंद कर दी हैं। एक ने स्वीकार कर लिया है कि परमात्मा नहीं है, आत्मा नहीं है, इसलिए खोज का कोई प्रश्न नहीं है। दूसरे

वर्ग ने स्वीकार कर लिया है कि आत्मा है, परमात्मा है, इसलिए उन्हें भी खोज का कोई कारण नहीं रह गया।

आस्तिक और नास्तिक दोनों ने खोज बंद कर दी है। विश्वासी भी खोज बंद कर देता है। अविश्वासी भी खोज बंद कर देता है। खोज तो केवल वे लोग करते हैं जिनकी जिज्ञासा मुक्त होती है और जो किसी विश्वास से, किसी पंथ से, किसी विचार की पद्धति से, किसी आस्तिकता से, किसी नास्तिकता से अपने को बांध नहीं लेते हैं। वे लोग धन्य हैं, जिनकी जिज्ञासा मुक्त हो, जिनका संदेह मुक्त हो, जो सोच रहे हों और जिन्होंने दूसरों के सोच-विचार को स्वीकार न कर लिया हो।

मैं अभी एक गांव में था। और अपने एक मित्र के साथ वहां गया। बहुत धूप थी और रास्ते बहुत गर्म थे। वे अपने जूते को कहीं खो गए, कोई चुरा ले गया। तो मैंने उनसे कहा कि दूसरी चप्पल पहन लें। वे बोले, दूसरे की पहनी हुई चप्पलें मैं कैसे पहनूं? मैंने उनसे कहा कि दूसरे के पहने हुए जूते कोई पहनना पसंद नहीं करता, दूसरे के पहने हुए कपड़े कोई पहनना पसंद नहीं करता, लेकिन दूसरों के अनुभव किए हुए विचार सारे लोग स्वीकार कर लेते हैं। दूसरे के बासे कपड़े और दूसरे का बासा भोजन कोई स्वीकार नहीं करेगा, लेकिन हम सारे लोगों ने दूसरों के बासे विचार स्वीकार कर लिए हैं। फिर चाहे वे विचार बुद्ध के हों और चाहे महावीर के हों, चाहे किसी के हों, कितने ही पवित्र पुरुष के वे विचार क्यों न हों, अगर वे दूसरे के अनुभव हैं, और उनको हमने स्वीकार कर लिया है, तो हम स्वयं सत्य को जानने से वंचित हो जाएंगे।

इस जगत में केवल वे ही लोग, केवल वे ही थोड़े से लोग सत्य को अनुभव कर पाते हैं जो किसी के विचार को स्वीकार नहीं करते हैं। जो किसी की उधार चिंतनाओं को अंगीकार नहीं करते हैं। और जो अपने मन के आकाश को, जो अपने मन की चिंतना को मुक्त रख पाते हैं।

बहुत कठिन है अपनी चिंतना को मुक्त रख पाना। अगर अपने भीतर आप देखेंगे तो शायद ही एकाध विचार मालूम होगा जो आपका अपना है। वे सब संगृहीत मालूम होंगे, वे सब दूसरों से लिए हुए मालूम होंगे। और ऐसी विचार-शक्ति जो दूसरों के लिए हुए विचारों से दब जाती है, सत्य के अनुसंधान में असमर्थ हो जाती है। जितने ज्यादा कोई व्यक्ति दूसरों के विचार स्वीकार कर लेता है, उतनी उसकी विचार-शक्ति नीचे दब जाती है। जो व्यक्ति जितना दूसरों के विचार अस्वीकार कर देता है, उतनी उसके भीतर की विचार-शक्ति जाग्रत होती है और प्रबुद्ध होती है।

सत्य को पाने के लिए स्मरणीय है कि किसी का विचार, कितना ही सत्य क्यों न प्रतीत हो, अंगीकार के योग्य नहीं है। किसी का भी विचार अंगीकार के योग्य नहीं है। और जो व्यक्ति इतना साहस करता है कि सारे विचारों को दूर हटा देता है, उसके भीतर, जैसे कोई कुआं खोदे और सारी मिट्टी और पत्थरों को अलग कर दे तो नीचे से जल के स्रोत उत्पन्न हो जाते हैं, वैसे ही कोई व्यक्ति अगर अपने भीतर से सारे पराए विचारों को अलग कर दे,

दूर हटा दे, तो उसके भीतर विचार-शक्ति का, विवेक का, प्रज्ञा का जन्म होता है। उसके भीतर जल-स्रोत उपलब्ध होते हैं। उसकी स्वयं की शक्ति जागती है। और उस स्वयं की शक्ति के जागरण में ही केवल सत्य के अनुभव की संभावना है।

एक दफा ऐसा हुआ, बुद्ध के पास कुछ लोग एक अंधे को लेकर गए और उन्होंने कहा, इस अंधे आदमी को हम बहुत समझाते हैं कि प्रकाश है, लेकिन यह मानने को राजी नहीं होता। बुद्ध ने कहा, धन्य है यह अंधा आदमी। इसकी संभावना है कि यह कभी आंख को खोज ले। लोगों ने कहा, आप यह क्या कहते हैं? हम इसे समझाते हैं हजार तरह से कि प्रकाश है, लेकिन यह मानने को राजी नहीं होता।

बुद्ध ने कहा, धन्य है यह अंधा आदमी। इसकी संभावना है कि यह कभी प्रकाश को खोज ले। अगर इसने प्रकाश को मान लिया, दूसरों की आंखों के अनुभव को मान लिया, इसकी अपनी आंख की खोज बंद हो जाएगी।

और बुद्ध से उन्होंने कहा कि आप इसे समझाएं कि प्रकाश है।

बुद्ध ने कहा, यह पाप मैं नहीं करूंगा। मैं इसे यह नहीं समझा सकता कि प्रकाश है, मैं इसे यह जरूर बता सकता हूं कि आंखें खोलने का उपाय है। और बुद्ध ने कहा, मेरे पास इसे मत लाओ। किसी विचारक की इसे जरूरत नहीं है, इसे किसी वैद्य के पास ले जाओ। और इसे विचार मत दो, उपदेश मत दो। इसे उपचार की जरूरत है, इसे चिकित्सा की जरूरत है।

वह अंधा आदमी एक वैद्य के पास ले जाया गया। और भाग्य की बात, कुछ ही महीनों के इलाज से उसकी आंखें ठीक हो गईं। वह नाचता हुआ आया और बुद्ध के पैरों में गिर पड़ा और उसने कहा, प्रकाश है, क्योंकि मेरे पास आंख है! उसने कहा, प्रकाश है, क्योंकि मेरे पास आंख है। आंख ही प्रकाश का प्रमाण है, और कोई भी प्रमाण नहीं है। और जो दूसरे की आंखों पर निर्भर हो जाएंगे, उनकी संभावना बंद हो जाएगी कि वे स्वयं की आंखों को उपलब्ध हो सकें।

इस समय जमीन पर सत्य की शोध बंद है। उसका कारण यह नहीं है कि लोग सत्य के विपरीत चले गए हैं, उसका कारण यह है कि लोग शास्त्रों के बहुत पीछे चले गए हैं। उसका कारण यह नहीं है कि लोगों में सत्य की...सत्य की दिशा में उनकी प्यास समाप्त हो गई है, बल्कि उसका कारण यह है कि वे यह भूल गए हैं कि दूसरों के बहुत ज्यादा विचारों का बोझ उनकी स्वयं की विवेक की ऊर्जा को पैदा नहीं होने देता है, उनकी स्वयं की अंतःशक्ति जाग नहीं पाती।

सत्य की खोज में जो लोग उत्सुक हैं, उनके लिए पहली बात होगी कि वे सारे पराए विचारों को अस्वीकार कर दें, वे इनकार कर दें। खाली और शून्य होना बेहतर है बजाय दूसरों के उधार विचारों से भरे होने के। नग्न होना बेहतर है बजाय दूसरों के वस्त्र पहन लेने के। अंधा होना बेहतर है बजाय दूसरों की आंखों से देखने के। यह संभावना, पहली बात है। इस भांति व्यक्ति की जिज्ञासा मुक्त होती है और विचार-शक्ति जागती है। विचार-शक्ति का जागरण, पहली शर्त तो यह मानता है। और दूसरी एक बात बहुत जरूरी है, जो कि विचारशील लोगों

को समझनी चाहिए, और वह यह है कि विचार की शक्ति बड़ी अदभुत है। और वह अदभुत शक्ति बड़े विपरीत मापदंडों से, बड़ी विपरीत परिस्थितियों में पैदा होती है। साधारणतः लोग सोचते हैं कि जो आदमी जितना विचार करेगा, उतनी ज्यादा विचार की शक्ति जाग्रत होगी। यह गलत है। जो आदमी जितना निर्विचार होने की साधना करेगा, उतनी उसकी विचार की शक्ति जाग्रत होती है। जो व्यक्ति जितना विचार करेगा, वह सोचता हो कि उतनी विचार की शक्ति जाग्रत होगी, तो वह गलती में है। विचार आप क्या करेंगे? जब भी आप विचार करेंगे तब आप दूसरों के विचारों को दोहराते रहेंगे। जब भी आप विचार करेंगे तब आपकी स्मृति, आपकी मेमोरी उपयोग में आती रहेगी। और अधिक लोग स्मृति को ही ज्ञान समझ लेते हैं, अधिक लोग स्मृति को ही विचार समझ लेते हैं। जब आप सोचते हैं तो आपके भीतर गीता बोलने लगती है। जब आप सोचते हैं तो आपके भीतर महावीर-बुद्ध बोलने लगते हैं। जब आप सोचते हैं तो आपका धर्म, आपकी शिक्षाएं, जो आपको सिखाई गई हैं, आपके भीतर बोलने लगती हैं। तब सचेत हो जाना चाहिए, यह विचार नहीं है। यह बिलकुल यांत्रिक स्मृति है, यह बिलकुल मेकेनिकल मेमोरी है, जो भर दी गई है और जो बोलना शुरू कर रही है। इसको जो विचार समझ लेगा वह गलती में पड़ जाएगा। जो इसका अनुसंधान करेगा वह विचार से विचार में भटकता रहेगा और समाप्त हो जाएगा। उसे सत्य का कोई अनुभव नहीं होगा।

फिर विचार के लिए क्या करना होगा? विचार की शक्ति को जिसे जगाना है, उसे विचार करना छोड़ना होगा और उसे निर्विचार में ठहरना होगा। हम इस निर्विचारणा की स्थिति को हमारे मुल्क में समाधि कहते हैं। जो निर्विचार में ठहर जाता है, जो थॉटलेसनेस में, जहां कोई विचार नहीं है, ऐसी निष्कंप अवस्था में ठहर जाता है, जैसे किसी भवन में कोई दीया जलता हो और कोई हवाएं न आती हों और दीये की बाती बिलकुल ठहर जाए, ऐसे ही जब कोई व्यक्ति अपनी चेतना को, अपनी कांशसनेस को, अपनी अवेयरनेस को, अपने होश को ठहरा लेता है और उसमें कोई कंपन नहीं आते, उस निर्विचार, निष्कंप क्षण में उसके भीतर विचार की चरम शक्ति का जागरण होता है। और तब वह देख पाता है, उसे आंखें मिलती हैं। समाधि से आंखें मिलती हैं और व्यक्ति सत्य को देख पाता है। सत्य सोचा नहीं जाता, देखा जाता है।

इसलिए पश्चिम में जिसे फिलासफी कहते हैं, भारत में हम उसे दर्शन कहते हैं। दर्शन और फिलासफी पर्यायवाची शब्द नहीं हैं। और जो लोग समझते हैं कि फिलासफी और दर्शन एक ही बातें हैं, उनका जानना बिलकुल गलत है। दर्शन का कोई संबंध चिंतन से नहीं है। दर्शन का संबंध तो अचिंत्य हो जाने से है। दर्शन का संबंध तो समाधि से है, तर्क से नहीं है, विचार से नहीं है, निर्विचार हो जाने से है। और पश्चिम की फिलासफी का संबंध चिंतन से है, विचार से है। पश्चिम की फिलासफी विचार है, भारत का दर्शन निर्विचार होना है।

हमने अपने मुल्क में एक अदभुत बात साधी थी और हमने एक बहुत अदभुत प्रयोग किया। हमने यह प्रयोग किया कि अगर मनुष्य की सारी चिंतना बंद हो जाए तो क्या होगा? जब

मनुष्य के सारे विचार बंद हो जाएंगे तो क्या होगा? जब मनुष्य कुछ भी नहीं सोच रहा होगा तब क्या होगा? यह बड़ी अदभुत बात है। जब आप कुछ भी नहीं सोच रहे हैं, तब आपको दिखाई पड़ना शुरू होता है। जब चिंतन बंद होता है तो दर्शन उपलब्ध होता है। जब विचार की लहरें बंद होती हैं तो आंखें इतनी स्वच्छ हो जाती हैं कि वे देख पाती हैं। और जब विचार चलते रहते हैं तो देखना मुश्किल हो जाता है। हम इतने विचार से भरे हैं कि हम करीब-करीब अंधे हैं, हमको कुछ दिखाई नहीं पड़ता।

एक मेरे मित्र सारी दुनिया का चक्कर लगा कर लौटे। उन्होंने बहुत झीलें देखीं, बहुत प्रपात देखे। फिर वे मेरे गांव में आए। और मैंने उनसे कहा कि गांव के पास भी एक प्रपात है, वह मैं दिखाने ले चलूं। वे बोले, मैंने बहुत बड़े-बड़े प्रपात देखे हैं और अब इसको देखने से क्या होगा? मैंने कहा कि अगर उन प्रपातों का विचार आप छोड़ दें, तो यह प्रपात भी देखने में अदभुत है। अगर उन प्रपातों का विचार आप छोड़ दें और वे आपकी आंख में तैरते न रहें, तो आपको यह प्रपात भी दिखाई पड़ेगा, और यह बहुत अदभुत है।

वे मेरे साथ गए। दो घंटे हम उस प्रपात पर थे। लेकिन उन्होंने एक क्षण भी उस प्रपात को नहीं देखा। वे मुझे बताते रहे, अमरीका में कोई प्रपात कैसा है, स्विटजरलैंड में कोई प्रपात कैसा है। उन्होंने कहां-कहां प्रपात देखे, उनकी चर्चा करते रहे। दो घंटे के बाद जब हम वापस लौटे तो वे मुझसे बोले, बड़ा सुंदर प्रपात था।

मैंने कहा, आप यह बिलकुल झूठ कह रहे हैं, इस प्रपात को आपने देखा नहीं। यह प्रपात आपको दिखाई नहीं पड़ा और मुझे अनुभव हुआ कि मैं एक अंधे आदमी को लेकर आ गया हूं।

वे बोले, मतलब?

मैंने कहा कि आप इतने उन प्रपातों के विचार से भरे थे, आपकी आंखें इतनी बोझिल थीं, आपका चित्त इतना कंपित था, आपके भीतर इतनी स्मृतियां घूम रही थीं कि उन सबके पार इस प्रपात को देखना असंभव था। इस प्रपात को देखने की जरूरत अगर अनुभव होती तो उन सारी स्मृतियों को, उन सारे विचारों को, उन सारे खयालों को छोड़ देने की जरूरत थी। जब वे छूट जाते तो वह स्थान मिलता खाली और स्वच्छ, जहां से इसके दर्शन हो सकते थे।

केवल वे ही लोग जगत में दर्शन को उपलब्ध होते हैं जो निर्विचार देखना सीख जाते हैं। जिनमें देखने की एक ऐसी क्षमता पैदा होती है जो विचार में नहीं, निर्विचार में है। और तब ऐसे लोगों ने ही यह कहा है कि यह सारा जगत परमात्मा से आच्छन्न है, ऐसे लोगों ने। ऐसे लोगों ने जब दरख्तों को देखा होगा, जिनकी आंखें स्वच्छ और निर्मल हैं और जिनके चित्त विचार से ग्रसित नहीं हैं, तो दरख्त ही दिखाई नहीं पड़ता, दरख्त के भीतर जो प्राण की सत्ता है, वह अनुभव में आ जाती है। और जब वे आपको देखेंगे, तो आपकी देह दिखाई नहीं पड़ती, बल्कि देह के पीछे जो आत्मा छिपी है, वह भी दिखाई पड़ जाती है।

जिनकी आंखें निर्मल हैं और स्वच्छ हैं, और जिनके चित्त निर्विचार हैं और शांत हैं, उन्हें इस जगत के प्रत्येक कण-कण में परमात्मा का अनुभव होना शुरू हो जाता है। जितनी गहरी दृष्टि उनकी होती जाती है, जितनी स्वच्छ और निर्मल, उतना ही यह जगत मिटता चला जाता है और इसकी जगह परमात्मा का अनुभव शुरू हो जाता है। एक घड़ी आती है जब इस जगत में जगत नहीं रह जाता, केवल ईश्वर शेष रह जाता है। वह घड़ी आनंद की घड़ी है। वह घड़ी परम धन्यता की घड़ी है। उस घड़ी के बाद आपके भीतर संगीत बजना शुरू होता है। उसके बाद फिर आप भिखमंगे नहीं रह जाते, उसके बाद आप सम्राट हो जाते हैं। उसके बाद आप दरिद्र नहीं रह जाते। दुख और पीड़ाएं आपकी गिर जाती हैं और भीतर अत्यंत वैभव की उपलब्धि होती है। उसको हम स्वर्ग कहें, उसे हम मोक्ष कहें, उसे हम निर्वाण कहें, उसे हम जो भी नाम देना पसंद करें, हम दे सकते हैं। मात्र इतनी ही घटना घटती है कि आपको अपने भीतर सच्चिदानंद का अनुभव शुरू हो जाता है।

और यह अनुभूति यदि मनुष्य को न हो पाए और ऐसी सभ्यता और संस्कृति जो इस अनुभूति की तरफ न ले जाती हो, वह झूठी है, वह मनुष्य-विरोधी है, वह घातक है, वह विषाक्त है। और उसका जितनी जल्दी अंत हो जाए उतना बेहतर है। हमने अपने ही हाथों एक ऐसी सभ्यता और संस्कृति को धीरे-धीरे जन्म दिया है, जो हमें इस अनुभूति में ले जाने में बाधा बन रही है। उस अनुभूति तक ले जाने में सहयोगी नहीं रह गई है। वह अनुभूति जिस संस्कृति से पैदा हो, वही संस्कृति मानवीय हो सकती है, वही संस्कृति मनुष्य के हित में हो सकती है, वही संस्कृति कल्याण और मंगलदायी हो सकती है।

तो मैंने ये थोड़ी सी बातें आपसे कही हैं। ये थोड़ी सी बातें इस आशा में मैंने कही हैं कि आप चाहें तो अपने माध्यम से उस संस्कृति को जन्म देने में सहयोगी हो सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य सहयोगी हो सकता है। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य एक घटक है इस सारे समाज का, सारी मनुष्यता का। जब मैं अपने को बनाता और बिगाड़ता हूं, तो मैं साथ ही सारी मनुष्यता को बना और बिगाड़ रहा हूं। जब मैं अपने भीतर शांति के आधार रखता हूं, तो मैं सारी मनुष्यता के लिए शांति का मार्ग खोल रहा हूं। और जब मैं अपने भीतर अशांति और विषाद के बीज बोता हूं, तो मैं सारी मनुष्यता के लिए वही कर रहा हूं। जो मैं अपने साथ कर रहा हूं, वह अनजाने में सारे मनुष्य के साथ कर रहा हूं, यह स्मरण होना जरूरी है। क्योंकि हम सारे लोग घटक हैं, इकाइयां हैं। और हम बनाते हैं इस विश्व को। हम अपने को निर्मित करके इस सारे जगत को बनाते हैं।

आज यह दुनिया इतनी युद्ध, इतनी हिंसा, इतनी घृणा, इतने वैमनस्य से भरी हुई है, इसके लिए कौन जिम्मेवार है? इसके लिए वे लोग जिम्मेवार हैं, जिन्होंने परमात्मा का अनुसंधान छोड़ दिया है। इसके लिए वे लोग जिम्मेवार हैं, जिन्होंने अंतरात्मा का अनुसंधान छोड़ दिया है। क्योंकि मेरा मानना यह है, और मैं समझता हूं यह बात आपकी समझ में आ सकेगी, कि जो व्यक्ति अपने भीतर आनंद से भरा हुआ नहीं होगा, वह व्यक्ति दूसरों को दुख देने में आनंद लेने लगता है। जो व्यक्ति अपने भीतर आनंद से भरा हुआ नहीं होता, वह

व्यक्ति दूसरे लोगों को दुख देने में आनंद लेने लगता है। यह दुनिया इतनी दुखी है, क्योंकि इतने दुखी लोग हैं, आनंद-शून्य और रहित, कि उनका एक ही आनंद रह गया है कि वे दूसरों को पीड़ित करें, परेशान करें, दुखी करें। जब वे दूसरे को दुखी देखते हैं तो उन्हें अपने सुखी होने का थोड़ा सा भ्रम पैदा होता है। और अगर ऐसा होता रहा, तो युद्ध बढ़ते जाएंगे, हमारे हाथ एक-दूसरे के गले पर कसते जाएंगे, और हमारे हृदय कठोर और पत्थर होते जाएंगे। और शायद इसका अंतिम परिणाम यह हो कि हम सारे मनुष्य को समाप्त कर लें। हम उसकी तैयारी में हैं।

पिछले दो महायुद्धों में दस करोड़ लोगों की हमने हत्या की है। और कोई आदमी मुझे दिखाई नहीं पड़ता जिसको यह खयाल हो कि इन दस करोड़ लोगों की हत्या में हमारा हाथ है। और अभी हम तैयारी कर रहे हैं और बड़ी हत्या की। शायद सामूहिक आत्मघात, एक युनिवर्सल स्युसाइड की हम तैयारी में लगे हैं। यह कोई राजनैतिक वजह नहीं है इसके पीछे, और न इसके पीछे कोई आर्थिक वजह है। इसके पीछे बुनियादी वजह आध्यात्मिक है। जो लोग अंतस में आनंद को अनुभव नहीं करेंगे, उनका अंतिम परिणाम दूसरों को दुख देना, दूसरों की मृत्यु में आनंद लेना होगा। वे अंततः युद्ध में सुख लेंगे।

यह शायद आपको पता न हो, पिछले दो महायुद्धों के समय एक अदभुत बात सारे यूरोप में अनुभव हुई। और वह यह थी कि जब युद्ध चलते थे, तो लोगों ने आत्मघात बिलकुल नहीं किए। जब युद्ध चलते थे, तो लोगों ने हत्याएं बहुत कम कीं। जब युद्ध चलते थे, तो डाकेजनी और चोरी यूरोप में कम हो गई। मनोवैज्ञानिक हैरान हुए कि यह क्या वजह है? युद्ध चलता है तो लोग आत्महत्या क्यों नहीं करते? युद्ध चलता है तो लोग एक-दूसरे की हत्या क्यों नहीं करते? युद्ध चलता है तो डाकेजनी और चोरियां और अनाचार कम क्यों हो जाता है? तो पता चला, युद्ध में इतनी हिंसा होती है कि उन सारे लोगों को काफी आनंद मिल जाता है, दूसरी हिंसा करने की जरूरत उन्हें नहीं रह जाती।

जो लोग दुखी होंगे, वे लोग दुख का संसार निर्मित करेंगे। क्योंकि यह कैसे संभव है कि जो मेरे भीतर हो, उसके अलावा मैं कुछ निर्मित कर सकूं? आज दुनिया में अगर घृणा दिखाई पड़ती है, वैमनस्य दिखाई पड़ता है, तो ये कोई ऊपरी बातें नहीं हैं, ये केवल लक्षण हैं कि भीतर आनंद नहीं है। अगर भीतर आनंद हो तो आनंदित आदमी के जीवन में एक घटना घटती है, जो व्यक्ति जितने आनंद से भरता जाता है, उतना ही वह दूसरों को आनंदित करने की प्रेरणा से भी भर जाता है। आनंदित व्यक्ति किसी को दुखी नहीं कर सकता। आनंदित व्यक्ति के लिए असंभव हो जाता है कि वह दूसरे को पीड़ा दे और उसमें सुख माने। उसका तो सारा जीवन आनंद को बांटना बन जाता है।

ब्लावट्स्की सारी दुनिया में यात्रा की। वह भारत थी, और दूसरे मुल्कों में थी। लोग उसे हमेशा देख कर हैरान हुए। वह एक झोला अपने साथ रखती थी और जब गाड़ियों में बैठती, तो उसमें से कुछ निकाल कर बाहर फेंकती रहती। लोग उससे पूछे कि यह क्या है? उसने कहा, कुछ फूलों के बीज हैं। अभी वर्षा आएगी, फूल खिलेंगे, पौधे निकल आएंगे। लोगों ने

कहा, लेकिन तुम इस रास्ते पर दुबारा निकलोगी, इसका तो कुछ पता नहीं। उसने कहा, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। फूल खिलेंगे, कोई उन फूलों को देख कर आनंदित होगा, यह मेरे लिए काफी आनंद है। उसने कहा, जीवन भर बस एक ही कोशिश की; जब से मुझे फूल मिले हैं, तब से फूल सबको बांट दूं, बस यही चेष्टा रही है। और जिस व्यक्ति को भी फूल मिल जाएंगे, वह उनको बांटने के लिए उत्सुक हो जाएगा। आखिर बुद्ध या महावीर क्या बांट रहे हैं? चालीस वर्ष तक बुद्ध जीवित रहे। क्या बांट रहे हैं? किस चीज को बांटने के लिए भाग रहे हैं और दौड़ रहे हैं? कोई आनंद उपलब्ध हुआ है, उसे बांटना जरूरी है।

साधारण आदमी, दुखी आदमी सुख को पाने के लिए दौड़ता है और जो व्यक्ति प्रभु को अनुभव करता है वह सुख को बांटने के लिए दौड़ने लगता है। साधारण आदमी सुख को पाने के लिए दौड़ता है और जो व्यक्ति प्रभु को अनुभव करता है वह सुख को बांटने के लिए दौड़ने लगता है। एक की दौड़ का केंद्र वासना होती है, दूसरे की दौड़ का केंद्र करुणा हो जाती है। आनंद करुणा को उत्पन्न करता है। और जितना आनंद भीतर फलित होता है, उतनी आनंद की सुगंध चारों तरफ फैलने लगती है। आनंद की सुगंध का नाम प्रेम है। आनंद की सुगंध का नाम प्रेम है। जो व्यक्ति भीतर आनंदित होता है, उसका सारा आचरण प्रेम से भर जाता है। व्यक्ति अंतस में आनंद को उपलब्ध हो, तो आचरण में प्रेम प्रकट होने लगता है। आनंद का दीया जलता है, तो प्रेम की किरणें सारे जगत में फैलने लगती हैं। और जब दुख का दीया भीतर हो, तो सारे जगत में अंधकार फैलता है--वह घृणा का हो, वैमनस्य का हो।

यह संस्कृति, यह सभ्यता जिसमें हम जी रहे हैं, अत्यंत जराजीर्ण है और अत्यंत मृत्यु के कगार पर खड़ी है। जिनको थोड़ा भी होश है, वे इस पर विचार करेंगे। और अगर वे विचार करेंगे, तो मेरी बातों में उन्हें कोई सार्थकता दिखाई पड़ सकती है। और तब उनके सामने एक ही कर्तव्य होगा, एक ही कर्तव्य, वह मनुष्य-जाति के बदलने का नहीं; उनके सामने एक ही कर्तव्य होगा, स्वयं को बदलने और परिवर्तित करने का। उनके सामने एक ही कर्तव्य होगा कि वे अपने भीतर दुख को विलीन कर दें, विसर्जित कर दें और आनंद को उपलब्ध हो जाएं।

मैंने बताया, कैसे वे आनंद को उपलब्ध हो सकेंगे। यदि वे निर्विचारणा को साधते हैं, तो उन्हें दर्शन उपलब्ध होगा। और यदि उन्हें दर्शन उपलब्ध होगा, तो यह जगत उन्हें पदार्थ दिखाई नहीं पड़ेगा, प्रभु दिखाई पड़ने लगेगा। और अगर यह जगत सारा प्रभु से आंदोलित दिखाई पड़ने लगे, अगर यहां मुझे सारे लोगों के भीतर परमात्मा का अनुभव होने लगे, तो मेरे जीवन का आनंद, उसकी क्या सीमा रह जाएगी? क्योंकि जब किसी व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति में परमात्मा का अनुभव होता है और जब किसी व्यक्ति को स्वयं में परमात्मा का अनुभव होता है, तो सारी जगतसत्ता से एक हो जाता है। उसके प्राण सारी जगतसत्ता से मिल जाते हैं। वह सारी जगतसत्ता के संगीत का एक स्वर हो जाता है। और तब उसका जीवन, तब उसकी चर्या, तब उसका उठना और बैठना, तब उसका सोचना और विचारना, तब उसके समस्त जीवन-उपक्रम आनंद को बांटने लगते हैं, विस्तीर्ण करने लगते हैं।

सत्य की खोज, इसलिए मैंने कही, कोई बौद्धिक जिज्ञासा मात्र नहीं है, बल्कि प्रत्येक मनुष्य के प्राणों के प्राणों की प्यास है। और जो व्यक्ति इस प्यास को अनुभव नहीं कर रहा है या इस प्यास की उपेक्षा कर रहा है, वह अपनी मनुष्यता का अपमान कर रहा है। वह अपनी सबसे गहरी प्यास को, अपनी सबसे गहरी भूख को अधूरा छोड़ रहा है। और इसके दुष्परिणाम उसे भोगने पड़ेंगे।

हम सारे लोग, अंतरात्मा की जो प्यास है, उसकी उपेक्षा करने का दुष्परिणाम भोग रहे हैं। और यह दुष्परिणाम मिट सकता है। थोड़े विवेक के जागरण से, थोड़े विवेक के अनुकूल जीवन की साधना को उपलब्ध होने से, थोड़ा विवेक के अनुकूल और प्रकाश के अनुकूल अपने को व्यवस्थित करने से यह दुर्भाग्य विलीन हो सकता है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कही हैं। इस आशा में नहीं कि मैं जो कहूं वह आप मान लें, क्योंकि मैं आपका कोई शत्रु नहीं हूं कि कुछ विचार आपके मस्तिष्क में डाल दूं। इस आशा में मैंने ये बातें कही हैं कि इन बातों को आप देखेंगे, मान नहीं लेंगे। इन बातों के प्रति जाग्रत होंगे, इन्हें स्वीकार नहीं कर लेंगे। इन बातों की सच्चाई अगर आपको अनुभव हो, तो उसे अनुभव करेंगे, लेकिन इन विचारों को अपने भीतर नहीं रख लेंगे। कोई विचार कितना ही मूल्यवान हो, फेंक देने जैसा है। हां, उसमें जो अंतर्दृष्टि है, अगर वह आपके भीतर जग जाए, तो काम हो गया।

तो मैं ये जो थोड़ी सी बातें कहा हूं, आपको इनकी सच्चाई अगर अनुभव हो तो ये आपके काम की हो जाएंगी, और अगर ये विचार आपके भीतर बैठ गए तो मैं और आपका बोझ बढ़ाने में सहयोगी हुआ। वह बोझ वैसे ही बहुत काफी है। वह बोझ बहुत ज्यादा है। और उस बोझ से आप इतने दबे हैं कि अब उस बोझ को बढ़ाने की और कोई जरूरत नहीं है। दुनिया को अब किसी पैगंबर की, किसी तीर्थंकर की, किसी अवतार की कोई जरूरत नहीं है। वे काफी हैं। दुनिया को किसी नये शास्त्र की, नये संप्रदाय की, नये धर्म की कोई जरूरत नहीं है। वे जरूरत से ज्यादा हैं। उनका बोझ बहुत है। अब दुनिया को जरूरत है कि आपके बोझ को उतारने का कोई विचार हो सके। आपको निर्मुक्त और निर्बंध करने का कोई विचार हो सके। आपकी यात्रा चित्त की सरल और सहज बनाने का कोई उपाय हो सके।

उस संबंध में ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। हो सकता है कोई बात आपके भीतर अंतर्दृष्टि बन जाए। और अंतर्दृष्टि बन जाए तो वह फिर आपकी हो जाती है, फिर वह मेरी नहीं रह जाती। अंतर्दृष्टि बन जाए तो वह फिर आपकी हो जाती है, फिर वह किसी और की नहीं रह जाती। ऐसी अंतर्दृष्टि की कामना करता हूं, ऐसे विचार की, ऐसी साधना की। और मनुष्य के इस दुर्भाग्य को दूर करने की आपमें धारणा पैदा हो, आपमें खयाल आए कि मनुष्य का यह दुर्भाग्य दूर हो सके। और यह सामूहिक आत्मघात की जो तैयारी चलती है, हिंसा और घृणा का यह जो विकास चलता है, यह प्रेम से परिवर्तित हो सके।

लेकिन वह प्रेम कोई जबरदस्ती आरोपित नहीं हो सकता कि आप सोचें कि हम प्रेम करें या किसी से हम कहें कि तुम प्रेम करो, तो उसका क्या मतलब होगा? और इस भांति जो कोई

प्रेम भी करेगा, वह प्रेम तो झूठा होगा, उसमें कोई सच्चाई नहीं हो सकती। प्रेम किया नहीं जा सकता और जबरदस्ती उसे रोपा नहीं जा सकता। प्रेम तो तब उत्पन्न होगा जब आप आनंद को उपलब्ध होंगे। जब आपके भीतर आनंद होगा, आपके बाहर प्रेम होगा। आनंद के फूल लगेंगे तो प्रेम की सुगंध आपसे फैलनी शुरू हो जाएगी। वही सुगंध धार्मिक आदमी का लक्षण है। भीतर आनंद हो, बाहर जीवन में सुगंध हो, प्रेम की सुगंध हो। ईश्वर करे आपको भीतर आनंद उपलब्ध हो और बाहर प्रेम उपलब्ध हो जाए। उससे हम जगत को और स्वयं को बदलने में और एक नई मनुष्यता को जन्म देने में समर्थ और सफल हो सकते हैं।

मेरी इन बातों को प्रेम से सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। अपने भीतर बैठे हुए परमात्मा के लिए अंत में मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

प्रश्नः एक प्रश्न और ले लें।

हां, और कोई हों तो इकट्ठे ले लें, इकट्ठे ही चर्चा हो जाएगी।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

कोई दूसरा प्रश्न पूछिए, वे तीनों एक ही हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

अच्छी बात है। करीब-करीब एक ही बात पूछी गई है, उसकी मैं चर्चा कर लेता हूं। और सच में बहुत बातें पूछने को हैं भी नहीं। प्रश्न तो एक ही है कि मनुष्य आनंद को कैसे खोजे? आत्मा को कैसे खोजे? सत्य को कैसे खोजे?

और मैंने आपसे कहा कि उस खोज का जो माध्यम है वह निर्विचार होना है। समाधि के माध्यम से सत्य का अनुभव होता है या आत्मा का अनुभव होता है। समाधि का अर्थ हैः सारे विचारों का शून्य हो जाना। ये विचार कैसे शून्य हों, इसके दो रास्ते हैं। एक रास्ता तो है कि हम अपने भीतर विचार का पोषण न करें। हम सारे लोग विचार का पोषण करते हैं और संग्रह करते हैं। सुबह से सांझ तक हम विचार को इकट्ठा करते हैं। और इस इकट्ठा करने में हम कभी यह भी ध्यान नहीं रखते कि हम कचरा इकट्ठा कर रहे हैं? हम फिजूल का कचरा इकट्ठा कर रहे हैं या कोई सार्थक बात भी इकट्ठा कर रहे हैं?

अगर मेरे घर में कोई कचरा फेंक जाए तो मैं झगड़ा करूंगा। लेकिन अगर कोई आदमी आकर दो घंटे मेरे दिमाग में कोई विचार फेंक जाए, मैं कोई झगड़ा नहीं करता। दुनिया में एक-दूसरे के मस्तिष्क में विचार फेंकने की पूरी स्वतंत्रता है। इससे खतरनाक और कोई स्वतंत्रता नहीं हो सकती। क्योंकि मनुष्य का जितना घात ये विचार कर सकते हैं, उतनी और कोई चीज नहीं कर सकती। हम इस भांति जाने-अनजाने बिलकुल मूर्च्छित अवस्था में

विचारों को इकट्ठा करते रहते हैं। इन विचारों की पर्त पर पर्त हमारे भीतर पूरे चेतन-अचेतन मन पर इकट्ठी हो जाती हैं। उनकी इतनी गहरी दीवालें बन जाती हैं कि उनके भीतर प्रवेश करना मुश्किल हो जाता है। जब भी आप भीतर जाएंगे, ये ही विचार आपको मिल जाएंगे, आत्मा तक पहुंचना संभव नहीं होगा। ये विचार बीच में ही आपको रोक लेंगे, भीतर नहीं जाने देंगे। हर विचार अटकाता है और रोकता है। क्योंकि विचार आपको उलझा लेता है। जब भी आप भीतर अपने प्रवेश करेंगे, तभी कोई न कोई विचार आपको रोक लेगा, आप उसी के अनुसरण में लग जाएंगे। जब तक विचार बीच में रहेंगे, तब तक आपको पीछे नहीं जाने देंगे, वे ही रोक लेंगे।

निर्विचार होने का इसीलिए आग्रह है कि जब तक आप निर्विचार न हो जाएं, तब तक भीतर गति नहीं हो सकती; आप बीच में जाएंगे, कोई विचार आपको अटका लेगा, आप उसी को सोचने में लग जाएंगे। सोचने में लग जाएंगे, बाहर आ जाएंगे। वह विचार आपको बहुत दूर ले जाएगा। उसके एसोसिएशंस होंगे, वह आपको दूर ले जाएगा, आप वहीं भटक जाएंगे। आप पूरे भीतर प्रवेश नहीं कर पाएंगे। हर आदमी भीतर जाता है, जितना ज्यादा विचारवान आदमी होता है, विचार से भरा होता है, उतने बाहर से ही लौट आता है। उतने ही जल्दी कोई विचार उसको पकड़ लेता है, वह वापस लौट आता है।

ब्रिटिश विचारक डेविड ह्यूम ने लिखा है कि मैंने यह सुन कर कि भीतर प्रवेश करना चाहिए, बहुत बार भीतर प्रवेश करने की कोशिश की। लेकिन जब भी मैं भीतर गया, तो मुझे आत्मा तो नहीं मिली, कोई विचार मिल जाता था, कोई कल्पना मिल जाती थी, कोई स्मृति मिल जाती थी। मुझे कोई आत्मा नहीं मिली। मैं बहुत बार भीतर गया, ये ही मुझे मिले।

उसने ठीक लिखा। उसका अनुभव गलत नहीं है। आप भी अपने भीतर जाएंगे तो यही मिल जाएंगे; और ये आपको बाहर ले आएंगे।

तो जिसको भीतर जाना हो, पूरे भीतर जाना हो, उसे बीच की इन सारी बाधाओं को अलग कर देना जरूरी है।

तो पहली तो बात यह है कि जिसे निर्विचार होना हो, उसे व्यर्थ के विचारों को लेना बंद कर देना चाहिए, पहली बात।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, मैं बात कर रहा हूं। मैं उसकी बात कर रहा हूं।

उसे व्यर्थ के विचारों को लेना बंद कर देना चाहिए। इसकी सजगता उसके भीतर होनी चाहिए कि वह व्यर्थ के विचारों का पोषण न करे, उन्हें अंगीकार न करे, उन्हें स्वीकार न करे और सचेत रहे कि मेरे भीतर विचार इकट्ठे न हो जाएं। इसे करने के लिए जरूरी होगा कि वह विचारों में जितना भी रस हो, उसको छोड़ दे।

हमें विचारों में बहुत रस है। अगर आप एक धर्म को मानते हैं, तो उस धर्म के विचारों में आपको बहुत रस है।

जिसे निर्विचार होना है, उसे विचारों के प्रति विरस हो जाना चाहिए। उसे किसी विचार में कोई रस नहीं रह जाना चाहिए। उसे यह सोचना चाहिए कि विचार से कोई प्रयोजन नहीं, इसलिए उसमें कोई रस रखने का कारण नहीं।

कैसे वह विरस होगा? उन्होंने वहां पूछा कि कैसे यह संभव होगा?

यह संभव होगा विचारों के प्रति जागरूकता से। अगर हम अपने विचारों के साक्षी बन सकें--और यह बन सकना कठिन नहीं है--अगर हम अपने विचारों की धारा को दूर खड़े होकर देखना शुरू करें, तो क्रमशः जिस मात्रा में आपका साक्षी होना विकसित होता है, उसी मात्रा में विचार शून्य होने लगते हैं।

बुद्ध का एक शिष्य था, श्रोण। वह राजकुमार था। मुझे उसकी कथा इतनी प्रिय रही कि मैंने सारे मुल्क में बार-बार उसे कहा। और मुझे उसके मुकाबले कोई बात भी नहीं दिखाई पड़ती। वह राजकुमार था, वह दीक्षित होकर भिक्षु हो गया, साधु हो गया। पहले दिन जब वह भिक्षा मांगने जाने लगा तो बुद्ध ने उसे कहा कि अभी तुझे भिक्षा मांगने का कुछ पता नहीं, कल तक राजकुमार था, आज भिक्षा के पात्र को लेकर जाएगा, पता नहीं कैसा तुझे लगे। इसलिए मैंने अपनी एक श्राविका को कहा है कि जब तक तू भिक्षा के मांगने में निष्णात न हो जाए, तब तक भोजन वहीं कर लेना। तो अभी तू भिक्षा मत मांग, वहां जाकर भोजन कर आ।

वह राजकुमार श्रोण जो कि संन्यासी हो गया था, उस श्राविका के घर भोजन करने गया, उस महिला के घर भोजन करने गया। कोई दो मील का फासला था, वह रास्ते पर बहुत बातें सोचने लगा। उसे खयाल आया उन भोजनों का जो उसे प्रिय थे। और उसने आज सोचाः आज पता नहीं क्या अप्रिय भोजन मिले, क्या अरुचिकर भोजन मिले, क्या रूखा-सूखा मिले। उसे जो-जो प्रिय भोजन थे वे सब स्मरण आए और यह भी खयाल आया कि अब उनके मिलने की संभावना इस जीवन में दुबारा नहीं है। लेकिन जब वह श्राविका के घर पहुंचा और भोजन के लिए बैठा, तो देख कर हैरान हुआ, उसकी थाली में वे ही भोजन थे जो उसे प्रिय थे। उसे बड़ी हैरानी हुई! उसे बहुत अचंभा हुआ! फिर उसने सोचा, शायद यह संयोग की ही बात होगी कि आज ये भोजन बने हैं। उसने चुपचाप भोजन किया।

जब वह बीच में भोजन कर रहा था, उसे यह खयाल आया कि अभी भोजन करने के बाद एकदम फिर दो मील दोपहरी में रास्ता तय करना है। और आज तक मैंने ऐसा कभी नहीं किया, भोजन के बाद तो मैं विश्राम करता था।

वह श्राविका पंखा करती थी, उसने कहा कि भंते, अगर भोजन के बाद थोड़ी देर विश्राम करेंगे तो मुझ पर बड़ी कृपा होगी।

वह फिर थोड़ा हैरान हुआ, उसे लगा कि मैंने तो कहा नहीं, मन में सोचा था। लेकिन सोचा, शायद संयोग की बात होगी, मैंने सोचा, उसी वक्त उसने प्रार्थना की है।

एक चटाई डाल दी गई, वह उस पर लेटा। वह लेटते से ही उसे खयाल आया, आज अपना न तो कोई साया है, न कोई शय्या है, आज अपने पास कुछ भी नहीं।

वह श्राविका पीछे थी, उसने कहा, भंते, शय्या न तो आपकी है, न मेरी है; न साया आपका है, न मेरा है; किसी का भी कुछ नहीं है।

अब संयोग को मान लेना कठिन था। वह घबड़ा कर बैठ गया। उसने कहा, बात क्या है? क्या मेरे विचार पढ़ लिए जाते हैं?

उस श्राविका ने कहा कि ध्यान का अभ्यास करते-करते, पहले तो अपने विचार दिखाई देने शुरू हुए, फिर अपने विचार तो समाप्त हो गए, अब दूसरे के विचार भी दिखाई देने शुरू हो गए हैं।

वह उठ कर बैठ गया। उसने कहा कि मैं जाऊं?

उस श्राविका ने कहा कि आप अभी विश्राम कहां किए, लेटे ही थे।

लेकिन वह भिक्षु रुका नहीं। उसने जाकर बुद्ध को कहा कि मैं कल से उस श्राविका के यहां भोजन करने नहीं जा सकूंगा।

बुद्ध ने कहा, क्या बात है?

वह युवक कहने लगा कि बात...मेरा कोई अपमान नहीं हुआ, बहुत स्वागत हुआ, बहुत सम्मान हुआ, लेकिन मैं नहीं जाऊंगा, आप छोड़ दें उस बात को, उस श्राविका के यहां मैं नहीं जाऊंगा।

बुद्ध ने कहा, बिना जाने मैं कैसे छोड़ सकता हूं?

वह युवक बोला, जानने की बात यह है कि मैं उसके घर गया; वह विचार पढ़ने में समर्थ है। और मुझे तो उस सुंदर युवती को देख कर विकार और वासना भी मन में उठी थी, वह भी पढ़ ली गई होगी। अब मैं कल उसके द्वार पर कैसे जा सकता हूं? और किस मुंह को लेकर जाऊंगा?

बुद्ध ने कहा, मैंने जान कर तुम्हें वहां भेजा है, यह तुम्हारी साधना का हिस्सा है। कल भी तुम्हें वहीं जाना होगा, और परसों भी तुम्हें वहीं जाना होगा, और उसके बाद के दिनों में भी तुम्हें वहीं जाना होगा। उस दिन तक जिस दिन तक उस द्वार से तुम निर्विचार होकर न लौट आओ।

मजबूरी थी, उस भिक्षु को वहां जाना पड़ा। बुद्ध ने कहा कि एक स्मरण रखना, किसी विचार से लड़ना मत। किसी विचार से संघर्ष मत करना। किसी विचार के विरोध में खड़े मत होना। एक ही काम करना कि जब तुम रास्ते से जाओ, तो अपने भीतर सजगता को रखना और जो भी विचार उठते हों उनको देखते हुए जाना। सिर्फ मात्र देखते हुए जाना, और कुछ भी मत करना। तुम्हारा निरीक्षण, तुम्हारा ऑब्जर्वेशन बना रहे। तुम देखते रहो, अनदेखा कोई विचार न उठे, बेहोशी में कोई विचार न उठे। तुम्हारी आंख भीतर गड़ी रहे और तुम देखते रहो कि कौन विचार उठ रहे हैं। सिर्फ निरीक्षण करना, लड़ना मत।

वह युवक गया। जैसे-जैसे उस महिला का द्वार करीब आने लगा, मकान करीब आने लगा, उसकी घबड़ाहट और बेचैनी बढ़ने लगी। उसको परेशानी बढ़ने लगी। जैसे-जैसे बेचैनी बढ़ने लगी, वैसे-वैसे वह सजग होने लगा। जैसे-जैसे भय का बिंदु करीब आने लगा, जैसे-जैसे

लगने लगा कि अब वह महिला करीब ही होगी जो पढ़ सकती है, वैसे-वैसे वह अपनी आंख को भीतर खोलने लगा। जब वह सीढ़ियां चढ़ता था, उसने पहली सीढ़ी पर पैर रखा, उसने अपने भीतर देखा, वह हैरान हो गया, भीतर कोई विचार ही नहीं है! उसने दूसरी सीढ़ी पर पैर रखा, भीतर बिलकुल सन्नाटा मालूम हुआ। उसने तीसरी सीढ़ी पर पैर रखा, उसे वह दिखाई पड़ा अपने आर-पार देख रहा है, वहां एकदम खालीपन है, वहां कोई विचार नहीं है। वह बहुत घबड़ाया, ऐसा उसने कभी अनुभव नहीं किया था कि बिलकुल विचार ही न हों। और जब विचार बिलकुल नहीं थे तो उसे ऐसा लगा कि जैसे वह बिलकुल हवा हो गया, हलका हो गया।

वह गया, उसने भोजन किया, वह नाचता हुआ वापस लौटा। उसने बुद्ध के पैर पकड़ लिए और उसने कहा कि अदभुत अनुभव हुआ है। जब मैं उसकी सीढ़ियों पर पहुंच कर भीतर बिलकुल सजग हो गया था, सचेत हो गया था, होश से भर गया था, तो मैं हैरान हो गया, एक भी विचार नहीं था, सब विचार शून्य हो गए थे।

बुद्ध ने कहा, विचार को शून्य करने का उपाय है विचार के प्रति पूर्ण सजग हो जाना। जो व्यक्ति जितना सजग हो जाएगा विचारों के प्रति, उतने ही विचार उसी भांति उसके मन में नहीं आते, जैसे घर में दीया जलता हो तो चोर न आएं। और घर में अंधकार हो तो चोर झांकें और अंदर आना चाहें।

भीतर जो होश को जगा लेता है, उतने ही विचार क्षीण होने लगते हैं। जितनी मूर्च्छा होती है भीतर, जितना सोयापन होता है भीतर, उतने ज्यादा विचारों का आगमन होता है। जितना जागरण होता है, उतने ही विचार क्षीण होने लगते हैं।

निर्विचार होने का उपाय है: विचारों के प्रति साक्षी-भाव को साधना। कोई एक क्षण में सध जाएगा, यह नहीं कहता। कोई एक दिन में सध जाएगा, यह भी नहीं कह रहा हूं। लेकिन अगर निरंतर प्रयास हो, तो थोड़े ही दिनों में आपको पता चलेगा कि जैसे-जैसे आप विचारों को देखने लगेंगे...कभी घंटे भर को किसी एकांत कोने में बैठ जाएं और कुछ भी न करें, सिर्फ विचारों को देखते रहें। कुछ भी न करें उनके साथ, कोई छेड़-छाड़ न करें, सिर्फ उन्हें देखते रहें। और देखते-देखते ही धीरे-धीरे आपको पता चलेगा, वे कम होने लगे हैं। देखना जैसे-जैसे गहरा होगा, वैसे-वैसे वे विलीन होने लगेंगे। जिस दिन देखना पूरा हो जाएगा, जिस दिन आप अपने भीतर आर-पार देख सकेंगे, जिस दिन आपकी आंख बंद होगी और आपकी दृष्टि भीतर पूरी की पूरी देख रही होगी, उस दिन आप पाएंगे--कोई विचार का कोलाहल नहीं है, वे गए। और जब वे चले गए होंगे, उसी शांत क्षण में आपको अदभुत दृष्टि, अदभुत दर्शन, अदभुत आलोक का अनुभव होगा। वह अनुभव ही सत्य का दर्शन है। और वही अनुभव स्वयं का दर्शन है। स्वयं के माध्यम से ही सत्य जाना जाता है। और कोई द्वार नहीं है।

स्वयं के द्वार से ही सत्य को जाना जाता है। और सत्य को जान लेना आनंद में प्रतिष्ठित हो जाना है। असत्य में होना दुख में होना है। अज्ञान में होना दुख में होना है। और सत्य की उस ज्ञान-दशा में आनंद उपलब्ध होता है।

आनंद और आत्मा अलग न समझें। आनंद और सत्य अलग न समझें। स्वयं और सत्य अलग न समझें। ऐसी जो प्रक्रिया का उपयोग क्रमशः अपने जीवन में करेगा, वह कभी निर्विचार को अनुभव कर लेता है। निर्विचार को जो अनुभव कर लेता है, उसकी पूरी विचार की शक्ति जाग्रत हो जाती है, उसे चक्षु मिल जाते हैं।

जैसे किसी ने अंधेरे में प्रकाश कर दिया हो या जैसे किसी ने अंधे को आंख दे दी हों, ऐसा उसे अनुभव होता है। यह अगर क्रमिक साधना इसकी हो तो निश्चित ही उपलब्ध हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति अधिकारी है और हकदार है। जो अपने अधिकार को मांगेगा, उसे मिल जाता है। जो उसे छोड़े रखता है, वह खो देता है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

बिलकुल ही ठीक कह रहे हैं, कि अगर हमें इंजीनियरिंग सीखनी हो, टेक्नोलॉजी सीखनी हो, तो हमें दूसरों का विचार स्वीकार करना होगा। लेकिन अगर हमें प्रेम सीखना हो, तो हमें दूसरों का विचार नहीं लेना होगा। टेक्नोलॉजी में और धर्म में यही अंतर है। जो चीज सीखी जा सकती है, वह पदार्थ से संबंधित होती है। और जो चीज नहीं सीखी जा सकती, वह परमात्मा से संबंधित होती है। परमात्मा को सीखा नहीं जा सकता; नहीं तो फिर स्कूल-कालेज खोल लेंगे और सब मामला आसान हो जाएगा।

इस बात को स्मरण रखिए, साइंस सीखी जा सकती है, साइंस दूसरों के अनुभव का निचोड़ है; धर्म नहीं, धर्म अपना अनुभव है। और यहीं धर्म और साइंस बड़ी विभिन्न दिशाएं हैं। साइंस हमेशा परंपरा है; धर्म परंपरा नहीं है। साइंस पर एक वैज्ञानिक दूसरे वैज्ञानिक के कंधे पर खड़ा होता है। धर्म पर अपने ही पैरों पर खड़ा होना होता है; किसी का कंधा सहारा नहीं बन सकता। न्यूटन को हटा दें तो आइंस्टीन के खड़े होने की जगह न रह जाएगी। महावीर-बुद्ध हो हटा दें, फिर भी मैं खड़ा हो सकता हूं।

सवाल यह नहीं है। धर्म निजी और वैयक्तिक अनुभव है। साइंस सामाजिक अनुभव है। इसलिए साइंस सीखी जाती है, उसके कालेज हो सकते हैं, संस्थाएं हो सकती हैं। सत्य नहीं सीखा जा सकता। सत्य को तो स्वयं साधा जा सकता है, सीखा नहीं जा सकता। वह हमेशा निजी है। और निजी है इसलिए अदभुत है। निजी है इसलिए अदभुत है। साइंस की दिशा अलग है और धर्म की दिशा अलग है।

मैं समझता हूं--समय नहीं है, अन्यथा मैं उस पर और विस्तार से आपसे बात करता--फिर भी मैं सोचता हूं शायद मेरी बात थोड़ी-बहुत साफ हो सकी होगी।

एक-दो छोटे से प्रश्न और हैं।

एक तो पूछा है कि हाथी विचार नहीं करता, तो क्या वह आनंद को और आत्मज्ञान को उपलब्ध हो जाता है?

यह बहुत ही अच्छी बात पूछी है।

आपको जो यह विचार उठा, मुल्क में बहुत लोग मुझसे यह पूछते हैं। लेकिन निर्विचार होने में और विचारहीन होने में अंतर है। विचारहीन होने में और निर्विचार होने में अंतर है। निर्विचार का अर्थ है: जिसने विचारों का परित्याग किया हो। जो विचारों का परित्याग करने में समर्थ होता है, उसकी विचार-शक्ति जाग्रत हो जाती है। और विचारहीन होने का अर्थ है: जिसमें विचार का कोई होना ही नहीं है। वह विचार का अभाव है, एक। एक विचार-शक्ति का सदभाव है। निर्विचार होने से विचारहीन नहीं हो जाते आप, परिपूर्ण विचार को उपलब्ध होते हैं।

मैंने कहा कि निर्विचारणा जो है विचार-शक्ति के परिपूर्ण जागरण का उपाय है। विचारहीन होने को नहीं कह रहा हूं, निर्विचार होने को कह रहा हूं। अविवेक के लिए नहीं कह रहा हूं, पूरे विवेक को जगाने के लिए कह रहा हूं।

तो पशुओं में विचारणा नहीं है; वह विचार से भी नीचे की दशा है। मनुष्यों में विचार है; वह विचारहीनता से ऊपर की दशा है। संतों में निर्विचार है; वह विचार से भी ऊपर की अवस्था है। अविचार, विचार और निर्विचार, ये तीन सीढ़ियां हैं। और अक्सर जो नीचे की सीढ़ी है, वह ऊपर की सीढ़ी से मिलती-जुलती होती है। वहां वृत्त पूरा होता है। इसीलिए एकदम अबोध व्यक्ति और परिपूर्ण साधु में कुछ समानताएं मालूम होंगी। एकदम अज्ञानी में और परमज्ञानी में कुछ समानताएं मालूम होंगी। उनका व्यवहार कुछ एक सा लगेगा। और अनेक दफा भूल हो जाएगी। उसका कारण है कि दो परिपूर्णताएं एक जगह जाकर मिलती हैं। वह भी अबोध मालूम होगा, परमज्ञानी जो है बिलकुल अबोध मालूम होगा। अत्यंत बोध के कारण अबोध मालूम होगा। बहुत प्रकाश हो जाए तो आंख अंधी हो जाती है। यहां इतना प्रकाश हो तो आंख बंद हो जाती है। बिलकुल प्रकाश न हो तो अंधकार हो जाता है। बहुत प्रकाश हो जाए तो भी अंधकार हो जाता है। लेकिन बहुत प्रकाश से जो पैदा हुआ अंधकार है उसकी गरिमा अलग है और प्रकाश के न होने से जो अंधकार होता है उसका पतन अलग है।

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक छोटी सी कहानी से आज की चर्चा प्रारंभ करूंगा।

ऐसी ही एक सुबह की बात है। एक छोटे से झोपड़े में एक फकीर स्त्री का आवास था। सुबह जब सूरज निकलता था और रात समाप्त हो रही थी, तो वह फकीर स्त्री अपने उस झोपड़े के भीतर थी। एक यात्री उस दिन उसके घर मेहमान था। वह भी एक साधु, एक फकीर था। वह झोपड़े के बाहर आया और उसने देखा कि बहुत ही सुंदर प्रभात का जन्म हो रहा है।

उसने देखा कि बहुत ही सुंदर प्रभात का जन्म हो रहा है और बहुत ही प्रकाशवान सूर्य उठ रहा है। इतनी सुंदर सुबह थी और पक्षियों का इतना मीठा संगीत था, इतनी शांत और शीतल हवाएं थीं कि उसने भीतर आवाज दी उस फकीर स्त्री को। उस स्त्री का नाम राबिया था। उस साधु ने चिल्ला कर कहा, राबिया, भीतर क्या कर रही हो, बाहर आओ! परमात्मा ने एक बहुत सुंदर सुबह को जन्म दिया है!

उस राबिया ने भीतर से कहा, मेरे मित्र, क्या मैं तुमसे कहूं कि तुम्हीं भीतर आ जाओ। बाहर बहुत दिन रह चुके। और क्या मैं तुमसे कहूं कि जिस सूरज को उसने जन्म दिया है और जिस सुबह को उसने जन्म दिया है, उनमें उतना सौंदर्य कभी नहीं हो सकता। मैं तो भीतर उसको देख रही हूं जिसने जन्म दिया है उस सारे सौंदर्य को। उस राबिया ने कहा, तुम बाहर जिस सौंदर्य को देख रहे हो, उसके जन्म देने वाले को भीतर मैं देख रही हूं। बेहतर हो कि तुम ही भीतर आ जाओ।

और दुनिया में दो ही तरह के लोग हुए हैं--एक जो बाहर के सौंदर्य को देख कर जीवन समाप्त कर देते हैं और एक वे जो भीतर के सौंदर्य को भी देख पाते हैं। और दुनिया में दो ही तरह के समाज हैं; दो ही तरह के धर्म हैं; दो ही तरह के वर्ग हैं। और जब सारे वर्ग मिट जाएंगे, सारे समाज मिट जाएंगे, सारे संप्रदाय मिट जाएंगे, और जब गरीब-अमीर के बीच फासला नहीं होगा, मालिक और गुलाम के बीच कोई फासला नहीं होगा, तब भी ये दो वर्ग बने रहेंगे। ये कभी भी मिटने वाले नहीं हैं। ये दो वर्ग बहुत बुनियादी हैं। एक जो बाहर देखने वाले लोग हैं वे और एक जो भीतर देखने वाले लोग हैं वे। जो बाहर देखते हैं, वे केवल संसार को देख पाते हैं; और जो भीतर देखते हैं, वे सत्य को भी देख पाते हैं।

तो उस फकीर स्त्री ने सुबह-सुबह उस साधु को कहा, तुम्हीं भीतर आ जाओ, बहुत दिन बाहर रह लिए।

भीतर आने का यह आमंत्रण ही धर्म है। भीतर आने का यह बुलावा धर्म है। जिन लोगों ने भीतर जाकर देखा है, उन्होंने वे सारी चीजें उपलब्ध कर ली हैं, जो बाहर खोजने वाले उपलब्ध नहीं कर सके हैं। बाहर कोई कितना ही खोजे, न तो शांति मिलती है, न सत्य मिलता है, न आनंद मिलता है। बाहर भ्रम होता है कि मिल जाएगा, लेकिन मिल नहीं पाता। बाहर चलना तो बहुत होता है, लेकिन पहुंचना कभी नहीं होता।

आज तक पूरे मनुष्य के इतिहास में एक भी मनुष्य ऐसा नहीं हुआ जो बाहर चला हो और जिसने अंत में कहा हो, मुझे कृतार्थता मिल गई, मुझे धन्यता मिल गई; जिसने अंत में कहा हो, मुझे आनंद उपलब्ध हुआ है। करोड़ों-करोड़ों लोग इस जमीन पर रहे हैं और मिट गए हैं, लेकिन एक भी गवाही इस बात की नहीं है कि किसी मनुष्य ने यह कहा हो--मैंने बाहर खोजा और मुझे आनंद मिला। एक भी गवाही जिस बात की नहीं है, एक भी आदमी जिस पक्ष में नहीं है, फिर भी हम न मालूम कैसे अंधे हैं कि उसी दिशा में खोजेंगे जिस दिशा में कभी उपलब्ध नहीं हुआ है।

हां, ऐसी कुछ गवाहियां हैं जिनका कहना है कि भीतर आनंद उपलब्ध होता है। और मैं आपको यह भी कह दूं कि ऐसा एक भी आदमी नहीं हुआ जमीन पर, जिसने भीतर झांका हो और कह दिया हो कि वहां आनंद नहीं है। ऐसा भी एक भी आदमी नहीं हुआ। निरपवाद रूप से जिन्होंने भीतर झांका है, उन्होंने कहा है कि वहां आनंद है। एक भी मनुष्य पूरे मनुष्य के इतिहास में ऐसा नहीं है जिसने भीतर झांक कर कहा हो, वहां आनंद नहीं है।

ऐसा जो प्रमाणित सत्य हो, उस तरफ हमारी आंखें न हों, तो बड़ा आश्चर्य होता है। और ऐसा प्रमाणित जो असत्य हो, उसी तरफ हमारी दौड़ हो, तो बड़ी हैरानी होती है। जरूर हमारी बनावट में कोई भूल है। जरूर हमारे ढांचे में, दिमाग में कोई गड़बड़ है। जरूर कोई प्राकृतिक ऐसी गड़बड़ है कि सब जानते हुए भी हम बाहर की तरफ जाते हैं और भीतर नहीं आ पाते।

और अगर मैं आपको कहूं, तो ऐसी भूल आपको स्पष्ट दिखाई पड़ेगी। मनुष्य के साथ एक दुर्घटना है, और वह दुर्घटना यह है कि उसकी सारी इंद्रियों के द्वार बाहर खुलते हैं। कोई इंद्रिय भीतर की तरफ नहीं खुलती। उसका स्वयं का होना भीतर है और उसके सारे द्वार बाहर खुलते हैं। हम एक ऐसे मकान में रह रहे हैं जिसका कोई दरवाजा भीतर की तरफ नहीं खुलता, सब दरवाजे बाहर की तरफ खुलते हैं। तो जब भी हम आंख खोलते हैं, बाहर आंख खुलती है। जब भी कान खोलते हैं, बाहर कान सुनता है। जब भी हाथ फैलाते हैं, बाहर की चीज पकड़ में आ जाती है। हमारी सारी इंद्रियां बहिर्मुखी हैं। उनका निर्माण ऐसा है कि वे बाहर की तरफ खुलती हैं, वे भीतर की तरफ नहीं खुलतीं। और चूंकि वे भीतर की तरफ नहीं खुलतीं इसलिए जब हम में प्यास जगती है आनंद को पाने की, जब हमारे प्राण आनंद को पाने के लिए प्यासे होते हैं, और जब हमारे भीतर अभीप्सा सरकती है, अगर हमारे भीतर कण-कण, रोआं-रोआं दुख के ऊपर उठना चाहता है और शांति पाना चाहता है, तो स्वभावतः हम बाहर खोजने लगते हैं।

एक और छोटी कहानी कहूं, मुझे बड़ी प्रीतिकर रही है। और उसी फकीर स्त्री के संबंध में है, जिसके बाबत मैंने कहा, जिसने उस साधु को कहा कि तुम्हीं भीतर आ जाओ।

एक दिन सांझ लोगों ने देखा--वह फकीर स्त्री अपने दरवाजे के बाहर कुछ ढूंढती है। कुछ लोगों ने पूछा, क्या ढूंढती हो? वह अत्यंत वृद्ध थी और लोगों ने सोचा उसकी सहायता कर दें। उस स्त्री ने कहा, तुम सहायता तो करोगे, लेकिन जो मैं खोजती हूं, तुम शायद ही पा सको। क्योंकि मैं भी नहीं पा सकूंगी। लोगों ने कहा, फिर भी। फिर भी तुम खोज रही हो, तो हम कुछ सहायता कर दें, शायद मिल जाए। उस स्त्री ने कहा, मेरी कपड़ा सीने की एक सुई खो गई है, उसे खोजती हूं। उन लोगों ने भी खोजना शुरू किया। रात घिर गई थी, लेकिन थोड़ा सा प्रकाश जलता था एक रास्ते के लैंप पर और उसकी रोशनी पड़ती थी। वे उसे ढूंढते रहे।

फिर एक आदमी ने पूछा, सुई बहुत छोटी चीज है, हम यह तो पता लगा लें कि सुई गिरी कहां? कहां खोई? तो हम वहां खोज लें।

तो वह बुढ़िया कहने लगी, यह मत पूछो। यह मत पूछो।

लोगों ने कहा, यह न पूछेंगे तो खोजना मुश्किल है। रास्ता बड़ा है। सुई बहुत छोटी। प्रकाश बहुत कम।

वह बूढी स्त्री कहने लगी, सुई तो मेरे भीतर के कमरे में गुमी है।

तो उन लोगों ने कहा, फिर तुम पागल हो जो उसे बाहर खोजती हो!

वह स्त्री बोली, जब मैं सीती थी, मेरी सुई गिरी, तो भीतर सूरज डूबने के करीब था। मैं इतनी गरीब स्त्री हूं कि मेरे पास कोई दीया तो है नहीं, कोई प्रकाश तो है नहीं। अंधेरा हो गया तो मैं खोजती हुई बाहर की दहलान में आ गई, वहां थोड़ी रोशनी थी। फिर वह रोशनी भी चली गई तो बाहर सड़क पर आ गई, यहां लैंप जलता है, यहां खोजने में आसानी होगी।

उन लोगों ने कहा, तुम बिलकुल पागल हो! जो चीज जहां गुमी है वहीं खोजी जा सकती है।

तो उस फकीर स्त्री ने कहा कि मैं तुम सबको भी ऐसे ही खोजते देख रही हूं। तुम सब वहां खोज रहे हो जहां चीज गुमी ही नहीं।

और चूंकि मनुष्य की इंद्रियों का प्रकाश बाहर पड़ता है इसलिए आदमी बाहर खोजने लगता है। हमें पूछना जरूरी है कि हम जिस बात की तलाश कर रहे हैं उसे खोया कहां है? और यह स्मरण रखें, तलाश केवल उसकी होती है जिसे खोया हो, अन्यथा हमें पता भी नहीं हो सकता।

मनुष्य आनंद को खोजता है, यह इस बात का सबूत है कि आनंद खोया गया है। अन्यथा आनंद का पता भी नहीं हो सकता था। मनुष्य सत्य को खोजता है, यह इस बात की सूचना है कि सत्य खोया गया है। अन्यथा सत्य का कोई पता भी नहीं हो सकता था। हम प्राणों के किसी तल पर जानते हैं कि सत्य को हमने खोया है, आनंद को हमने खोया है, इसलिए उन्हें खोजते हैं। लेकिन हम यह नहीं पूछते कि उसे खोया कहां है? और जो यह न पूछेगा उसकी सारी खोज व्यर्थ हो जाएगी।

सबसे पहले यह जानना जरूरी है कि हमने आनंद को खोया कहां है? क्या हमने उसे बाहर के जगत में खोया है, तो हम उसे बाहर खोजें?

आप कहेंगे, हमें कुछ भी पता नहीं हमने उसे कहां खोया।

तब भी मैं यह कहूंगा कि यह पता न हो कि कहां खोया, तो जो समझदार है वह सबसे पहले अपने मकान में खोजेगा। इसके बाद बाहर निकलेगा। अगर वहां न मिले तो फिर इस बड़ी दुनिया में खोजने निकलना चाहिए। सबसे पहले जो चीज खो गई है, उसे भीतर खोज लेना चाहिए। अगर वहां न मिले तो फिर इस सारी बड़ी दुनिया में खोजने निकलना चाहिए।

लेकिन हम वहां नहीं खोजते और बाहर खोजने निकल जाते हैं। और फिर यह दुनिया बहुत बड़ी है। और इसके छोर बहुत अनंत हैं। और जीवन बहुत अल्प है। हम खोजते समाप्त हो जाते हैं और दुनिया के छोरों तक नहीं पहुंच पाते हैं। इसलिए यह भ्रम बना रहता है कि अभी कुछ खोजने को बाकी दुनिया थी, शायद वहां मिल जाता। इसलिए जन्म-जन्म हम खोजते

हैं। हमारे हजारों जन्म चुकता हो जाएंगे, दुनिया समाप्त नहीं होगी। उसके रास्ते बहुत अनंत हैं।

जहां इंद्रियां ले जाती हैं हमें, वहां कोई अंत नहीं है, वहां कितना ही खोजा जाए, कभी आप अंत पर नहीं पहुंचेंगे। इस दुनिया के अंत पर अभी कोई नहीं पहुंचा, और कभी कोई नहीं पहुंचेगा। ऐसी कोई जगह ही नहीं हो सकती जहां दुनिया अंत होती हो, क्योंकि फिर क्या होगा? ऐसी कोई जगह नहीं जहां दुनिया अंत होती हो। इसका अर्थ हुआ कि इंद्रियां एक ऐसी यात्रा पर मनुष्य को ले जाती हैं जिसका कोई अंत नहीं है। और जिसका कोई अंत नहीं है वहां उपलब्धि कैसे हो सकती है? जिसका कोई अंत नहीं है वहां पहुंचना कैसे हो सकता है? और जिसका कोई अंत नहीं है वहां पूर्णता कैसे हो सकती है?

सबसे पहले, जिनका विवेक और जिनका विचार जाग्रत है, वे अपने भीतर खोजेंगे। उसके बाद, उसके बाद ही बाहर निकलेंगे। लेकिन मैंने आपसे कहा, जो भीतर खोजता है, उसे बाहर निकलने की जरूरत नहीं रह जाती। क्योंकि जिसकी तलाश थी, उसे वह मिल जाता है।

यह भीतर खोजने के विज्ञान का नाम ध्यान है। कैसे हम अपने भीतर खोजेंगे, उसकी पद्धति का नाम ध्यान है। ध्यान से मेरा अर्थ प्रार्थना नहीं है। प्रार्थना किसी और से की जाती है, ध्यान किसी और से नहीं किया जाता। प्रेयर और मेडिटेशन में जमीन-आसमान का भेद है। प्रार्थना और ध्यान में जमीन-आसमान का भेद है। प्रार्थना किसी से की जाती है, ध्यान किसी से किया नहीं जाता। ध्यान का दूसरे से कोई संबंध नहीं है।

ध्यान तो स्वयं का परिवर्तन है। ध्यान तो स्वयं के चित्त को इतना निर्दोष, इतना शांत, इतना शून्य बना लेने का नाम है कि वहां चित्त की झील इतनी शांत हो जाए कि उस पर कोई लहर का कंपन न उठता हो। तो उस शांत दर्पण जैसी झील में सत्य के प्रतिबिंब को पकड़ा जा सकता है।

प्रार्थना ध्यान नहीं है। और प्रार्थना मूल अर्थ भी नहीं रखती साधना का। प्रार्थना तो अक्सर हमारी वासनाओं का ही रूपांतरण है। क्योंकि प्रार्थना में अक्सर हम मांगते हैं। ध्यान में कुछ मांगा नहीं जाता। और प्रार्थना में हम परमात्मा की स्तुति करते हैं। हम बड़े नासमझ हैं। हम सोचते हैं कि परमात्मा प्रशंसा से आनंदित होता होगा। हम परमात्मा की कल्पना उन्हीं छोटे-छोटे लोगों की तरह करते हैं, जो प्रशंसा से प्रशंसित होते हैं और निंदा से निंदित हो जाते हैं। हमने परमात्मा की कल्पना आदमी की शक्ल में ही कर ली है और हम सोचते हैं कि जिन-जिन बातों से आदमी प्रशंसित होता है, आनंदित होता है, उनसे परमात्मा भी होता होगा।

सारी दुनिया में परमात्मा की प्रार्थना परमात्मा की स्तुति में की जाती है, जो कि बिलकुल नासमझी की बात है। परमात्मा की प्रार्थना करने से कोई अर्थ नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है। हां, ध्यान करने से व्यक्ति जरूर परमात्मा को उपलब्ध होता है। ध्यान करने से जरूर व्यक्ति परमात्मा को उपलब्ध होता है, प्रार्थना करने से नहीं।

परमात्मा को खुश नहीं किया जा सकता। क्योंकि जिसे दुखी नहीं किया जा सकता, उसे खुश भी नहीं किया जा सकता। जिसे परेशान नहीं किया जा सकता, उसे प्रसन्न भी नहीं किया जा सकता। उसे किसी के पक्ष में आंदोलित नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसे किसी के विपक्ष में नहीं किया जा सकता। जो लोग प्रार्थना करते हों और सोचते हों कि वे लोग डूब जाएंगे जो प्रार्थना नहीं करते हैं, तो बड़े नासमझ हैं। परमात्मा आपकी प्रार्थनाओं से आंदोलित नहीं होता। आपकी क्षुद्र कामनाओं से आंदोलित नहीं होता।

लेकिन अगर आपके भीतर परिवर्तन हो जाए, आपकी चेतना समग्रीभूत रूप से परिवर्तित हो जाए, ट्रांसफार्मेशन हो जाए, तो आप परमात्मा से जरूर संबंधित हो जाते हैं। क्योंकि उस क्षण में आप और परमात्मा के बीच कोई फासला और दूरी नहीं रह जाती। क्योंकि उस क्षण में आप जानते हैं कि आप स्वयं परमात्मा के हिस्से हैं। और यह दुखद है कि जो परमात्मा का हिस्सा है वह परमात्मा के चरणों पर सिर टेके। यह परमात्मा को ही परमात्मा की प्रार्थना करवाना बिलकुल नासमझी है।

प्रार्थना इसलिए ध्यान नहीं है। ध्यान बड़ी दूसरी बात है। उस संबंध में आज मैं सुबह आपसे कुछ कहना चाहता हूं।

ध्यान क्या है?

इसके पहले कि मैं कहूं कि ध्यान क्या है, मैं कुछ बातें बता दूं कि ध्यान क्या नहीं है।

मैंने पहली बात कही कि प्रार्थना ध्यान नहीं है। दूसरी बात आपसे कहूं, एकाग्रता ध्यान नहीं है, कनसनट्रेशन ध्यान नहीं है। साधारणतः यही समझा जाता है कि चित्त को एकाग्र कर लेना ध्यान है। एकाग्रता ध्यान नहीं है। एकाग्रता बड़ी छोटी बात है। एकाग्रता में भी बाहर एक बिंदु शेष रह जाता है, जिस पर हम मन को एकाग्र करते हैं। एकाग्रता में भी हम बाहर ही होते हैं, भीतर नहीं होते। क्योंकि एकाग्रता में किसी नाम पर, किसी प्रतिमा पर, किसी विचार पर, किसी शब्द पर, किसी मंत्र पर, किसी रूप पर हम अपने को एकाग्र करते हैं। एकाग्रता का मतलब ही है, चित्त अब भी बाहर से जुड़ा है। एकाग्रता संसार का हिस्सा है, साधना का हिस्सा नहीं है।

ध्यान बड़ी दूसरी बात है। इसलिए जो सोचते हों कि हम चित्त को एकाग्र कर लेंगे तो ध्यान हो गया, तो गलत सोचते हैं। ध्यान का अर्थ है: बाहर से कोई संबंध न रह जाए। बाहर से असंबंधित हो जाने का नाम ध्यान है। एकाग्रता तो बाहर से संबंध है। तो ध्यान का अर्थ हुआ कि चित्त की बाहर के जगत में कोई गति न रह जाए। चित्त बाहर न जाता हो। चित्त का व्यापार बाहर न चलता हो। चित्त का कोई व्यापार न चलता हो। चित्त बिलकुल निस्पंद हो जाए, चित्त बिलकुल शून्य हो जाए। चित्त की कोई गति न रह जाए, चित्त अगति को उपलब्ध हो जाए। उस अवस्था को पतंजलि ने निरोध कहा है। चित्त अगति को उपलब्ध हो जाए। कोई गति, कोई व्यापार, कोई स्पंदन न रह जाए। उस निस्पंद क्षण में, उस ठहरे हुए क्षण में, उस रुके हुए क्षण में जब सब रुक गया हो, भीतर कोई चीज चलायमान न

हो, सब ठहर गई हों बातें, सब ठहर गया हो, थम गया हो--उस अवस्था का नाम ध्यान है।

ध्यान एकाग्रता नहीं, ध्यान शून्यता है। शून्यता में कोई बिंदु नहीं रह जाता जहां हम टिकते हों, कोई आधार नहीं रह जाता। सब निराधार हो जाता है।

एकाग्रता को जो लोग ध्यान समझ लेते हैं, उनके लिए ध्यान एक तरह का दमन, एक तरह का सप्रेशन, एक तरह की जबरदस्ती हो जाती है। वे अपने मन को जबरदस्ती कहीं लगाने की कोशिश करते हैं। और ऐसे लोग बड़े असफल हो जाते हैं। जबरदस्ती मन को जो कहीं लगाने की कोशिश करेगा, वह मन को जीत नहीं पाता, मन से ही हार जाता है। और तब उसे ऐसा लगता है कि मेरे पापों के कारण, न मालूम क्यों मेरी स्थिति खराब है, इसलिए मुझे ध्यान उपलब्ध नहीं होता। वह गलत रास्ते से चल रहा है, इसलिए ध्यान उपलब्ध नहीं हो रहा।

वह अपने हाथ से ही गलत कर रहा है। मन के भीतर जो व्यक्ति द्वंद्व करेगा, कांफ्लिक्ट करेगा, लड़ेगा, वह अपने को दो हिस्सों में तोड़ रहा है। जिससे लड़ रहा है, वह भी वही है; और जो लड़ रहा है, वह भी वही है। अगर मैं अपने इन दोनों हाथों को लड़ाऊं, तो कौन जीतेगा? अगर मेरे ये दोनों हाथ लड़ें और मैं अपनी सारी ताकत लगा दूं इन दोनों हाथों को लड़ाने में, तो कौन जीतेगा? कोई जीतेगा? इन दोनों हाथों में से कोई नहीं जीत सकता, क्योंकि ये दोनों हाथ मेरे हैं। और इन दोनों के लड़ाने में इतना होगा कि मेरी शक्ति ह्रास होगी और मैं कमजोर होता जाऊंगा। ये हाथ तो हारेंगे-जीतेंगे नहीं, मैं हार जाऊंगा।

जो व्यक्ति मन के भीतर लड़ाई शुरू कर देता है, मन के किसी हिस्से से स्वयं लड़ने लगता है, मन को दो हिस्सों में बांट कर लड़ाने लगता है, वह दो हाथ लड़ा रहा है अपने। उन दोनों में से तो कोई नहीं जीतेगा, वह क्षीण और कमजोर हो जाएगा और ह्रास हो जाएगा।

तिब्बत में एक साधु था, मिलारेपा। वह एक मंदिर में ठहरा हुआ था। वह बड़ा शांत और सीधा साधु था। लेकिन उसके बाबत लोगों में यह प्रचार था कि उसको बड़ी सिद्धियां उपलब्ध हैं और अगर वह आशीर्वाद भी दे दे किसी को, तो उसे भी सिद्धियां उपलब्ध हो जाती हैं। वह तो बड़ा शांत और सीधा आदमी था। उसे सिद्धियों का कोई पता भी नहीं था। लेकिन एक आदमी उसके पास आया एक रात और उसने उसके पैर पकड़ लिए और उसने कहा कि मुझे कुछ सिद्धि चाहिए। मैं बहुत दुखी और पीड़ित हूं। मुझे कोई मंत्र चाहिए जो सिद्ध हो जाए तो मेरी सारी दुख-पीड़ा अलग हो जाए।

उस साधु ने कहा, मैं तो कुछ जानता नहीं। मंत्र, जब मैं साधु नहीं हुआ था तो याद भी थे, जब से साधु हुआ, वह भी भूल गया। पहले भगवान का नाम भी जानता था, जब से साधु हुआ, वह भी भूल गया। पहले कुछ मन में चिंतन भी चलता था, जब से साधु हुआ, वह भी पुंछ गया। पहले कुछ धर्मशास्त्र भी बांध कर चलता था, जब साधु हुआ, उनको नदी में डाल दिया। अब तो मेरे पास कुछ भी नहीं है, मैं खाली आदमी हूं। मुझे कहो तो मैं तुम्हारे साथ चलूं, बाकी और कुछ भी देने को मेरे पास नहीं है।

वह व्यक्ति पीछा नहीं छोड़ा। वह बोला कि मैं यहीं बैठा रहूंगा, रात भर जागा रहूंगा, कल भूखा रहूंगा, और तब तक नहीं हटूंगा जब तक कि कुछ मुझे मंत्र न दे दें।

वह साधु बड़ा हैरान हुआ। अंततः उसने एक कागज पर चार पंक्तियां लिख कर दीं और उसको कहा कि इन्हें ले जाओ और रात एकांत में बैठ कर पांच दफे इनका पाठ कर लेना। जैसे ही तुम इनका पांच दफा पाठ पूरा कर लोगे, तुममें कुछ शक्तियां जाग जाएंगी। फिर तुम उन शक्तियों से जो चाहो करा लेना।

वह आदमी कागज लेकर भागा। वह पैर छूना भी भूल गया जाते वक्त, धन्यवाद देना भी भूल गया। उसे कुछ खयाल भी न रहा कि इसे धन्यवाद भी देना है।

लेकिन जब वह सीढ़ियां आधी उतरा था तो उस साधु ने कहा, ठहरो! ठहरो! दो भूलें हो गईं। तुमने मुझे धन्यवाद नहीं दिया और एक शर्त मुझे बतानी थी वह मैं नहीं बता पाया। तुम मुझे धन्यवाद नहीं दे पाए और एक शर्त मुझे बतानी थी वह मैं नहीं बता पाया। एक शर्त मुझे मेरे गुरु ने कही थी कि इस मंत्र को पढ़ते वक्त बंदर का स्मरण नहीं आना चाहिए। तो पांच दफे पढ़ना है, लेकिन बंदर का स्मरण न आए।

वह आदमी बोला, मुझे कभी जीवन में बंदर का स्मरण नहीं आया। इसको पांच दफे पढ़ने में क्यों आएगा? वह भागा।

लेकिन वह पूरी सीढ़ियां भी नहीं उतर पाया कि बंदर का स्मरण आना शुरू हो गया। मंदिर की बड़ी सीढ़ियां थीं। वह जब नीचे उतर कर आया तो उसने देखा कि उसके मन में तो बंदर का खयाल और चित्र आ रहा है। वह बहुत घबड़ाया। उसने उसे बहुत छिटकने की, हटाने की कोशिश की। लेकिन जैसे-जैसे वह हटाने लगा, और भी बंदर उसके साथ आने लगे। वह घर पहुंचते-पहुंचते बंदरों की भीड़ से घिर गया। उसके मन में बंदर ही बंदर हो गए। वह बहुत घबड़ाया। उसने कहा, यह क्या पागलपन किया! इस साधु ने कैसी नासमझी की! भूल गया था तो भूल ही जाता। उस शर्त को न बताता।

उसने रात भर कोशिश की। बार-बार स्नान किया। बार-बार भगवान की प्रार्थना की। बार-बार बैठा। कोई प्रयोजन हल न हुआ। उसके मन में बंदर ही बंदर हो गए।

वह सुबह वापस आया। उसने वह मंत्र का कागज लौटा दिया साधु को और कहा, इस जन्म में अब असंभव है। अब अगले जन्म में ही संभव हो सकता है। वह भी तब जब शर्त न बताई जाए।

और यह है, और यह सच है। उसको यह कैसे हुआ? ऐसा ही आप सबको होता है, रोज होता है। जिन विचारों को आप निकालना चाहते हैं, वही विचार आने लगते हैं। यह स्वाभाविक है। जिनको आप धक्के देते हैं, उनको आप आमंत्रण दे रहे हैं। जिसको न बुलाना हो, उसे कभी धक्का मत देना। जिसे धक्का दिया, वह आएगा। यह नियम है। जितने जोर से धक्का देंगे, उतने तीव्र वेग से वह लौटेगा।

अभी हम एक पहाड़ पर थे। मेरे साथ कुछ मित्र थे, कुछ बहनें थीं। वहां एक जगह देखने गए। एक ईको-पॉइंट था। वहां हम जो आवाज करते, पहाड़ से वह उतने ही वेग से वापस

लौट आती। किसी ने रास्ते में मुझे कहा, बहुत सुंदर जगह थी। मैंने कहा, पूरी दुनिया ऐसी जगह है। हम जो आवाज करते हैं, वही लौट आती है। और जितने जोर से आवाज करते हैं, उतने ही जोर से लौट आती है। और धीरे-धीरे हम अपनी ही आवाजों से भर जाते हैं और परेशान और हैरान हो जाते हैं।

हर आदमी पीड़ित है उन विचारों से जिनको उसने धक्के दिए हैं, और हर आदमी उन वासनाओं से पीड़ित है जिनको उसने हटाया है और कोशिश की है कि दूर हट जाओ। हम जितने जोर से धकाते जाते हैं, उतने ही हम उन्हीं से घिरते चले जाते हैं। एक दिन हम पाते हैं, अपने हाथों फांसी लगा ली है। चारों तरफ वे ही शत्रु इकट्ठे हैं जिन-जिन को हमने अलग करना चाहा था और उन मित्रों का कोई पता नहीं चलता जिनको हमने चाहा था कि वे रुक जाएं।

जिसको आप रोकना चाहते हैं, वह विलीन हो जाता है। जिसको आप हटाना चाहते हैं, वह चला आता है। नियम जीवन के चित्त का यही है--जिसको हटाना है उसे रोक लें और देखें; और जिसको बुलाना हो उसको धक्के दें और हटाएं। विचारों को विसर्जित करना हो, चित्त को खाली करना हो, तो विचारों को धक्के न दें, रोकें और देखें। जिस विचार से मुक्त होना हो, उसको रोक लें पकड़ कर और पूरी ताकत से उसे देखें। और आप पाएंगे, जैसे-जैसे आपकी दृष्टि गहरी होगी और तीक्ष्ण होगी, वह विचार पिघल जाएगा। जैसे सूरज के उगने पर घास के ऊपर पड़े हुए ओस के कण विलीन हो जाते हैं, जैसे उत्ताप ओस को भाप बना देता है, वैसे ही दृष्टि की तीक्ष्णता विचारों को हवा कर देती है। उनको वाष्पीभूत कर देती है। वे एवोपरेट हो जाते हैं।

न एकाग्रता करनी है, न संघर्ष करना है। दृष्टि को पैना और तीखा करना है। दर्शन की क्षमता को विकसित करना है। अगर हम विचारों के प्रति दर्शन की क्षमता को विकसित कर सकें, अगर हम उनको देखने में समर्थ हो जाएं, अगर कोई विचार पूरा का पूरा आमूल देख लिया जाए, तो वह विचार तत्क्षण मर जाता है। दर्शन विचार की मृत्यु है और दर्शन ध्यान का प्राण है। एकाग्रता नहीं, दर्शन ध्यान का प्राण है। अपने सारे विचारों को उघाड़ लें। एक घंटा, आधा घंटा चौबीस घंटे की दौड़ में रुक जाएं, एकांत में ठहर जाएं। द्वार बंद कर लें, अकेले हो जाएं और अपने सारे विचारों को कहें, आओ! उनको निमंत्रण दे दें कि आओ और अपने को संयत कर लें कि मैं लडूंगा नहीं, किसी विचार के पीछे नहीं जाऊंगा, किसी विचार का अनुगमन नहीं करूंगा, किसी विचार का विरोध नहीं करूंगा, मात्र दर्शक की भांति बैठा और देखता रहूंगा। कुछ भी नहीं करूंगा, बस देखता रहूंगा बैठ कर। जो भी विचार आएंगे उनको देखता रहूंगा।

धीरे से यह बात सधेगी, क्योंकि हमारी आदतें खराब हैं। हमें सिखाया जाता है कि बुरे विचार अलग करो और भले विचार पकड़ो। हमारी नैतिक शिक्षा यह है कि बुरे विचार को मत पकड़ना, भले विचार को पकड़ लेना। यह ऐसे ही है जैसे कोई कहे: सिक्के के एक पहलू को रख लेना और दूसरे पहलू को फेंक देना। तो एक पहलू को पकड़ेंगे और दूसरे को फेंकेंगे,

बड़ी दिक्कत में पड़ जाएंगे। सिक्का या तो पूरा बचता है, या पूरा फेंका जाता है। उसमें से आधा बचाया नहीं जा सकता। बुरे और भले विचार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इनमें से एक को बचाना और दूसरे को फेंकना संभव नहीं है। जो बुरे को हटाएगा और भले को रोकेगा, वह बुरे से पीड़ित रहेगा, वह बुरे से मुक्त नहीं हो सकता। क्योंकि वह काम ही गलत कर रहा है। वे तो अनिवार्य हिस्से हैं, एक-दूसरे से जुड़े हैं। पूरे विचार को फेंका जा सकता है। पूरे विचार को फेंका जा सकता है। शुभ-अशुभ दोनों चले जाएंगे। और तब जो शेष रह जाता है वह दिव्य है। वह न शुभ है, न अशुभ है; वह भागवत है, वह डिवाइन है। उसका शुभ-अशुभ से कोई नाता नहीं। वह स्थिति धर्म की है जब कोई शुभ-अशुभ नहीं रह जाता और दोनों से शून्य चित्त रह जाता है। उसकी जो चर्या है वैसे शून्य चित्त की, वही पुण्य है।

यह जो मैंने आपसे कहा--शुभ विचार उठे, अशुभ विचार उठे, कुछ विचार न करें कि क्या शुभ है, क्या अशुभ है और दोनों को चुप देखें। तो ध्यान का पहला अंग है: दर्शन को विकसित करना, देखने को विकसित करना, गहरी दृष्टि विकसित करना। हम तो ऐसे लोग हैं, दृष्टि हमारी इतनी फीकी है, हमें उसे गहरा करने का कोई पता नहीं कि वह कैसे गहरी हो जाए। हम तो इस जगत को भी बहुत उथला-उथला देखते हैं।

मेरे पास मैं लोगों को देखता हूं। आप दरख्तों के नीचे से निकल जाएंगे, वे आपको दिखाई नहीं पड़ेंगे। फूलों के पास से निकल जाएंगे, वे आपको दिखाई नहीं पड़ेंगे। लोगों में से आप निकल जाएंगे, वे आपको दिखाई नहीं पड़ेंगे। आपकी दृष्टि बड़ी उथली है। आप देखते ही कहां हैं? किसी तरह भागे जा रहे हैं। जो दिख जाता है, दिख जाता है। देखना बड़ी दूसरी बात है। उसके लिए ठहरना, रुकना जरूरी है। उस अभ्यास को करने के लिए कि हमें देखना संभव हो पाए, बाहर के जगत में भी देखने की क्षमता को विकसित किया जा सकता है।

कभी दस-पांच क्षण को किसी फूल के पास बैठ जाएं और चुपचाप देखते रहें। सोचें न कि गुलाब का है, कि जुही का है, कि किसका है। सोचें न, सिर्फ देखते रहें। कुछ न करें, सिर्फ देखें। और इतना ही खयाल रखें कि मुझे सिर्फ यह गुलाब दिखाई पड़ रहा है, और मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं। कभी चांद को देखें और चुपचाप देखते रह जाएं। कभी आकाश को देखें और चुपचाप देखते रह जाएं। कभी किसी व्यक्ति के चेहरे को देखें और चुपचाप देखते रह जाएं। कभी समुद्र के किनारे बैठें और चुपचाप देखते रह जाएं। कुछ सोचें न, कुछ विचारें न, सिर्फ देखें। धीरे-धीरे देखने की क्षमता आपमें विकसित होगी।

फिर वैसे ही अपने भीतर आंख बंद करके विचार को देखें। जैसे पदार्थ को देखा है वैसे ही विचार को देखें। विचार भी पदार्थ की ही प्रतिध्वनि है। वह भी बाहर के जगत में जो कोलाहल है उसका ही सुना हुआ स्वर है। जो हमारी इंद्रियां बाहर के जगत में मांगती हैं निरंतर, जो उन्हें उपलब्ध नहीं होता, उसकी आकांक्षाएं विचार में हैं। जो उपलब्ध हो जाता है, उसकी प्रतिछवियां विचार में हैं। बाहर इंद्रियों का जो कोलाहल है, उसके ही रिफ्लेक्शंस, उसके ही संस्कार, उसकी ही ध्वनियां भीतर इकट्ठी हो गई हैं, वे ही विचार हैं।

मैंने सुना है, एक भवन में एक कुत्ता और बिल्ली दोनों एक साथ पाल लिए गए थे। एक सुबह उस बिल्ली ने उठ कर कहा, आज रात तो अदभुत हुआ, मैंने स्वप्न देखा कि इस वर्ष वर्षा में पानी नहीं, चूहे गिरेंगे।

वह कुत्ता बोला, बिलकुल नासमझी की बात है। न किसी शास्त्र में कभी लिखा है यह, न पुराणों में कभी इसकी कथा सुनी है, न किसी इतिहास में इसका उल्लेख है कि कभी चूहे गिरे हों। हां, ऐसे उल्लेख जरूर हैं जब वर्षा में हड्डियां गिरीं और पानी नहीं गिरा। उसने कहा, मैं भी स्वप्न देखता हूं, कभी यह नहीं देखा कि चूहे गिरते हों। हड्डियां गिरती हैं।

उस कुत्ते ने ठीक ही कहा। उसकी जो प्रतिध्वनियां हैं जगत के प्रति, वे हड्डियों की हैं। बिल्ली ने ठीक ही देखा। उसकी जो प्रतिध्वनियां हैं जगत से, वे चूहों की हैं।

हमारी इंद्रियों का जो बाहर के जगत में व्यापार चल रहा है, उनकी ही सारी प्रतिध्वनियां इकट्ठी होकर भीतर विचार बन जाती हैं, स्वप्न बन जाती हैं। यह सारा का सारा जो भीतर कोलाहल है, इसको भी बाहर के जगत का हिस्सा समझें। इसको भी वैसे ही देखें जैसे बाहर के जगत को देखते हैं। जैसे यह खंभा है, और मकान है, और रास्ते हैं, और लोग हैं, वैसे ही अपने भीतर भी जानें कि इस खंभे की छाया है, लोगों की छायाएं हैं, सड़कों की छायाएं हैं, वे भी बाहर के जगत के प्रतिफलन हैं। वहां भी चुप बैठ जाएं और देखें। एक असली दुनिया बाहर है। एक उस असली दुनिया ने आघात कर-कर हमारे भीतर एक नकली दुनिया पैदा कर दी। उस नकली दुनिया का नाम विचार है। वह जो विचार भीतर पैदा हुआ है, वही बाधा है। यह बाहर का जगत बाधा नहीं है परमात्मा को पाने में। वह जो भीतर प्रतिध्वनि पैदा हुई है इस जगत की, वह बाधा है।

अब कुछ नासमझ हैं जो इस बाहर के जगत को छोड़ने को संन्यास समझ लेते होंगे। वे गलती में हैं। यह बाहर के जगत को छोड़ कर तो जाओगे कहां? इस बाहर के जगत को छोड़ कर जाओगे कहां? ऐसी कोई जगह नहीं जहां बाहर का जगत न हो। जो भी जगह होगी वह जगत के भीतर होगी। बाहर के जगत को छोड़ने को जो संन्यास और साधना समझ लेता हो, वह गलती में है। इसे छोड़ कर जाएंगे कहां? इसे नहीं छोड़ा जा सकता। हां, भीतर का जो जगत है, उसे छोड़ा जा सकता है।

तो मैं यह नहीं कहता कि जिसने संसार को छोड़ दिया, वह संन्यासी है। मैं कहता हूं, जिसके भीतर संसार नहीं, वह संन्यासी है। जिसके भीतर यह संसार नहीं है विचार का, वह संन्यासी है। जिसने भीतर इस जगत को गिरा दिया, जो भीतर अकेला है, और बाहर जगत है, और बीच में दोनों के कुछ भी नहीं है, वह आदमी संन्यासी है। जिसके और संसार के बीच में कुछ भी नहीं है, वह आदमी संन्यासी है। और जब दोनों के बीच में कुछ भी नहीं रह जाता तो यह संसार संसार नहीं रह जाता, परमात्मा का रूप हो जाता है। तब उस खाली स्थान में से दिखाई पड़ता है कि यह तो स्वयं परमात्मा है। यह तो सारा जगत तब प्रभु-चैतन्य से व्याप्त, तब यह कण-कण उसके ही आनंद से आंदोलित, और तब ये हवाएं उससे ही प्रवाहित, और यह सारा प्रकाश उससे ही उदभूत, और यह सारा जगत उसका ही

आनंदमग्न नृत्य हो जाता है। यह उसके ही संगीत की स्फुरणा हो जाता है। लेकिन तब, जब भीतर हमारे कोई जगत न हो।

वह जो भीतर जगत है, उसे नष्ट करना है, उसे विलीन करना है। उसे विलीन करने का जो उपाय मैंने कहा, पहली बात तो उपाय के लिए यह है कि हम अपने विचार के साक्षी, दर्शक, द्रष्टा, उसके देखने वाले बनें। और दूसरी बात यह है, जो सहयोगी और उपयोगी है--एक तो यह करें, चौबीस घंटे में थोड़े समय को विचार के दर्शक हो जाएं। क्रमशः थोड़े दिनों के अभ्यास में दिखाई पड़ने वे शुरू होंगे। और थोड़े अभ्यास में वे गिरते हुए दिखाई पड़ेंगे। और थोड़े अभ्यास में वे शून्य होते मालूम होंगे। एक तो यह करें। और उतनी ही थोड़ी देर को एक दूसरा प्रयोग भी साथ में चलाएं। तो एक घंटे के माध्यम से, आधा घंटा दर्शन का प्रयोग और आधा घंटे को मैं कहता हूं मृत्यु का प्रयोग।

जिस व्यक्ति को ध्यान साधना हो उसे मरना सीखना होता है। मरते सारे लोग हैं, लेकिन सीख कर बहुत कम लोग मरते हैं। और जो मरने को सीख लेते हैं, अदभुत होता है, उन्हें घटना घटती है। जो मरने को सीख लेते हैं, फिर मृत्यु उनकी नहीं होती। जो अपने हाथ से मृत्यु को सीख लेता है, वह जान जाता है कि उसके भीतर कोई तत्व है जिसकी कोई मृत्यु नहीं है। और जो अपने हाथ से मृत्यु को नहीं साधता, उसे मृत्यु बार-बार घटित होती है और अमृत से वह परिचित नहीं हो पाता।

ध्यान एक तरह की मृत्यु साधना है। अपने हाथ से मरना। आधा घड़ी को कभी रात के किसी एकांत कोने में मर जाएं।

आप कहेंगे, यह हमारे वश में कैसे है कि हम मर जाएं?

मैं आपको कहूं, यह हमारे वश में है। मरा जा सकता है। मरने के लिए ऐसा करें--द्वार बंद कर लें। सब तरफ से द्वार बंद कर लें, लेट जाएं, शरीर को ढीला छोड़ दें, आंख बंद कर लें और यह कल्पना करें कि आप समझ लें कि मर गए हैं। समझ लें कि आप मर गए हैं। आपकी अंतिम घड़ी आ गई। आपके प्राण निकल गए। और तब सोचें कि जब आप सच में मरेंगे तो कौन से लोग आपके आस-पास इकट्ठे हो जाएंगे--आपके मित्र और आपके प्रेम करने वाले, आपके संबंधी, आपके पड़ोसी--वे सब आने लगे हैं। आप मर गए हैं, मोहल्ले में, पड़ोस में खबर फैल गई कि आप मर चुके, लोग आने शुरू हो गए हैं। वे लोग आ जाएंगे, कमरे में उनकी कल्पना की भीड़ आने लगेगी। आपको उनके चेहरे दिखाई पड़ने लगेंगे।

जब सारे लोग आ जाएं तो फिर आपकी अरथी उठेगी। उसे भी उठते हुए देखें कि लोगों ने आपकी लाश को बांध दिया। वे आपकी अरथी को कंधों पर ले चले। रास्ते से आपका गुजरना शुरू हो गया। और उस मरघट तक पीछा करें अपनी इस लाश का। अब मरघट पर पहुंच गए और चिता जला दी गई और आपकी लाश उस पर रख दी गई और सब राख हुआ जा रहा है।

इसका निरंतर अभ्यास करने पर एक दिन आप पाएंगे, सब जल गया है और आप बिना शरीर के अपने को अनुभव करेंगे। निरंतर अभ्यास करने से किसी दिन आप अचानक होश से भर जाएंगे और पाएंगे, सब जल गया है और आप बिना शरीर के हैं। और जब शरीर पूरा जल जाएगा तो आप अचानक पाएंगे कि आपके सारे विचार शून्य हो गए हैं। क्योंकि सारे विचारों को जन्म इस शरीर के माध्यम से मिलता है। इन इंद्रियों के द्वार से सारे विचार बाहर से आते हैं। अगर ये सब राख हो गईं, तो इनका सारा संसार भीतर गिर जाता है। उनके उस संसार के प्राण इन इंद्रियों के भीतर हैं। और तब आप अपने को विदेह अनुभव करेंगे और निर्विचार अनुभव करेंगे।

इन दो प्रयोगों को अगर क्रमशः साधते चले जाएं तो आप ध्यान को साध रहे हैं--दर्शन की साधना और मृत्यु की साधना। और जिस दिन दर्शन और मृत्यु की पूर्णता आपको अनुभव होगी, उस दिन आपको परम सत्य का साक्षात हो जाएगा। उस दिन आप पाएंगेः जो भी आप में मरणधर्मा था, वह मर गया है; और जो भी अमृत था, वही केवल शेष रह गया है। विचार सब शून्य हो जाएंगे, दर्शन शेष रह जाएगा। उस दर्शन में जब अमृत का अनुभव होता है, तो व्यक्ति सत्य का साक्षात करता है।

मैं प्रार्थना को नहीं कहता। इस तरह के ध्यान को कहता हूं। और अगर एक दफा आपको अपने भीतर स्वयं की सत्ता में किसी अमृत, किसी चैतन्य, किसी परम सत्ता का बोध हो जाए, तो तत्क्षण सारे लोगों के भीतर आपको उसका बोध होना शुरू हो जाता है। जब तक आप अपने को शरीर जानते हैं, तब तक दूसरे लोग भी आपको शरीर दिखाई पड़ रहे हैं, तब तक यह सारा संसार प्रकृति दिखाई पड़ रहा है। जिस दिन आप अपने शरीर के भीतर उसे जानेंगे जो कि शरीर नहीं, आत्मा है, उस दिन सारे शरीरों के भीतर आपको आत्मा दिखाई पड़ने लगेगी। उस दिन सारी प्रकृति के भीतर आपको परमात्मा दिखाई पड़ने लगेगा। जितनी गहरी हमारी अपने भीतर पहुंच होती है, उतनी ही गहरी हमारी समस्त के भीतर पहुंच हो जाती है, उतनी ही गहरी हमारी पहुंच समस्त के भीतर हो जाती है। जो अपने भीतर अंतिम बिंदु को पकड़ लेता है, वह सर्वसत्ता के भीतर अंतिम बिंदु को पकड़ने में समर्थ हो जाता है।

इसलिए मैं कहता हूं, स्वयं के भीतर द्वार है परम सत्य को अनुभव करने का। और यह शून्य और मृत्यु, दर्शन और परिपूर्ण इंद्रियों के मर जाने की जो क्षण-स्थिति है, उसमें बोध उत्पन्न होता है।

ऐसा मैं वैज्ञानिक मानता हूं कि ऐसी वैज्ञानिक विधि से अगर कोई प्रयोग करे तो शीघ्रतम वह उस सत्य को अनुभव कर पाएगा जिसकी शास्त्र दुहाई देते हैं, लेकिन जिसे शास्त्र पढ़ कर नहीं समझा जा सकता। जिसके सदगुरु प्रवचन करते हैं, लेकिन जिसे प्रवचन से नहीं समझा जा सकता। जिसकी सारी दुनिया के जाग्रत पुरुष साक्षी देते हैं, लेकिन उनकी साक्षी से नहीं समझा जा सकता। जिसके लिए स्वयं ही साक्षी बनना होगा। स्वयं के अनुभव पर ही प्रमाणित करना होगा। स्वयं को देकर और विसर्जित करके ही उसे पाया जाता है। अपनी ही

मृत्यु पर अमृत का अनुभव होता है। उस अनुभव के बाद सारा जीवन परिवर्तित हो जाएगा। उस अनुभव के बाद जीवन में बुराई असंभव हो जाएगी। उस अनुभव के बाद जीवन में हिंसा असंभव हो जाएगी। उस अनुभव के बाद जीवन में घृणा असंभव हो जाएगी। उस अनुभव के बाद जीवन में जो भी सुगंध है, जो भी शुभ है, जो भी सत्य है, जो भी सुंदर है, उसकी सहज अभिव्यक्ति शुरू हो जाती है।

जो व्यक्ति भीतर सत्य को अनुभव करता है, उसका सारा जीवन सौंदर्य से, शांति से और संगीत से भर जाता है। उसका सारा जीवन उन प्रतिध्वनियों को, उन तरंगों को प्रवाहित करने लगता है, जो सारे जगत के लिए शांति की और शीतलता की छाया बन सकती हैं।

यही प्रार्थना करूंगा परमात्मा से, प्रत्येक व्यक्ति को शांति और शीतलता की छाया का बड़ा वृक्ष बनाए। उसे खुद छाया मिले और अनेक लोग उसकी छाया से आंदोलित हों। अनेक लोग उसके आनंद से प्रभावित हों। अनेक लोग उसके सौंदर्य से प्रभावित हों। अनेक लोग उसके अंतःसंगीत से आंदोलित हों और उनके भीतर भी प्यास पैदा हो।

एक अंतिम कहानी और चर्चा को पूरा करूंगा।

बुद्ध जब पहली दफा सत्य को उपलब्ध हुए, तब उनके पास कोई भी नहीं था। वे अकेले थे। वे यात्रा करते थे। अनजान, भिखमंगे फकीर थे। तब उन्हें कोई भी नहीं जानता था। वे काशी के बाहर आकर एक वृक्ष के नीचे विश्राम किए। संध्या को जब सूरज ढलता था, तब वे एक झाड़ के नीचे फटे कपड़ों में लेटे हुए थे। काशी का जो नरेश था, वह कुछ दिनों से बहुत दुखी, बहुत चिंतित, बहुत पीड़ित था। उसने अनेक बार आत्मघात करने का भी उपाय किया, लेकिन असफल रहा। वह उस सांझ को अपना मन बहलाने को रथ को लेकर गांव के बाहर निकला। सूरज ढलता था, उसकी अंतिम किरणें बुद्ध की मुखमुद्रा को प्रकाशित करती थीं। वे एक वृक्ष के नीचे टिके आंख बंद किए लेटे थे। सारथी रथ को हांके जाता था। अचानक उस राजा की दृष्टि इस भिखमंगे पर पड़ी। उसने सारथी को कहा, रथ रोक लो! यह कौन व्यक्ति यहां लेटा हुआ है? जिसके पास कुछ भी मालूम नहीं होता, उसके पास सब कुछ कैसे दिखाई पड़ रहा है? उस राजा ने कहा, जिस भिखमंगे के पास कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, उसके पास सब कुछ कैसे दिखाई पड़ता है? रथ रोको! मेरे पास सब कुछ है और मुझे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता!

वे उतर कर गए। और उन्होंने बुद्ध को कहा कि क्या मैं यह पूछूं कि यह अदभुत समृद्ध-भिखमंगा कौन है? जो शब्द हैं, वे यह कि यह अदभुत समृद्ध-भिखमंगा कौन है?

बुद्ध ने कहा, एक दिन मैं भी दरिद्र-समृद्ध था। जो तुम हो, एक दिन मैं भी वही था। बहुत मेरे पास था और मेरे भीतर कुछ भी नहीं था।

उस राजा ने कहा, मैं बहुत पीड़ित हूं। क्या यह कभी मुझे भी संभव हो सकता है जो तुम्हें संभव हुआ?

बुद्ध ने कहा, जो एक बीज के लिए संभव है, वह हर दूसरे बीज के लिए संभव है। हर बीज वृक्ष बन सकता है। जो मुझे फलित हुआ, वह तुम्हें फलित हो सकता है। क्योंकि मनुष्य की

आंतरिक एकता समान है। और मनुष्य की आंतरिक संभावना समान है। लेकिन कुछ करना होगा।

उस राजा ने बुद्ध को कहा, मैं कुछ भी करने को तैयार हूं और मैं कुछ भी खोने को तैयार हूं, क्योंकि सच तो यह है कि जो भी मेरे पास है, उसका अब मुझे कोई मूल्य मालूम नहीं होता।

बुद्ध ने कहा, और कुछ खोने से वह नहीं मिलता है; जो स्वयं को खोने को तैयार होता है, उसे ही वह मिलता है।

उस स्वयं को खोने को मैंने मृत्यु कहा। जो स्वयं को खोने को राजी हो जाता है, वह स्वयं की परम सत्ता को उपलब्ध हो जाता है। यही सूत्र है। जो बीज मिट्टी में अपने को गलाने के लिए राजी नहीं होता, वह बीज कभी अंकुर नहीं बनता। वह बीज सड़ जाएगा। जिसने कोशिश की कि अपने को बचा लूं, वह बीज सड़ जाएगा, उसमें अंकुर पैदा नहीं होगा। और जो बीज अपने को तोड़ देता और मिटा देता और मिट्टी में गल जाता है कि उसका कोई पता भी नहीं चलता कि कहां गया, वह बीज अंकुर हो जाता है।

अंकुरित होने का सूत्र है: गल जाना और मिट जाना। और जो जीवन में इस भांति मरने लगे, गलने लगे और मिटने लगे और जो अपने को खो दे, वह एक दिन पाएगा कि उसने स्वयं को पा लिया और विराटतर रूपों में। बूंद बूंद की तरह खो जाती है और सागर बन जाती है। व्यक्ति जब व्यक्ति की तरह अपने को खो देता है तो वह परमात्मा हो जाता है।

इसी सूत्र-विचार के साथ अपनी चर्चा को पूरा करूंगा। बूंद जब बूंद की तरह अपने को खो देती है तो वह सागर हो जाती है और व्यक्ति जब व्यक्ति की तरह अपने को मिटा देता है तो वह परमात्मा हो जाता है। ईश्वर आपको यह सौभाग्य दे कि आप मर सकें। मरने के पहले जो मर जाते हैं, वे लोग धन्यभागी हैं।

मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। सबके भीतर बैठे परमात्मा के लिए मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

मेरे प्रिय आत्मन्!

मैं अत्यंत आनंदित हूं कि जीवन के संबंध में और उसके परिवर्तन के लिए थोड़ी सी बातें आपसे कह सकूंगा। इसके पहले कि मैं कुछ बातें आपको कहूं, एक छोटी सी कहानी से चर्चा को प्रारंभ करूंगा।

एक बहुत अंधेरी रात में एक अंधा आदमी अपने एक मित्र के घर मिलने गया था। जब वह वापस लौटने लगा, तो रास्ता अंधेरा था और अकेला था। उसके मित्र ने कहा कि मैं एक लालटेन हाथ में दिए देता हूं ताकि रास्ते पर साथ दे।

वह अंधा आदमी बोला, मेरे लिए लालटेन का क्या उपयोग होगा? मेरे लिए तो हाथ में लालटेन हो तो और न हो तो, दोनों हालतों में रास्ता अंधेरा है।

फिर भी उसके साथी ने कहा, लालटेन लेते ही जाओ। तुम्हारे लिए तो प्रकाश नहीं होगा, लेकिन कम से कम दूसरे लोग समझ सकेंगे कि तुम रास्ते पर हो और वे टकराने से बच जाएंगे।

वह अंधा आदमी उस लालटेन को लेकर गया। लेकिन थोड़ी देर बाद ही एक दूसरा आदमी उससे टकरा गया। उस अंधे आदमी ने पूछा, क्या बात है? क्या मेरी लालटेन बुझ गई है?

वह दूसरा व्यक्ति बोला, मुझे कुछ दिखाई नहीं पड़ता। लालटेन तो मैं भी लिए हुए हूं। मैं अंधा हूं।

वे दोनों ही अंधे थे और दोनों के हाथ में लालटेन थी, लेकिन दोनों टकरा गए और गिर गए।

हमारी दुनिया की स्थिति करीब-करीब ऐसी हो गई है। सबके पास अच्छे विचार हैं। सबके पास अच्छे खयाल हैं। सभी को पता है कि ठीक क्या है। लेकिन आंखें न होने से हम सब टकरा जाते हैं और गिर जाते हैं। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जिसे यह पता न हो कि ठीक क्या है। सदविचार सभी को पता हैं। लेकिन आंखें न होने से उनका कोई मूल्य नहीं है, और वे अंधेरे में अंधे के हाथ में प्रकाश की तरह सिद्ध होते हैं।

दुनिया में सदपुरुषों की भी कोई कमी नहीं है। वे भी हमेशा पैदा होते हैं। उनके विचार भी लोगों को उपलब्ध होते हैं। लेकिन हमारे पास आते-आते वे विचार निष्प्राण हो जाते हैं, और हमारे लिए उनका कोई उपयोग नहीं हो पाता। उसका एक ही कारण है। और उसका कारण यह है कि अगर हमारे पास आंखें न हों तो प्रकाश का कोई अर्थ नहीं होता है।

इसलिए आज की इस दोपहर मैं आपको कोई अच्छे विचार दूं, इसका कोई मतलब न होगा। अच्छे विचार तो बहुत हैं। और मैंने एक अरबी कहावत सुनी है। बड़ी अदभुत कहावत है, जिसमें यह कहा गया है कि नरक का रास्ता अच्छे विचारों से पटा हुआ है। मैं बहुत हैरान हुआ। नरक का रास्ता अच्छे विचारों से पटा हुआ है! यह बात बड़ी अजीब मालूम होती है। लेकिन यह सच है। जो लोग अच्छे विचार ही करते रहते हैं, उनका जीवन नरक की तरफ ही चला जाता है। अच्छे विचार पर्याप्त नहीं हैं। अच्छे विचारों का कोई मूल्य नहीं है। अच्छे विचारों का मूल्य तो तभी है, जब हमारे पास ऐसी आंख हो कि वे विचार हमारे आचरण और जीवन में फलित हो जाएं।

यह भी लोग कहते हैं कि अच्छे विचारों को हमें जीवन में उतारना चाहिए, आचरण करना चाहिए। लेकिन यह भी करीब-करीब वैसी ही बात है, जैसे हम किसी बीमार आदमी से यह कहें कि तुझे अपनी बीमारी छोड़ देनी चाहिए। बीमार आदमी को यह कहने से क्या फायदा

होगा कि तुम अपनी बीमारी छोड़ दो? बीमारी छोड़ी नहीं जाती। बीमारी का तो उपाय होता है, औषधि होती है, उपचार होता है। वैसे ही बुरे जीवन के आचरण को छोड़ा नहीं जाता, बल्कि अंतस चेतना का उपचार किया जाता है तो बुरा आचरण अपने आप छूट जाता है।

एक बात मैं आपको कहूं। अच्छे विचारों को सोच-सोच कर कोई आचरण में नहीं ला सकता। आचरण विचारों से पैदा नहीं होता है। आचरण बहुत ही अलग बात है और उसके पैदा होने का रास्ता बहुत दूसरा है। अगर अच्छे विचारों से आचरण पैदा होता हो, तो दुनिया सब आचारवान बन गई होती, क्योंकि अच्छे विचारों की कहां कमी है! वे तो अतिशय हैं। वे तो बहुत ज्यादा हैं। लेकिन उनसे कोई मतलब नहीं है। अगर हम बीमारों को यह समझाएं कि तुम अपनी बीमारी छोड़ दो, और अगर चिकित्सक केवल इतना समझाने का काम करें कि सबको अपनी बीमारी छोड़ देनी चाहिए, तो दुनिया बीमारों से भर जाएगी। उपदेश बहुत होंगे, लेकिन बीमारियां दूर नहीं होंगी। बीमारी को उपदेश से दूर नहीं किया जाता। यह तो बीमार भी जानता है कि बीमारी बुरी है और अलग होनी चाहिए। लेकिन बीमारी छूटती नहीं है। उसकी तो औषधि होती है, उसका तो मार्ग होता है, उसका तो उपचार होता है। वैसे ही, जिसे हम बुरा आचरण कहते हैं, वह भी बीमारियों की तरह है। बुरा आचरण भी हमारे आंतरिक मन की बीमारियां हैं। और इन बीमारियों को भी छोड़ने का उपाय नहीं है। इन बीमारियों का भी इलाज हो सकता है, औषधि हो सकती है, ऐसी विधि हो सकती है कि ये विलीन हो जाएं।

मेरा देखना यही है। मैं आपसे यह नहीं कहता कि आप बुरे काम छोड़ दें, बुरा आचरण छोड़ दें, जीवन से बुरी वृत्तियां छोड़ दें। मैं आपको यह कहता हूं, जैसे कि यहां अंधकार भरा हो, तो मैं यह नहीं कहूंगा कि अंधकार को निकाल कर बाहर कर दें। मैं कहूंगा, प्रकाश जलाएं, दीया जलाएं। अंधकार अपने से दूर हो जाएगा। जैसे अंधकार दूर हो जाता है प्रकाश के जलाने से, वैसे ही मनुष्य के आंतरिक जीवन में भी प्रकाश को जलाने का उपाय है। उसके जलते ही आचरण की बुराइयां दूर होनी शुरू हो जाती हैं। आज तक किसी मनुष्य ने बुराइयों को छोड़ा नहीं है, बुराइयां अपने से विलीन हो जाती हैं और गिर जाती हैं।

ऐसा मनुष्य के आंतरिक जीवन में प्रयोग किया जा सकता है। मनुष्य की अंतस चेतना को इस भांति प्रज्वलित किया जा सकता है, इस भांति प्रकाश से भरा जा सकता है कि उसका सारा जीवन परिवर्तित हो जाए।

यह जो मैं कह रहा हूं, यह जो मेरी दृष्टि है कि मनुष्य के भीतर कोई क्रांति और परिवर्तन हो सकता है, जिससे उसका सारा आचरण बदल जाए, इसे विचार कर समझ लेना जरूरी है। अगर यह हमारी समझ में न आए तो यह होगा कि हम जीवन भर अच्छे विचार करेंगे और सोचेंगे अपने को बदलने की बात, लेकिन अपनी बदलाहट संभव नहीं होगी। अधिक लोग सारे जीवन पीड़ित होते हैं कि वे शुभ बन जाएं, भले बन जाएं। और वे जैसे थे वैसे ही समाप्त हो जाते हैं। क्योंकि उन्हें पता नहीं होता कि शुभ कैसे बना जाए। और जो लोग उपदेश देते हैं शुभ बनने का, वे भी केवल उपदेश देते हैं कि आपको शुभ हो जाना चाहिए!

और अगर आप नहीं होते तो आप ही को कसूरवार ठहराते हैं, आपको ही दोषी ठहराते हैं और उनकी लांछना यही होती है कि लोग हमारे विचारों को आचरण में नहीं लाते।

मैं आपसे यह नहीं कहूंगा। आपका कोई कसूर नहीं है अगर आप विचारों को आचरण में न ला पाते हों। कसूर इस बात का है कि आपको ठीक से पता नहीं, आपको इस बात का पता नहीं है कि आचरण के बदलने की कीमिया और कुंजी विचार नहीं है। आचरण को बदलने की कीमिया और कुंजी कुछ और है। वह विचार न होकर, उसका नाम योग है। वह आपके सोच-विचार से संबंधित नहीं, बल्कि आपकी अंतस चेतना को बदलने का एक विज्ञान है। वह विज्ञान अगर थोड़ा सा समझ में आ जाए तो आप अपने में क्रांतिकारी फर्क होते अनुभव करेंगे। अचानक आपको दिखाई पड़ेगा कि आपका जीवन दूसरा होने लगा।

कुछ दिन हुए एक व्यक्ति मेरे पास आए और उन्होंने मुझे कहा कि मैं कुछ बातें छोड़ना चाहता हूं जीवन भर से, लेकिन छोड़ नहीं पाता हूं। मैंने उनसे कहा, कभी ऐसे लोग, जो कुछ छोड़ना चाहते हैं, वे लोग कभी कुछ नहीं छोड़ पाए हैं। इसलिए आप बहुत परेशान न हों। वे बोले, लेकिन ये बातें ऐसी हैं कि मुझे छोड़ना ही हैं, मेरा सारा जीवन नष्ट हुआ जाता है। उन्होंने मुझे कहा कि मुझे तो इतनी परेशानी है, लेकिन मैं शराब पीए चला जाता हूं। मैं इसे छोड़ना चाहता हूं; और आज दस वर्षों से लड़ रहा हूं। और जितना लड़ता हूं उतना ही मैंने पाया कि यह बढ़ती चली जाती है, यह छूटती नहीं है। मैंने उनसे कहा, इस जीवन में पूरे लड़ते रहे, तब भी यह छूटेगी नहीं। इसकी फिकर छोड़ दें। कुछ और करें।

मैंने उन्हें अपने निकट बुलाया और मैंने उनसे कहा, कुछ प्रयोग करें अपने मन पर। क्योंकि मैंने कहा कि वह आदमी शराब पीता है, जो आदमी अशांत होता है, दुखी और पीड़ित होता है। जो आदमी आनंदित है वह कभी नशा नहीं करेगा। असंभव है। दुनिया जितनी दुखी होती जाएगी, उतना ही दुनिया में नशा बढ़ता चला जाएगा। दुख होगा, नशा स्वाभाविक है। उसका परिणाम है। आनंद होगा, नशा असंभव है। उसका कोई कारण, उसकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। मैंने उनसे कहा, नशे को छोड़ने की फिकर छोड़ दें, शांत और आनंदित होने का उपाय करें।

उन्होंने कुछ साधना शुरू की शांत होने के लिए। और तीन महीने बाद उन्होंने मुझे आकर कहा, मैं तो हैरान हूं। आज मुझे कोई कहे कि पीओ, तो मेरी समझ में नहीं आता कि मैं पहले कैसे पीता रहा! अब तो मैं नहीं पी सकता हूं, अब तो शराब छूना भी मुझे असंभव है।

सारी दुनिया पीड़ित है इस बात से। हम कुछ चीजों को छोड़ना चाहते हैं, लेकिन हम इस बात को नहीं समझ पाते कि उनकी जड़ें कहां हैं। उन्हें छोड़ने के लिए उनके मूल कारणों को तोड़ने की हम बात नहीं विचार कर पाते और हम करीब-करीब ऊपर सारी चेष्टा करते हैं। जैसे कोई व्यक्ति किसी पौधे को नष्ट करना चाहता हो--उसकी शाखाओं को काट दे, पत्तों को गिरा दे, तो क्या होगा? कोई शाखाएं काट देने से और पत्ते गिरा देने से वृक्ष नष्ट नहीं होगा, बल्कि जितना वह काटेगा उतनी नई शाखाएं निकलने लगेंगी, उतनी ज्यादा शाखाएं निकलने

लगेंगी। और तब वह घबड़ाएगा कि मैं रोज वृक्ष को काटता हूं और यह तो वृक्ष है कि बढ़ता चला जाता है।

बुराई का वृक्ष इस तरह बढ़ता है कि हम उसकी शाखाएं काटते हैं और उसकी जड़ों को नहीं जानते। इसलिए पूरे जीवन कोशिश करने के बाद भी आदमी बुराई से मुक्त नहीं हो पाता।

मैं कुछ उन जड़ों की बात आपसे करूं, जिनको काटने से बुराई गिर जाती है, जिनको काटने से बुराई रह ही नहीं सकती। और उसमें से प्रधान जो जड़ है: जो मनुष्य अपने अंतस में जितना दुखी होता है, उतना उसका जीवन बुरा होता चला जाता है। और जो मनुष्य अपने अंतस में जितने आनंद को उपलब्ध होता है, उतना उसका जीवन शुभ होता चला जाता है। लोग सोचते हैं कि शुभ होने से आनंद उपलब्ध होगा। और मैं सोचता हूं कि आनंद उपलब्ध होगा तो जीवन शुभ हो जाता है। जो व्यक्ति भीतर आनंदित है, उसके लिए असंभव होता है कि वह किसी को दुख दे सके। और पाप का कोई अर्थ नहीं है। पाप का एक ही अर्थ है: ऐसे काम जिनसे दूसरों को दुख पहुंच जाता हो। और पुण्य का एक ही अर्थ है: ऐसे काम जिनसे दूसरों के जीवन में सुख पहुंच जाता हो।

क्राइस्ट ने एक बहुत अदभुत वचन कहा है। उन्होंने कहा है: जो तुम नहीं चाहते कि दूसरे लोग तुम्हारे साथ करें, वह तुम दूसरे लोगों के साथ मत करना। और इस छोटे से वचन में सारे धर्म का सार आ जाता है। अब तक मनुष्यों ने जो भी श्रेष्ठतम विचार किए हैं, जो भी श्रेष्ठतम अनुभूतियां की हैं, वे इस छोटे से वचन में आ जाती हैं: तुम दूसरों के साथ वह मत करना जो तुम नहीं चाहते कि दूसरे तुम्हारे साथ करें।

मैं नहीं चाहता कि कोई मेरा अपमान करे, तो मुझे दूसरों का अपमान नहीं करना चाहिए। मैं नहीं चाहता कि कोई मेरे ऊपर क्रोधित हो, तो मुझे दूसरे पर क्रोधित नहीं होना चाहिए। अगर इतनी सी बात, इतनी सी व्यवस्था जीवन में सध जाए, तो जीवन बहुत सुगंध से, बहुत शांति से, बहुत संगीत से भर जाता है। लेकिन यह कैसे संभव होगा? यह कैसे संभव होगा कि जो मैं चाहता हूं कि मेरे साथ कोई न करे, वह मैं दूसरे के साथ न करूं? यह तभी संभव होगा जब मुझे यह अनुभव हो जाए कि जो मेरे भीतर बैठा है, वही दूसरे के भीतर भी विराजमान है। उसके पहले यह संभव नहीं हो सकता। यह तभी संभव होगा कि जितना प्रेम मुझे अपने प्रति है, उतना ही प्रेम मुझे दूसरे के प्रति भी पैदा हो जाए। यह तभी हो सकता है जब मैं सब लोगों के भीतर एक ही परमात्मा के निवास को अनुभव कर लूं। इसके पूर्व यह असंभव है।

क्राइस्ट के जीवन में एक उल्लेख है। वे एक गांव के बाहर ठहरे हुए थे। और कुछ लोग एक स्त्री को लेकर उनके पास गए और उन लोगों ने कहा, इस स्त्री ने व्यभिचार किया है। हम इसे क्या सजा दें? पुरानी किताब में लिखा हुआ है, पुरानी धर्म की किताब में लिखा हुआ है--इसे पत्थर मारो और मार डालो।

उन्होंने क्राइस्ट से इसलिए यह पूछा कि इससे दो बातें साफ हो जाएंगी। एक तो यह बात साफ हो जाएगी, अगर क्राइस्ट यह कहेंगे कि इसे पत्थरों से मार डालो, तो हम कहेंगे,

आप तो कहते थे कि जो एक गाल पर चांटा मारे उसके सामने दूसरा कर देना चाहिए। और आप तो कहते थे, जो घृणा करे उसको प्रेम करना चाहिए। और आप तो कहते थे कि जो चोट पहुंचाए उसको क्षमा कर देना चाहिए। तो फिर आप यह क्या कह रहे हैं? और अगर क्राइस्ट ने कहा कि इसे पत्थर मत मारो, यह बुरा है। तो हम कहेंगे, यह तो धर्मग्रंथ के विरोध में आप कह रहे हैं, आप तो धर्मशास्त्र के विरोध में हैं।

इस वजह से वे एक स्त्री को लेकर क्राइस्ट के पास गए और उन्होंने क्राइस्ट से कहा कि हम इस स्त्री के साथ क्या करें? इसने व्यभिचार किया है।

क्राइस्ट ने कहा, जो पुरानी किताब में लिखा है, वही करो। सारे लोग पत्थर उठा लो और इसे मार डालो।

वह स्त्री तो बहुत घबड़ा गई। उसने सोचा था कि क्राइस्ट के पास जाने से शायद जीवन बच जाए, क्योंकि वे शायद ही इस बात के लिए कहेंगे कि मार डाला जाए। लेकिन जब उन्होंने कहा कि सारे लोग पत्थर उठा लो और इसे समाप्त कर दो, तो वह स्त्री घबड़ा गई। सारे लोगों ने पत्थर उठा लिए और वे सारे लोग मारने को थे, तब क्राइस्ट ने कहा, एक क्षण ठहरो। वह आदमी सबसे पहले पत्थर मारे जिसने कभी व्यभिचार न किया हो या व्यभिचार का विचार न किया हो।

उस पूरी भीड़ में एक भी आदमी ऐसा नहीं था जिसने व्यभिचार न किया हो या व्यभिचार का विचार न किया हो। क्राइस्ट ने कहा, वह आदमी पत्थर मारने का हकदार नहीं होगा। वे पत्थर नीचे गिर गए और वे लोग वापस लौट गए। और उन्होंने उस स्त्री से कहा, कोई व्यक्ति इस जगत में किसी दूसरे का निर्णायक नहीं हो सकता। अदभुत उन्होंने उस स्त्री से बात कही: इस जगत में कोई व्यक्ति किसी दूसरे का निर्णायक नहीं हो सकता।

नासमझ जो हैं, वे इस जगत में दूसरों का विचार करते रहते हैं और निर्णय करते रहते हैं। और जो समझदार हैं, वे अपना विचार करते हैं और अपना निर्णय करते हैं। वे अपने संबंध में सोचते हैं: मैं कहां हूं और क्या हूं? वे इस संबंध में विचार करते हैं कि मेरी जीवन-स्थिति कैसी है और क्या है? और वे इस संबंध में विचार कर सकते हैं कि क्या मैं उस सारी संभावनाओं को अपने भीतर विकसित कर सका हूं, जिसके कि बीज मेरे भीतर थे? या कि मैंने जीवन को व्यर्थ खो दिया है? जो जानते हैं, जो थोड़ा विचार करते हैं, जिनमें थोड़ा विवेक है, वे अपना निर्णय और विचार करते हैं। वे अपनी जीवन-दशा पर चिंतन करते हैं। और जो अज्ञानी हैं, जो नहीं जानते, वे दूसरों की जीवन-दशाओं पर चिंतन और विचार करते हैं।

पहली बात, जिस व्यक्ति को जीवन-परिवर्तन करना हो, उसके लिए पहला सूत्र है: उसे दूसरों का निर्णय और विचार छोड़ देना चाहिए। इस जगत में आपके लिए कोई भी विचारणीय नहीं है सिवाय आपके। आप अकेले ही विचारणीय हो अपने लिए। प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए ही विचारणीय है, और इस जगत में कोई भी विचारणीय नहीं है। और अगर कोई अपने पर विचार करना शुरू करेगा, तो उसे दिखाई पड़ेगा: जिन बुराइयों की उसने

दूसरों में निंदा की है, वे बहुत बड़ी मात्रा में उसमें मौजूद हैं। और जिन भलाइयों की उसने दूसरों में आकांक्षा की है, उनका उसके भीतर कोई पता नहीं है। उसे दिखाई पड़ेगा कि जिन भलाइयों की उसने दूसरे में अपेक्षा की है, उनका उसके भीतर कोई प्रमाण नहीं है होने का; और जिन बुराइयों की उसने सदा दूसरों में निंदा की है, उनकी भीड़ की भीड़ उसके भीतर मौजूद है।

जब ऐसा दिखाई पड़ता है तो घबड़ाहट पैदा होती है, तब संताप पैदा होता है, तब वह बेचैनी पैदा होती है जो मनुष्य को धार्मिक बनाने में धक्का देती है। उसके पहले कोई आदमी धार्मिक नहीं बनता। इसे स्मरण रखें, वही व्यक्ति केवल धार्मिक बन सकता है जिसे यह बेचैनी पैदा हो गई हो कि सारी दुनिया की बुराइयां उसके भीतर हैं, और भलाइयों का कोई पता नहीं है। तब घबड़ाहट होना बहुत स्वाभाविक होगा। और इसी घबड़ाहट से बचने के लिए सारे लोगों ने यह तरकीब ईजाद की है कि वे अपनी भलाइयां देखते हैं और दूसरों की बुराइयां देखते रहते हैं।

जो लोग धार्मिक नहीं होना चाहते, जो जीवन में कोई क्रांति और परिवर्तन नहीं करना चाहते, उनके लिए एक ही तरकीब और रास्ता है कि वे दूसरों की बुराइयों का विचार करते रहें। इस भांति अपनी बुराइयां दिखनी बंद हो जाती हैं, उनका विस्मरण हो जाता है। हमारा चिंतन दूसरों की बुराइयों में लग जाता है, खुद की बुराइयां उपेक्षित और दबी हुई रह जाती हैं। यही भूल है। अगर मैं कहूं, यही एकमात्र भूल है जो मनुष्य अपने साथ कर सकता है।

तो पहली बात स्मरणीय है, हम अपना निर्णय, अपना विचार, अपने संबंध में इस चिंतन को जन्म दें कि हम कहां खड़े हैं? और किस स्थिति में और किस दशा में खड़े हैं? और जब हम इस दशा को देखेंगे तो हमें कुछ बातों में सबसे पहली बात तो यह दिखाई पड़ेगी कि हमारे पल्ले में, हमारे पास भलाई के नाम पर कुछ भी नहीं है। फूलों के नाम पर हमारे पास कुछ भी नहीं है सिवाय कांटों के। और कोई व्यक्ति कांटों के साथ रह कर आनंद को कैसे उपलब्ध हो सकता है? और कोई व्यक्ति सारी बुराइयों को अपने भीतर रख कर शांति को और संगीत को कैसे उपलब्ध हो सकता है? स्वाभाविक होगा कि उसका जीवन नष्ट होता चला जाए। उसका जीवन दुख से दुख में गिरता चला जाए। उसका जीवन अंधकार से और अंधकार में विलीन होता चला जाए। और एक दिन वह पाए कि उसने सारा अवसर, जिसमें कि प्रकाश मिल सकता था, खो दिया है; जिसमें कि आलोक मिल सकता था, खो दिया है; जिसमें कि कुछ होने की संभावना थी, वह मौका उसके हाथ से निकल गया है; जब कि बीज बोए जा सकते थे और फसल काटी जा सकती थी, वह मौसम उसके हाथ से निकल गया है। और तब बहुत गहन पश्चात्ताप मनुष्य को घेर लेता है। मृत्यु के समय जो दुख होता है, वह मृत्यु का नहीं होता। क्योंकि मरने के पहले मृत्यु का कैसे पता चलेगा? मृत्यु के समय जो पीड़ा पकड़ती है, वह पीड़ा पकड़ती है जीवन के उस अवसर के खो जाने की, जिसमें हम कुछ भी नहीं कमा पाए, जिसमें हम किसी संपत्ति को पैदा नहीं कर पाए।

इसलिए जिन लोगों को कुछ संपत्ति मिल जाती है, वे मरते समय दुखी नहीं देखे जाते। केवल थोड़े से लोग इस जमीन पर मरते समय आनंद से भरे होते हैं, जिन्होंने कुछ संपत्ति कमाई होती है, जिन्होंने भीतर का कोई संगीत पैदा किया होता है, जिन्होंने आलोक के कोई दर्शन किए होते हैं। एक बहुत प्राचीन फकीर ने कहा है कि मृत्यु के समय पता चल जाता है कि जीवन कैसा था। मृत्यु उघाड़ देती है कि जीवन कैसा था। जिसकी मृत्यु आनंद से भरी हो, जानना चाहिए, जीवन सार्थक हुआ। और जिसकी मृत्यु दुख से भरी हो, जानना चाहिए, जीवन व्यर्थ गया।

यह तो अभी हम पहचान सकते हैं। अगर इसी क्षण आपकी मृत्यु हो तो क्या होगा? अगर आप यह विचार करें कि इसी क्षण मेरी मृत्यु हो जाए तो क्या होगा? क्या उस समय आपके हाथ में कुछ होगा? क्या आपकी कोई संपदा होगी? कोई उपलब्धि होगी? कुछ होगा जो आपको लगेगा कि मेरे साथ है, मैंने कुछ कमाया है? अगर नहीं कुछ होगा तो बहुत दुख घेर लेगा। मृत्यु का दुख नहीं है वह, वह आंतरिक दरिद्रता का दुख है। और जो आंतरिक रूप से समृद्ध होते हैं, उन्हें वह दुख नहीं घेरता।

नानक एक गांव में एक दफा मेहमान हुए थे। वे यात्रा में थे और एक गांव में ठहरे। एक बहुत बड़े धनपति ने उनको आकर कहा कि मेरे पास बहुत संपत्ति है और मरने का समय मेरा करीब आ गया, इस सारी संपत्ति को मैं धर्म में लगा देना चाहता हूं। नानक ने नीचे से ऊपर तक उस व्यक्ति को देखा और कहा, तुम तो बहुत दरिद्र मालूम होते हो। तुम्हारे पास कोई संपत्ति नहीं दिखाई पड़ती है।

वह आदमी बोला, मैं सीधे-सादे लिबास में हूं, इसलिए आप समझे नहीं। मेरे पास बहुत है।

नानक ने कहा, मुझे तो कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। मेरे पास हजारों लोग आते हैं, मैं उनकी आंखों में देख कर समझ जाता हूं कि उनके पास कुछ है या नहीं। तुम्हारे पास कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता।

वह बोला, आप मुझे आज्ञा दें तो पता चले कि मेरे पास कुछ है या नहीं। कोई काम मुझे बताएं जिसमें मैं अपनी संपत्ति को लगा दूं।

नानक ने एक छोटी सी सुई उसे दे दी और कहा, इसे मरने के बाद मुझे वापस लौटा देना!

यह तो बिलकुल पागलपन की बात हो गई। अगर मैं आपको एक सुई दे दूं--छोटी सी चीज है, छोटी से छोटी चीज है, इस जगत में उससे छोटा और क्या होगा? वह आपको मैं दे दूं और कहूं कि मरने के बाद मुझे वापस लौटा देना। तो सुई तो बहुत छोटी है, काम बहुत बड़ा हो गया। वह आदमी वहां तो कुछ भी नहीं कह सका, क्योंकि उसने खुद काम मांगा था; लेकिन वह रास्ते भर सोचते लौटा कि यह नानक या तो पागल है या इसने खूब मजाक किया! रात भर उसने सोचा कि इस सुई को मरने के बाद कैसे ले जाएंगे? लेकिन कोई उपाय उसे समझ में नहीं आया। उसने बहुत तरह से मुट्ठी बांधने का विचार किया, लेकिन सब तरह की बांधी हुई मुट्ठियां मृत्यु के इसी पार रह जाती हैं, उस पार कोई मुट्ठी नहीं जाती। उसने सब तरह के उपाय सोचे, लेकिन कोई उपाय कारगर नहीं होता था। वह सुबह

चार बजे लौटा और नानक के पैर पड़े और कहा, यह सुई वापस ले लें। कहीं उधारी मेरे ऊपर न रह जाए। इसे मैं मृत्यु के बाद वापस नहीं लौटा सकूंगा।

नानक ने कहा, तुम्हारी संपत्ति का क्या हुआ? साथ नहीं पड़ती? तुम्हारी शक्ति का क्या हुआ? साथ नहीं देती?

वह व्यक्ति बोला, इस सुई को मृत्यु के पार ले जाने में मेरी संपत्ति सहयोगी नहीं है।

नानक ने उससे कहा कि संपत्ति केवल वही है जिसे मृत्यु नष्ट न कर पाए। और जिसे मृत्यु छीन लेती हो, उसे नासमझ संपत्ति समझते हैं; समझदार उसे विपत्ति मानते हैं, संपत्ति नहीं। और इसलिए जिन लोगों ने उस संपत्ति को छोड़ दिया, उन्होंने कोई त्याग नहीं किया; विपत्ति मान कर उससे अलग हो गए। नानक ने कहा, जो मृत्यु के पार साथ न जा सके वह विपत्ति हो सकती है।

दो ही तरह के लोग हैं दुनिया में। कुछ हैं जो विपत्ति को कमाते हैं और कुछ हैं जो संपत्ति को कमाते हैं। विपत्ति को कमाने वाले बहुत लोग हैं, इसलिए दुनिया विपत्ति से विपत्ति में गिरती चली जाती है। संपत्ति को कमाने वाले बहुत थोड़े लोग हैं। संपत्ति को कमाने वाला बनना चाहिए। और संपत्ति का मेरा मतलब हुआ कि जो मृत्यु के पार साथ जा सके।

क्या साथ जा सकता है? निश्चित ही बाहर की कोई उपलब्धि साथ नहीं जा सकती। निश्चित ही शरीर के माध्यम से जो भी पैदा हुआ हो, वह साथ नहीं जा सकता। निश्चित ही इंद्रियों के द्वारा जो जाना और पाया गया हो, वह साथ नहीं जा सकता। इनके पीछे अगर कोई घटना घटती हो तो वह साथ जा सकती है। उस घटना के घटने में ही सारे जीवन के परिवर्तन और क्रांति के मूल आधार और जड़ें होती हैं। उसके लिए जरूरी है कि हम अपने सारी इंद्रियों के द्वार बंद करके भीतर देखना सीखें। उसके लिए जरूरी है कि हम सारे शरीर से पीछे हटना सीखें। उसके लिए जरूरी है कि हम उसको पहचानना सीखें जो आंखों से देखता है, कानों से सुनता है। हम कान और आंख पर रुक जाते हैं तो बड़े नासमझ हैं। अगर मैं आपकी आंख पर लगे चश्मे को आपकी आंख समझ लूं तो मुझे लोग पागल कहेंगे। क्योंकि चश्मा आंख नहीं है, आंख चश्मे के पीछे है। लेकिन अगर हम आंख को ही देखने वाला समझ लें तो और गलती हो जाएगी, क्योंकि देखने वाली आंख नहीं है, देखने वाला आंख के भी पीछे है।

ऐसे अपने भीतर जो निरंतर प्रवेश करने की कोशिश करता है कि मैं उस जगह पहुंचूं, उसको पहचानूं जो सबके पीछे मेरे भीतर खड़ा है, वह उस संपदा को उपलब्ध हो जाता है। और जो आंखों के और इंद्रियों के बाहर के जगत में खोजता है वह केवल विपत्ति को उपलब्ध होता है।

तो धर्म का मूल जन्म मनुष्य को उस क्षण में अनुभव होता है, जब वह अपनी सारी इंद्रियों को बंद करके, सारे शरीर को दूर छोड़ कर भीतर प्रवेश करता है। इसका रास्ता है। इसका रास्ता है कि हम अपनी इंद्रियों के भीतर प्रवेश कर सकें। और जो लोग परमात्मा को जाने

हैं, उन्होंने किसी मंदिर में जाकर परमात्मा को नहीं जाना है। उन्होंने अपने भीतर जाकर परमात्मा को जाना है।

जो व्यक्ति अपने भीतर जाना सीख जाता है, उसे सब घर मंदिर हो जाते हैं। और जो व्यक्ति अपने भीतर जाना, अपने भीतर प्रवेश करना नहीं जानता, उसे कोई मंदिर मंदिर नहीं है, सब मंदिर मकान हैं। क्योंकि जो अपने भीतर नहीं जा सकता, वह मंदिर में कैसे जा सकेगा? जो अपने भीतर की सत्ता को नहीं जानता, वह इस जगतसत्ता को नहीं जान सकता है। वह कुछ भी नहीं जान सकता है जो स्वयं को नहीं जानता है।

तो मनुष्य के सामने सबसे बड़ी साधना और सबसे बड़ा लक्ष्य और जीवन के सामने सबसे परम दृष्टि एक ही है कि किसी भांति वह अपने भीतर प्रवेश कर जाए और स्वयं को जान ले। अपने भीतर प्रवेश करने के लिए दो मार्ग हैं। एक तो जरूरी है अपने भीतर प्रवेश करने के लिए कि हम सारी इंद्रियों को बंद करना सीख जाएं।

हम कहेंगे, हम इंद्रियों को बंद करना जानते हैं। रात आंख बंद कर लेते हैं तो आंख बंद हो जाती है।

आंख तो बंद हो जाती है, लेकिन स्वप्न चलते रहते हैं। और जो स्वप्न चलते रहते हैं, वे आंख से ही उत्पन्न हुए संवेदन हैं। इसलिए आंख ठीक से बंद नहीं हुई।

एक व्यक्ति ने निश्चय किया कि वह साधु हो जाए। तो वह एक गुरु की तलाश में गया। और एक आश्रम में पहुंचा, जहां कि उसने सुना कि एक अदभुत साधु रहता है, उससे दीक्षित हो जाऊं। उसके मित्र उसे वहां तक छोड़ने गए। उसके प्रेमी उसे वहां तक छोड़ने गए। उसने आश्रम के द्वार पर उनसे कहा, अब आप मुझे विदा कर दें, अब मैं अकेला जाऊं, आप कब तक मेरे साथ जाएंगे? और मैंने तो एक ऐसा रास्ता चुना है जिस पर कोई मेरे साथ नहीं हो सकता। वह अकेला भीतर गया। उसने साधु को प्रणाम किया। वहां कोई भी न था उस कक्ष में, वह अकेला था और साधु था। उस साधु ने उस युवक को कहा, किसलिए आए हो?

उस युवक ने कहा कि मैं साधु होना चाहता हूं, साधना में लगना चाहता हूं।

वह गुरु बोला, लेकिन अकेले होकर आओ, तुम तो बहुत लोगों को साथ लेकर आ गए हो।

वह आदमी बोला, यह क्या बात आप कर रहे हैं? मैं बिलकुल अकेला हूं। यहां तो आस-पास कोई नहीं दिखाई पड़ता।

उस साधु ने कहा, आस-पास नहीं, भीतर देखो। जिन लोगों को तुम आश्रम के द्वार पर छोड़ आए हो, वे सब वहां मौजूद हैं। वे सारी तस्वीरें, वे सारे चेहरे, उन्होंने जो शब्द कहे वे, उनकी आंखों में जो आंसू आ गए वे, वे सब वहां भीतर मौजूद हैं।

उस युवक ने आंख बंद कीं, सच में ही वह आश्रम के बाहर खड़ा हुआ था। उस युवक ने आंख बंद कीं, उसने देखा कि वह आश्रम के बाहर खड़ा है, मित्रों को विदा दे रहा है, आश्रम के भीतर नहीं है।

तो उस साधु ने कहा, इन सबको बाहर छोड़ कर आओ।

इंद्रियों को बंद करने का अर्थ है: इंद्रियों से जो भी उपलब्ध होता है, उसे क्षीण करना, उसे विलीन करना, उसे शून्य कर देना। अगर निरंतर इस बात का स्मरण रहे, अगर आंख बंद करके हम इस बात का स्मरण रखें कि हम सपना नहीं देखेंगे। आंख बंद करके अगर इस बात का स्मरण रहे कि जिन चेहरों पर आंख बंद कर ली है उनको भीतर नहीं देखेंगे। अगर इस बात का स्मरण रहे कि आंख का कोई उपयोग आंख बंद करने के बाद हम भीतर नहीं करेंगे। और अगर कोई उपयोग होने लगे तो हम सजग हो जाएं और जानें कि उपयोग शुरू हो गया। जैसे ही हम सजग होंगे और हमें पता चलेगा कि उपयोग शुरू हो गया, सपना टूट जाएगा और बंद हो जाएगा।

सपने को देखने के लिए जरूरी है कि हम बिलकुल भूले हुए हों, मूर्च्छित हों, हमें होश न हो। अगर हमें होश आ जाए, तो भीतर का कोई भी सपना तत्क्षण टूट जाएगा। अगर कोई व्यक्ति अपने भीतर निरंतर धीरे-धीरे होश को और चेतना को साधने लगे, अगर वह इस बात को साधने लगे कि वह देखता रहे भीतर स्मरणपूर्वक कि इंद्रियों के द्वारा पैदा किए हुए संस्कार, इंद्रियों के द्वारा पैदा की हुई बातें उसके भीतर तो नहीं चलती हैं? तो वह धीरे-धीरे क्रमशः साधने से, उनको क्षीण करने में समर्थ हो जाता है। एक दिन आता है, इंद्रियों के सारे संवेदन शून्य हो जाते हैं। एक दिन आता है, भीतर वह परिपूर्ण शांति को उपलब्ध हो जाता है।

जब वह भीतर परिपूर्ण शांत होता है, जब भीतर कोई हलचल, कोई आंदोलन नहीं रह जाते, जब भीतर कोई तरंगें नहीं रह जाती हैं, उस शांति में, उस परम निर्जन शांति में, उस निस्तब्धता में उसे पता चलता है, वह कौन है। उसे दिखाई पड़ता है अपना होना, अपनी सत्ता, अपनी आत्मा का उसे अनुभव शुरू होता है।

और आत्मा की एक किरण मिल जाए, तो सारे जीवन से बुराई गिर जाती है। आत्मा का जरा सा अनुभव मिल जाए, तो जीवन का सब असद आचरण गिर जाता है। आत्मा की जरा सी खबर मिल जाए, तो सारा आचरण तत्क्षण परिवर्तित हो जाता है। जैसे ही व्यक्ति भीतर के उस तत्व को जान ले, बाहर उसके जीवन में सब सुंदर, सब शुभ हो जाता है। जो जीवन की कला को जानते हैं, वे उस सत्य को जानने की चेष्टा करते हैं। जो जीवन की कला को नहीं जानते, वे बाहर से फूल चिपकाने की कोशिश करते हैं।

दो ही रास्ते हैं फूल लगाने के--एक तो कागज के फूल हैं, जिनको हम ऊपर से लगा लें; और एक असली फूल हैं, जो पौधे के प्राणों में से भीतर से आते हैं। जो लोग अच्छी-अच्छी बातें ऊपर से सीख लेते हैं और अच्छे-अच्छे काम ऊपर से करने लगते हैं, उनका जीवन कागज के फूलों का जीवन हो जाता है। उनमें कोई जान नहीं होती। उन फूलों में कोई सुगंध भी नहीं होती। और वे फूल ऊपर होते हैं, नीचे दुर्गंध होती है।

मैं नहीं कहता कि कोई व्यक्ति इस तरह कागज के फूल अपने जीवन में लगाए। मैं तो यह कहता हूं कि असली फूल लाने हैं तो इतने जल्दी नहीं होगा, असली फूल जरा मुश्किल से आते हैं। बीज बोने पड़ते हैं। वर्षों प्रतीक्षा करनी होती है। वर्षों उन पर पानी डालना होता है।

धूप की व्यवस्था करनी होती है। बाड़ लगानी होती है कि कोई उन्हें नष्ट न कर दे। और तब बड़ी मुश्किल और बड़ी प्रतीक्षा से, बड़ी मुश्किल और बड़ी प्रतीक्षा से अंकुर आते हैं, पौधे बड़े होते हैं, उनमें कलियां लगती हैं, और तब कहीं फूल बनते हैं। ये जड़ों से आए हुए फूल होते हैं।

जो व्यक्ति अपनी इंद्रियों को पीछे छोड़ कर, शरीर को पीछे छोड़ कर भीतर प्रवेश करने की चेष्टा करता है, वह एक तरह की बागवानी कर रहा है असली फूल लाने की। जब उसे भीतर की किरण मिलेगी, जब उसे अंतस का दर्शन होगा, जब उसे वहां आलोक का स्रोत उपलब्ध होगा, तब बीज फूटेगा और अंकुर निकलेंगे। और उसके बाहर के जीवन में असली फूल आने शुरू हो जाएंगे। असली फूल आ जाएं तो जीवन आनंद हो जाता है। और वैसा आनंद पाए बिना जो व्यक्ति इस जगत को छोड़ देता है, उसके दुर्भाग्य का अंत नहीं है। वे लोग बहुत अभागे हैं, बहुत दुर्भाग्य से भरे हुए हैं, जिन्होंने इस जगत को असली फूलों को पाए बिना छोड़ दिया। वे खुद भी कोई सुगंध और सुवास नहीं जान सके और उनके द्वारा दूसरों को भी कोई सुवास और सुगंध नहीं मिल सकी। जिस व्यक्ति को अपने मनुष्य की थोड़ी गरिमा है, जिस व्यक्ति को अपने भीतर की मनुजता का थोड़ा सा गौरव है, उसे यह संकल्प कर ही लेना चाहिए कि मृत्यु के पहले असली फूलों की सुगंध उपलब्ध कर लेना आवश्यक है।

जो बहुत गहरा संकल्प करता है, जो बहुत...

एक बहुत बड़ा फकीर हुआ, उसकी कहानी कहूंगा और बात पूरी कर दूंगा। वह अपने शिष्यों को एक दिन बोला कि मुझे कुछ बात तुम्हें संकल्प के संबंध में बतानी है। वह उन्हें एक खेत में ले गया। उसके शिष्यों ने कहा, बात बतानी है तो यहीं बता दें। उस फकीर ने कहा कि उस खेत में बताना आसान होगा। तुम चलो। वह अपने सारे शिष्यों को लेकर एक खेत में गया। वहां शिष्य देख कर हैरान हुए। बहुत बड़ा खेत था, उसमें कई बड़े-बड़े गड्ढे थे। उस फकीर ने पहले गड्ढे के पास ले जाकर बताया कि इस खेत का मालिक बिलकुल पागल है। उसने कुआं खोदना चाहा, उसने दस-पंद्रह हाथ गहरी जमीन खोदी, और यह देख कर कि पानी नहीं निकलता, उसने दूसरा गड्ढा खोदा। दस-पंद्रह हाथ जमीन उसने फिर खोदी, और यह देख कर कि पानी नहीं निकलता, उसने तीसरा गड्ढा खोदा। ऐसे आठ गड्ढे खोदे जा चुके हैं। मालिक अब नौवां गड्ढा खोद रहा है।

उस फकीर ने कहा, यह संकल्पहीन आदमी का लक्षण है। अगर उसने एक ही गड्ढा खोदा होता, और इतनी सारी शक्ति उसमें लगा दी होती, तो पानी कितना ही गहरा क्यों न होता, मिल जाना सुनिश्चित था।

हम में से अधिक लोग जीवन के खेत में अलग-अलग छोटे-छोटे गड्ढे खोदते रहते हैं और अंत में पाते हैं कि कोई पानी उपलब्ध नहीं हुआ। कैसे पानी उपलब्ध होगा? पानी उपलब्ध होगा, सारी शक्तियां एक ही बिंदु पर इकट्ठी लग जाएं और खुदाई शुरू हो, तो होगा। अगर कोई व्यक्ति सारी शक्तियों को एक ही बिंदु पर लगा दे और खुदाई शुरू कर दे, तो पानी

तत्क्षण उपलब्ध हो सकता है। उतनी शक्ति की ऊर्जा में पानी दूर नहीं रह जाता। और जिसकी प्यास गहरी होती है, परमात्मा उसके निकट आ जाता है।
मैं एक सूत्र आपको अंत में कहूं, जो परमात्मा की ओर पूरी प्यास से एक कदम चलते हैं, परमात्मा उनकी तरफ हजार कदम चलता है। जो सत्य की तरफ गहरे रूप से प्यासे होते हैं, सत्य उनकी तरफ प्रवाहित होने लगता है।
प्यास खींचती है प्रभु को। और प्यास हो, संकल्प हो, तो जीवन में कुछ हो सकता है। भीतर प्रवेश का उपाय हो, तो जीवन परिवर्तित हो सकता है। और अत्यंत सुवासित जीवन को पा लेने से ज्यादा धन्यता और कुछ भी नहीं है। प्रभु करे आपके जीवन में कोई ऐसी बात घटे कि वह सच्चे फूलों से, असली फूलों से भर जाए, यही कामना करता हूं।

सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को मेरे प्रणाम दें। और इतनी बातों को इतने प्रेम से सुना है, उसके लिए इतना आपका अनुग्रह मानता हूं।

मैं विचार में हूं--किस संबंध में आपसे बातें करूं। और बातें इतनी ज्यादा हैं और दुनिया इतनी बातों से भरी है कि संकोच होना बहुत स्वाभाविक है। बहुत विचार हैं, बहुत उपदेश हैं, सत्य के संबंध में बहुत से सिद्धांत हैं। यह डर लगता है कि कहीं मेरी बातें भी उस बोझ को और न बढ़ा दें, जो कि मनुष्य के ऊपर वैसे ही काफी है। बहुत संकोच अनुभव होता है। कुछ भी कहते समय डर लगता है कि कहीं वह बात आपके मन में बैठ न जाए। बहुत डर लगता है कि कहीं मेरी बात को आप पकड़ न लें। बहुत डर लगता है कि कहीं वह बात आपको प्रिय न लगने लगे; कहीं वह आपके मन में स्थान न बना ले।
चूंकि मनुष्य विचारों और सिद्धांतों के कारण ही पीड़ित और परेशान है। उपदेशों के कारण ही मनुष्य के जीवन में सत्य का आगमन नहीं हो पाता है। दूसरों के द्वारा कही गई और दी गई बातें ही उस सत्य के बीच में बाधा बन जाती हैं जो हमारे पास है और निरंतर है। ज्ञान बाहर से उपलब्ध नहीं होता; और जो भी बाहर से उपलब्ध हो जाए, वह ज्ञान को रोकने में कारण बन जाता है। मैं भी बाहर हूं। मैं जो भी कहूंगा, वह भी बाहर है। उसे ज्ञान मत समझ लेना। वह ज्ञान नहीं है। वह आपके लिए ज्ञान नहीं हो सकता। जो भी कोई दूसरा आपको देता हो, वह आपके लिए ज्ञान नहीं हो सकता। हां, उससे एक खतरा हो सकता है कि वे बातें आपके अज्ञान को ढंक दें, आपका अज्ञान आवृत हो जाए, छिप जाए, और आपको ऐसा प्रतीत होने लगे कि मैंने कुछ जाना है।
सत्य के संबंध में जान कर यह भ्रम पैदा हो जाता है कि मैंने सत्य को जाना है। सत्य के संबंध में पढ़ कर यह धारणा बन जाती है कि मैं सत्य को जान गया हूं। और जिनकी ऐसी धारणाएं बन जाती हैं वे ही सत्य को पाने में असमर्थ हो जाते हैं और पंगु हो जाते हैं।
तो सबसे पहले यह कह दूं, बाहर से जो भी आता है, कुछ भी ज्ञान नहीं हो सकता।

स्वाभाविक, मुझसे पूछा जा सकता है, फिर मैं क्यों बोलूं? मैं क्यों कहूं? मैं बाहर हूं और कुछ कहूंगा।

मैं इतनी ही बात कहना चाहता हूं कि बाहर जो भी है, उसे बाहर का समझें और ज्ञान न समझें। वह चाहे मेरा हो और चाहे किसी और का हो। ज्ञान प्रत्येक मनुष्य के भीतर उसका स्वरूप है। उस स्वरूप को जानने के लिए बाहर खोजने की कोई भी जरूरत नहीं है। बाहर से जो भी हम सीख लेंगे, यदि उस सत्य को जानना हो जो हमारे भीतर है, तो उसे अनसीखा करना होगा, उसे अनलर्न करना होगा, उसे छोड़ देना होगा। सत्य जिन्हें जानना है, उन्हें शास्त्र को छोड़ देना होता है। जो शास्त्र को पकड़ेंगे, सत्य उन्हें उपलब्ध नहीं होगा। हम सारे लोग शास्त्र को पकड़े बैठे हैं। दुनिया में यह जो इतना उपद्रव है, वह शास्त्र को पकड़ने के कारण है। ये जो हिंदू हैं, ये जो मुसलमान हैं, ये जो जैन हैं, या ईसाई हैं, या पारसी हैं, ये कौन हैं? इनको कौन लड़ा रहा है? इनको कौन एक-दूसरे से अलग कर रहा है?

शास्त्र अलग कर रहे हैं! शास्त्र लड़ा रहे हैं! सारी मनुष्यता खंडित है, क्योंकि कुछ किताबें कुछ लोग पकड़े हुए हैं; कुछ दूसरी किताबें दूसरे लोग पकड़े हुए हैं। किताबें इतनी मूल्यवान हो गई हैं कि हम मनुष्य की हत्या कर सकते हैं। और पिछले तीन हजार वर्षों में हमने लाखों लोगों की हत्या की है, क्योंकि किताबें बहुत मूल्यवान हैं। क्योंकि किताबें बहुत पूज्य हैं, इसलिए मनुष्य के भीतर जो परमात्मा बैठा है, उसका भी अपमान किया जा सकता है, उसकी भी हत्या की जा सकती है। क्योंकि शब्द और शास्त्र बहुत मान्य हैं, इसलिए मनुष्यता को इनकार किया जा सकता है, अस्वीकार किया जा सकता है। यह हुआ है। यह आज भी हो रहा है।

मनुष्य-मनुष्य के बीच जो दीवाल है, वह शास्त्रों की है। और क्या कभी यह खयाल पैदा नहीं होता कि जो शास्त्र मनुष्य को मनुष्य से अलग करते हों, वे मनुष्य को परमात्मा से कैसे जोड़ सकेंगे? जो मनुष्य को मनुष्य से ही तोड़ देता हो, वह मनुष्य को परमात्मा से जोड़ने की सीढ़ी कैसे बन सकता है? लेकिन हम सोचते हैं कि शायद वहां कुछ मिले। जरूर कुछ मिलता है। शब्द मिल जाते हैं। सत्य को दिए गए शब्द मिल जाते हैं और शब्द स्मरण हो जाते हैं। वे हमारी स्मृति में प्रविष्ट हो जाते हैं और स्मृति को हम ज्ञान समझ लेते हैं।

स्मृति ज्ञान नहीं है। मेमोरी ज्ञान नहीं है। कुछ चीजें सीख लेना, स्मरण कर लेना, ज्ञान नहीं है। ज्ञान का जन्म बहुत दूसरी बात है। स्मृति का प्रशिक्षण बहुत दूसरी बात है। स्मृति के प्रशिक्षण से कोई पंडित हो सकता है, लेकिन प्रज्ञा जाग्रत नहीं होती। और ज्ञान तो सारे जीवन को क्रांति कर देता है।

तो मैं आपको कोई उपदेश देने का किंचित भी पाप करने को तैयार नहीं हूं। जो भी उपदेश देते हैं, हिंसा करते हैं और पाप करते हैं। मैं कोई उपदेश देने को नहीं हूं। मैं कुछ थोड़ी सी बातें आपसे कहने को हूं। इसलिए नहीं कि आप उन्हें मान लें। क्योंकि जो भी कहता है मान लो, वह आपका दुश्मन है। जो भी कहता है श्रद्धा कर लो, जो भी कहता है विश्वास करो, वह घातक है। वह आपके जीवन को विकसित होने से रोकेगा। जो भी कहता है विश्वास करो,

वह विवेक के जागने में बाधा बन जाएगा। और हमने बहुत दिन विश्वास किया है और विश्वास का यह परिणाम है जो हमारी दुनिया है! इससे रद्दी दुनिया और हो सकती है? इससे ज्यादा करप्टेड? लेकिन हम विश्वासी लोग हैं और हमने बहुत दिन विश्वास किया है। और इससे ज्यादा बुरा मनुष्य हो सकता है, जो आज है? इससे सड़े हुए मस्तिष्क हो सकते हैं और ज्यादा, जैसे आज हैं? इससे ज्यादा पीड़ा और दुख और अशांति हो सकती है? लेकिन हमने बहुत दिन विश्वास किया है और सारी दुनिया विश्वास करती है--कोई इस मंदिर में, कोई उस मस्जिद में, कोई उस चर्च में; कोई इस किताब में, कोई उस किताब में; कोई इस मसीहा में, कोई उस मसीहा में। सारी दुनिया विश्वास करती है। लेकिन विश्वास के बावजूद यह परिणाम है। शायद लोग कहेंगे कि विश्वास कम है इसलिए यह परिणाम है।

और मैं आपसे कहना चाहता हूं, परमात्मा करे कि विश्वास बिलकुल शून्य हो जाए। अगर कहीं विश्वास पूरा हुआ, तो मनुष्य गया! क्योंकि विवेक नष्ट हो जाएगा। विश्वास विवेक का विरोधी है। जब भी कोई कहता है कि हमारी बात मान लो, तभी वह यह कहता है कि तुम्हें खुद जानने की कोई जरूरत नहीं है। जब भी कोई कहता है विश्वास कर लो, तो वह यह कहता है, तुम्हें अपने पैरों की कोई आवश्यकता नहीं है। जब भी कोई कहता है श्रद्धा करो, तब वह यह कहता है, तुम्हें अपनी आंख की क्या जरूरत? हमारे पास आंख है।

मैंने एक छोटी सी कहानी पढ़ी है। एक गांव में एक आदमी की आंखें चली गईं। वह बूढ़ा था। वह बहुत बूढ़ा था। उसकी कोई नब्बे वर्ष उम्र थी। उसके घर के लोगों ने, उसके आठ लड़के थे, उन आठों ने उससे प्रार्थना की कि आंखों का इलाज करवा लिया जाए। चिकित्सक कहते हैं कि आंखें ठीक हो जाएंगी। उस बूढ़े आदमी ने कहा, मुझे आंखों की क्या जरूरत? मेरे आठ लड़के हैं। उनकी सोलह आंखें हैं। उनकी आठ पत्नियां हैं। उनकी सोलह आंखें हैं। मेरे पास बत्तीस आंखें हैं। मुझे आंख की क्या जरूरत है? मुझे कौन सी जरूरत है आंख की? मैं अंधा भी जी लूंगा। उन लड़कों ने बहुत प्रार्थना की। लेकिन वह बूढ़ा माना नहीं। उसने कहा, मुझे आंख की जरूरत क्या है? मेरे घर में मेरी बत्तीस आंखें हैं।

दिन आखिर बीत गए। एक रात उस भवन में आग लगी। वे बत्तीस आंखें बाहर हो गईं, वह बूढ़ा भीतर रह गया। उस घर में आग लगी, वह बूढ़ा भीतर रह गया, वे बत्तीस आंखें बाहर हो गईं। और तब उसे याद आया कि अपनी ही आंख काम आती है, किसी और की आंख काम नहीं आती है। अपना ही विवेक काम आता है, किसी दूसरे से मिले हुए विश्वास काम नहीं आते हैं।

जीवन में चारों तरफ चौबीस घंटे आग लगी हुई है। हम चौबीस घंटे जीवन की आग में घिरे हुए हैं। वहां अपनी ही आंख काम आ सकती है, किसी और की नहीं--न महावीर की, न बुद्ध की, न कृष्ण की और न राम की। किसी की आंख किसी दूसरे के काम नहीं आ सकती।

लेकिन धार्मिक पुरोहित, धर्म के व्यवसायी, धर्म के नाम पर शोषण करने वाले लोग, वे यह समझाते हैं--विश्वास करो। विवेक की क्या जरूरत है? तुम्हें खुद विचार की क्या जरूरत

है? विचार तो उपलब्ध हैं। दिव्य विचार उपलब्ध हैं, इन पर विश्वास करो। और हम उन विचारों पर विश्वास करते रहे हैं और निरंतर नीचे से नीचे चले गए हैं। हमारी चेतना निरंतर नीचे से नीचे चली गई है।

विश्वास से कोई चेतना ऊपर नहीं उठती। विश्वास तो आत्महत्या है। इसलिए मैं नहीं कहता कि किसी बात पर विश्वास करें। मैं कहता हूं: विश्वास से अपने को मुक्त कर लें।

जिस व्यक्ति को भी सत्य को जीवन में अनुभव करना हो, और जिस व्यक्ति को भी परमात्मा के निकट पहुंचना हो, और जिस व्यक्ति को भी प्रभु के प्रकाश और प्रेम को अनुभव करना हो, वह स्मरण रखे, सब भांति के विश्वासों से स्वतंत्र हो जाना पहली शर्त है। स्वतंत्रता, चित्त की स्वतंत्रता, विवेक की स्वतंत्रता पहली शर्त है सत्य को जानने के लिए। और जिसका चित्त स्वतंत्र नहीं है, वह स्मरण रखे, वह और कुछ भी जान ले, सत्य को कभी नहीं जान सकेगा। सत्य के द्वार पर प्रवेश पाने के लिए चेतना का स्वतंत्र होना अत्यंत अनिवार्य है।

विश्वास बांधते हैं, परतंत्र करते हैं। श्रद्धाएं बांधती हैं, परतंत्र करती हैं। शास्त्र और सिद्धांत बांधते हैं और परतंत्र करते हैं। कितनी आश्चर्य की बात है, एक घर में आप पैदा हो जाते हैं, संयोग से वह घर हिंदू का हो या मुसलमान का हो, और जन्म के साथ आपको विश्वास दे दिया जाता है। फिर जीवन भर आप कहेंगे--मैं हिंदू हूं; मुसलमान हूं; ईसाई हूं; जैन हूं। कहीं जन्म के साथ कोई ज्ञान मिलता है? खून से ज्ञान का कोई संबंध है? पैदाइश से कोई धर्म का संबंध हो सकता है? अगर पैदाइश से दुनिया में लोग धार्मिक होते तो सारी दुनिया धार्मिक होनी चाहिए थी। यह दुनिया इतनी अधार्मिक है, इस बात का सबूत है कि जन्म के साथ धर्म का कोई संबंध नहीं हो सकता है। लेकिन हम सब जन्म से धार्मिक बने हुए हैं। और ये जन्म से बने हुए धार्मिक ही सारे उपद्रव का कारण हैं। दुनिया में इनके कारण ही धर्म का अवतरण नहीं हो पाता है।

जन्म से कोई धार्मिक नहीं होता, जीवन से धार्मिक होता है। जन्म से किसी का कोई संबंध किसी विश्वास से होने का कोई कारण नहीं है। लेकिन इसके पहले कि हमारा विवेक जाग्रत हो, हमारा समाज, हमारा परिवार, हमारे मां-बाप, शिक्षक, उपदेशक हमें विश्वास पकड़ा देते हैं। इसके पहले कि विवेक मुक्त आकाश में विचरण करे, विश्वास की जंजीरें उसे जमीन पर रोक लेती हैं और बांध लेती हैं। फिर जीवन भर हम उसी विश्वास के घेरे में लड़खड़ाते रहते हैं। फिर हम कभी सोच नहीं पाते। जिस आदमी का कोई भी विश्वास है, जिसकी कोई बिलीफ है, वह आदमी कभी विचार नहीं कर सकता, क्योंकि हमेशा वह अपने विश्वास के बिंदु से देखना शुरू करता है। वह जो भी विचार करेगा, वह पक्षपातग्रस्त होगा। वह जो भी विचार करेगा, वह उसकी पूर्वधारणा में आबद्ध होगा। वह जो भी विचार करेगा, वह हमेशा उधार और झूठा होगा। उसका निज का नहीं हो सकता है। और जो विचार अपना न हो, जो विवेक अपना न हो, वह असत्य है। उसकी कोई सच्चाई नहीं है। वह कोई वास्तविक आधार नहीं है जिस पर जीवन खड़ा किया जा सके।

तो देश भर में लोगों से यही पूछ रहा हूं, आपके पास विश्वास तो बहुत हैं, कोई विचार भी है? वे कहेंगे, बहुत विचार हैं। मैं पूछता हूं, उसमें कोई आपका है? अपना है? या कि सब दूसरों के हैं? जो संपत्ति दूसरों की है, उससे आपके जीवन को कौन सा प्राण मिलेगा?

लेकिन हमारी सारी विचार की संपत्ति उधार है और पराई है और दूसरों की है। यह चित्त की पहली परतंत्रता है और चित्त को सबसे पहले इस परतंत्रता से मुक्त होना ही चाहिए। मनुष्य का नया जन्म तभी संभव होता है जब उसकी चेतना उधार विचारों और पराई धारणाओं से मुक्त हो जाए। इसलिए स्वतंत्रता को मैं पहला तत्व कहता हूं।

जो भी सत्य की खोज में जाना चाहते हैं, जिनके भीतर भी प्यास जगी है कि वे जानें कि जीवन का अर्थ क्या है? जिनके भीतर भी यह अभीप्सा सरकी है कि वे समझें कि यह सब जो है विराट, यह जो चारों तरफ फैली हुई सत्ता है, इसका प्रयोजन क्या है? यदि वे चाहते हैं कि जानें कि क्या है अमृत और क्या है आनंद और क्या है परमात्मा? तो स्मरण रखें, पहली शर्त, पहली भूमिका होगी, वे अपने चित्त को स्वतंत्रता की तरफ ले जाएं, चित्त को स्वतंत्र कर लें। अगर अंततः स्वतंत्रता चाहिए, तो प्रथम चरण में ही स्वतंत्रता के आधार रख देने होंगे।

लेकिन हम सारे बंधे हुए लोग हैं। हम सारे लोग किसी न किसी विश्वास से बंधे हुए हैं। और क्यों बंधे हुए हैं? इसलिए बंधे हुए हैं कि ज्ञान के लिए साहस और श्रम करना होता है। और विश्वास के लिए कोई साहस और कोई श्रम करने की जरूरत नहीं है। विश्वास करने के लिए किसी तरह की तपश्चर्या की, किसी तरह की साधना की कोई जरूरत नहीं है। किसी दूसरे पर विश्वास कर लेने के लिए आपके भीतर अत्यंत साहस की कमी, श्रम की कमी, तपश्चर्या की कमी, गहरा आलस्य और तामसिक वृत्ति हो, तो विश्वास सहज हो जाता है। जो खुद नहीं खोजना चाहता, वह मान लेता है कि जो दूसरे कहते हैं, ठीक ही कहते होंगे।

सत्य के प्रति जिसके मन में कोई श्रद्धा नहीं है, वही सत्य के संबंध में प्रचलित सिद्धांतों में श्रद्धा कर लेता है। सत्य के प्रति जिसकी प्यास सच्ची नहीं है, वही केवल दूसरों के दिए हुए विचारों पर विश्वास कर लेता है। अगर सत्य की अभीप्सा हो, तो कोई किसी धर्म में, कोई किसी सिद्धांत में, कोई किसी संप्रदाय में आबद्ध नहीं होगा। खोजेगा, निज खोजेगा। अपने सारे प्राणों की शक्ति लगा कर खोजेगा। और जो उस भांति खोजता है, वह निश्चित पा लेता है। और जो इस भांति विश्वास करता चला जाता है, वह जीवन तो खो देता है, लेकिन जीवन-सत्य उसे उपलब्ध नहीं होता है।

जीवन-सत्य की उपलब्धि श्रम मांगती है और तप मांगती है। लेकिन हम विश्वास कर लेते हैं। हम डरे हुए भयभीत लोग हैं। हम किसी के चरण पकड़ लेते हैं। हम किसी की बांह पकड़ लेना चाहते हैं और जीवन के समाधान को उपलब्ध हो जाना चाहते हैं। किसी गुरु की, किसी साधु की, किसी संत की छाया में हम भी तैर जाना चाहते हैं और तर जाना चाहते हैं। यह असंभव है। यह बिलकुल ही असंभव है। इससे ज्यादा असंभव कोई दूसरी बात नहीं हो सकती है।

स्वतंत्रता चित्त की अनिवार्य शर्त है।

कैसे हमारा चित्त स्वतंत्र हो? कैसे हम चित्त को स्वतंत्र करें और मुक्त करें? यह बंधा हुआ चित्त, जो ढांचों में कैद है, इसे हम कैसे इन पिंजड़ों के बाहर ले जाएं? उस संबंध में ही चाहूंगा कि इन तीन-चार चर्चाओं में विस्तार से आपसे बात कर सकूं। क्योंकि मनुष्य के सामने सबसे बड़ी समस्या उसकी चित्त की मुक्ति और स्वतंत्रता की है। प्रश्न परमात्मा का नहीं है, प्रश्न चित्त की स्वतंत्रता का है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे पूछते हैं, ईश्वर है? तो मैं उनसे कहता हूं, ईश्वर की फिकर छोड़ दो, मुझे यह बताओ कि तुम्हारा चित्त स्वतंत्र है? कोई मुझसे पूछे, आकाश है? कोई मुझसे पूछे, सूरज है? तो उससे मैं क्या कहूंगा? उससे मैं कहूंगा, तुम्हारी आंखें खुली हैं? सूर्य तो है, लेकिन सूर्य के होने के लिए आंखों का खुला होना चाहिए। परमात्मा तो है, लेकिन परमात्मा को होने के लिए चित्त का खुला होना चाहिए। बंधे हुए चित्त और बंद आंखें उसे कैसे देख सकेंगी?

जो विश्वास में ग्रस्त है, उसकी आंखें बंद हैं और चित्त बंधा हुआ है। जिसने कोई भी मान्यता बना ली है, कोई भी कंसेप्शन बना लिया है, कोई भी धारणा बना ली है, जिसने जानने के पहले कोई मान्यता बना ली है, उस आदमी का चित्त बंद हो गया। उसने अपने द्वार बंद कर लिए। और अब वह पूछता है कि परमात्मा है? सत्य है?

निश्चित ही बंद मन के लिए न सत्य है, न परमात्मा है। इसलिए असली प्रश्न, असली सवाल, असली समस्या ईश्वर के होने, न होने की नहीं है; न आत्मा के होने और न होने की है; न सत्य के होने और न होने की है। असली समस्या है: वह चित्त आपके पास है जो जान सके? उस चित्त के बिना कोई मार्ग जीवन की उपलब्धि का, जीवन की सार्थकता को जानने का न है, न कभी था और न कभी हो सकता है। केवल वे ही जान सकते हैं जिनका विवेक परिपूर्ण रूप से मुक्त होकर जानने में समर्थ है।

कैसे हम अपने चित्त को मुक्ति की ओर ले जाएं? कैसे उसके द्वार खोलें? कैसे उसकी खिड़कियां खुलें और उनमें प्रकाश आ सके? कैसे हमारी आंख खुले और हम देख सकें जो है। जब भी हम कुछ मान लेते हैं तो हमारी आंख पर एक पर्दा पड़ जाता है और हम उसे देख नहीं पाते जो है, बल्कि उसे देखने लगते हैं जिसे हम मानते हैं।

लोगों ने कृष्ण के दर्शन किए हैं, राम के दर्शन किए हैं, क्राइस्ट के दर्शन किए हैं, बुद्ध के दर्शन किए हैं। ये दर्शन हो सकते हैं। अगर हम किसी बात को मान लें, विश्वास कर लें, आग्रहपूर्वक चित्त में उसे ग्रहण कर लें और फिर निरंतर उसका स्मरण करें और निरंतर उसका विचार करें और अपने को आत्म-सम्मोहित कर लें; उपवास से और तप से, निरंतर चिंतन और मनन से, निरंतर विचार और विश्वास से अगर हम अपने को पूरा का पूरा ग्रसित कर लें, तो हमें दर्शन हो सकते हैं। और वे दर्शन सत्य के नहीं होंगे। वे हमारी ही कल्पना के दर्शन होंगे। वे हमारे ही विचार के दर्शन होंगे। वे हमारी मान्यता का ही प्रोजेक्शन, प्रक्षेप होगा। वह हमारा ही स्वप्न होगा जो हमने पैदा किया है। इसलिए दुनिया

में अलग-अलग धर्मों के लोग अलग-अलग ढंग से दर्शन कर लेते हैं। वे दर्शन वास्तविक नहीं हैं।

वास्तविक दर्शन के लिए तो जरूरी है, परमात्मा जैसा है उसे जानने के लिए, सत्य जैसा है उसे जानने के लिए तो जरूरी है कि हम अपनी सारी कल्पनाओं को और धारणाओं को छोड़ दें। हमारी सारी कल्पनाएं शून्य हो जाएं। हमारे सारे विचार विलीन हो जाएं। हमारे अपने भीतर कोई मान्यता न हो और फिर हम देख सकें। मान्यता-शून्य जो दर्शन है, वह तो सत्य का दर्शन है; मान्यता के आधार पर जो दर्शन है, वह अपनी ही कल्पना का प्रक्षेप है, अपनी ही कल्पना का दर्शन है।

इस तरह का दर्शन धार्मिक दर्शन नहीं है; इस तरह का दर्शन एक मानसिक कल्पना और स्वप्न का दर्शन है। यह अनुभूति वास्तविक नहीं है। यह अनुभूति तैयार की हुई, बनाई गई, अपने ही मन से सृष्ट है। हमने ही उसे निर्मित किया है।

और दुनिया में बहुत लोगों ने इस भांति परमात्मा के दर्शन किए हैं। वे परमात्मा के दर्शन नहीं हैं, क्योंकि परमात्मा का कोई रूप नहीं है और उसका कोई आकार नहीं है। और सत्य की कोई मूर्ति नहीं है, और सत्य के कोई गुण नहीं हैं। उस सत्य को, जो समस्त में व्याप्त है, जानने के लिए मुझे परिपूर्ण रूप से शांत और शून्य हो जाना जरूरी है। अगर मेरा चित्त बिलकुल निर्विकल्प हो, शांत और सरल हो; अगर मेरे चित्त में कोई विचार न बहते हों, कोई कल्पनाएं न उठती हों; अगर मेरा चित्त बिलकुल ही मौन हो, तो उस मौन में मैं किसे जानूंगा? उस मौन में भी कुछ जाना जाता है। उस शून्य में भी किसी से संबंध और संपर्क हो जाता है। उस शांति में भी कहीं किसी अलौकिक सत्ता से संबंध स्थापित हो जाता है। वही संबंध, वही संपर्क, वही समझ, वही बोध, वही प्रतीति परमात्मा की और सत्य की प्रतीति है।

उस तक जाने के लिए जरूरी है, जैसा मैंने कहा: पहला चरण जरूरी है कि चित्त स्वतंत्र हो जाए। विश्वास से मुक्त हो जाए। संप्रदाय और सिद्धांत की धूल झाड़ दी जाए और अलग कर दी जाए।

कितने ग्रसित हम हैं और कितने भरे हुए हम हैं! कितना ज्यादा विचार का, सिद्धांत का, शास्त्र का हमारे ऊपर भार है! हम उससे दबे जा रहे हैं। कोई पांच हजार साल से मनुष्य चिंतन करता है। पांच हजार साल का चिंतन का भार एक-एक छोटे-छोटे आदमी के सिर पर है। पांच हजार वर्षों में जो भी विचार हुए हैं, उनका भार हमारे ऊपर है। उस भार के कारण चित्त मुक्त नहीं हो पाता, ऊपर नहीं उठ पाता। हम जब भी विचार करना शुरू करते हैं, उसी भार के घेरे में घूमने लगते हैं। वे ढांचे हैं, उन्हीं में हम चलने लगते हैं। जैसे कोल्हू का बैल चलता है अपने रास्ते पर, वैसे ही हमारा चित्त चलता है। इसके पहले कि किसी को सत्य के अज्ञात जगत में प्रवेश करना हो, उसे सारे ज्ञात मार्गों को छोड़ देना बहुत-बहुत आवश्यक है। वह जो भी हम जानते हैं, उसे छोड़ देना जरूरी है, ताकि ज्ञान उत्पन्न हो सके। और जो भी हम मानते हैं, उसे हटा देना जरूरी है, ताकि उसका दर्शन हो सके जो है।

एक तो हौजों में भरा हुआ पानी होता है। ऊपर से पानी भर देते हैं। ईंट-गारे से जोड़ देते हैं हौज को, ऊपर से पानी भर देते हैं। एक कुएं का भी पानी होता है। उसमें जितना भी मिट्टी और पत्थर है, उसे निकाल बाहर कर देते हैं और तब नीचे से जल-स्रोत आते हैं। हौज का पानी थोड़े ही दिन में गंदा हो जाएगा। वह भरा हुआ है। और जिसके जल-स्रोत हैं कुएं के, उसका पानी गंदा नहीं होगा। उसके तो प्राणों का संबंध बहुत गहरे तल से है, जहां बहुत जल है। वह तो अंततः सागर से जुड़ा है। हौज किसी से नहीं जुड़ी है। उसमें ऊपर से पानी भरा है। कुआं तो अंततः सागर से जुड़ा है। उसमें ऊपर से कुछ नहीं भरा गया है।

दो तरह के ज्ञान भी होते हैं। एक तो हौज का ज्ञान होता है जो ऊपर से भर दिया जाता है। वह बहुत जल्दी सड़ जाता है। इसलिए दुनिया में पंडित के मस्तिष्क से सड़ा हुआ मस्तिष्क और कोई मस्तिष्क नहीं होता। वह सोच-विचार करने में असमर्थ ही होता है। उसकी स्थिति अत्यंत पंगु, क्रिपिल्ड होती है। उसका सब भरा हुआ रहता है। वह उसी को दोहराता है। वह मशीन की भांति होता है। इसलिए पंडित की बातें बिलकुल यंत्र की भांति चलती हैं। उससे कुछ भी पूछिए, सब पहले से तैयार है। प्रश्न बाद में है, समाधान पहले है। उत्तर उसे मालूम है। उत्तर ऊपर से भर दिए गए हैं। अब तो पश्चिम में, हमारे मुल्क में भी जल्दी आ जाएंगी, वे मशीनें तैयार हो गई हैं, जिनसे आप प्रश्न पूछें, वे उत्तर दे देंगी। पंडितों की दुनिया में अब जरूरत नहीं रह जाएगी। क्योंकि मशीनें होंगी, जिनमें प्रश्न पहले से भरे हुए हैं, उत्तर भरे हुए हैं। आप प्रश्न लगा दीजिए, कि पांचवां प्रश्न, वे उत्तर दे देंगी। मशीन भीतर से उत्तर दे देगी कि यह उत्तर है। अब पंडित की दुनिया में कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि मशीनें उसका काम कर देंगी और ज्यादा कुशलता से कर देंगी। और मशीनों में एक और भी सुविधा होगी, वे किसी को लड़ाएंगी नहीं, झगड़ा नहीं खड़ा करवाएंगी। एक पंडित के खिलाफ दूसरे पंडित को खड़ा नहीं करेंगी। विवाद नहीं करेंगी। सिर्फ उत्तर देंगी।

यह ऊपर से भरा हुआ जो ज्ञान है, घातक है। यह मस्तिष्क को मुक्त नहीं करता, मस्तिष्क को बांध देता है और खंडित कर देता है। उसकी क्षमता उड़ने की तोड़ देता है, उसके पंख नष्ट कर देता है। एक दूसरा ज्ञान है जो भीतर से आता है, कुएं के जल की तरह आता है। निश्चित ही दोनों की प्रक्रिया बिलकुल अलग और विरोधी है। कुएं में मिट्टी को, पत्थर को बाहर निकालना पड़ता है; और हौज में मिट्टी और पत्थर को जोड़ना पड़ता है। एक में पानी आता है, एक में पानी डालना पड़ता है।

क्या आप ज्ञान को हौज की तरह इकट्ठा कर रहे हैं? अगर इकट्ठा कर रहे हैं तो सावधान हो जाएं। आप अपने ही हाथ से अपने मस्तिष्क को नष्ट कर रहे हैं। वह मस्तिष्क जो कि परमात्मा तक उड़ सकता है, आप उसको जमीन से बांध रहे हैं।

बाहर से ज्ञान न इकट्ठा करें। भीतर से ज्ञान को आने दें। भीतर से ज्ञान के आने देने के लिए जरूरी है कि ईंट-पत्थर जो इकट्ठे कर लिए हैं वे अलग कर दिए जाएं। जितना ज्ञान हमने इकट्ठा कर लिया है, उसे हम हटा दें, सरल हो जाएं। अगर ज्ञान को हम हटा दें

और सरल हो जाएं तो कुछ आपके भीतर से नई ऊर्जा का जन्म आपको अनुभव होगा। कोई चीज पैदा होनी शुरू हो जाएगी।

और जगत में संपत्ति को छोड़ना आसान है, विचार को छोड़ना कठिन है। निश्चित ही, आप पूछेंगे, कैसे अलग कर दें? विचार को छोड़ना बहुत कठिन है। एक आदमी साधु हो जाता है। संपत्ति छोड़ देता है, घर छोड़ देता है, मित्र-प्रियजन छोड़ देता है, पत्नी-बच्चे छोड़ देता है; लेकिन जिन विचारों को उसने गृहस्थ रहते हुए पकड़ा था, उनको नहीं छोड़ता। उनको पकड़े रहता है। अगर वह जैन था, तो वह कहता है, मैं जैन साधु हूं। अगर वह मुसलमान था, तो वह कहता है, मैं मुसलमान साधु हूं। अगर वह ईसाई था, तो वह कहता है, मैं ईसाई साधु हूं। जिन विचारों को उसने पकड़ा था, उनको पकड़े रहता है, और सब छोड़ देता है। और गृहस्थी बाहर है। विचार की गृहस्थी भीतर है, और कठिन है छोड़नी। जो उसको छोड़ देता है, वह सत्य को जानने में समर्थ होता है। घर-वर छोड़ने से कोई कभी किसी सत्य को नहीं जान सकता, क्योंकि सत्य में घर की दीवाल बाधा नहीं है। मैं इस घर में बैठा हूं कि दूसरे घर में बैठा हूं, ये दीवालें घर की कोई बाधा नहीं हैं सत्य को जानने में। मैं किनके साथ बैठा हूं, यह भी कोई बाधा नहीं है। मैं कहां हूं, यह भी कोई बाधा नहीं है। सत्य को जानने में एक ही चीज बाधा है कि भीतर जो विचार की दीवाल खड़ी हो जाती है, वही और वही केवल बाधा है। इसलिए निश्चित उसका विसर्जन कठिन है। और जब मैं कहता हूं कि विचार को छोड़ दें, तो प्रश्न उठता है, उसे कैसे छोड़ेंगे? कैसे विचार जाएगा? वह तो निरंतर हमारे भीतर है। जो हमने सीख लिया, उसे हम कैसे भूल सकते हैं?

जरूर जो सीखा गया है, उसे भूलने का रास्ता होता है। और जो इकट्ठा किया गया है, उसे बांट देने का रास्ता होता है। और जो भर लिया गया है, उसे खोल देने का रास्ता होता है। असल में जो भी भीतर लाया गया है, उसे बाहर वापस पहुंचाने का वही रास्ता है जिस रास्ते से वह भीतर लाया गया है। रास्ता हमेशा वही होता है। मैं जिन सीढ़ियों से चढ़ कर ऊपर आया हूं, उन्हीं सीढ़ियों से वापस चला जाऊंगा। और जिस रास्ते से आप तक आया हूं, उसी रास्ते से वापस लौट जाऊंगा। रास्ता हमेशा वही होता है, आने और जाने में रास्ते का फर्क नहीं पड़ता, केवल दिशा का फर्क पड़ता है, मुंह के बदल लेने का फर्क पड़ता है।

जिन-जिन रास्तों से हमने विचार को इकट्ठा किया है, उनके विपरीत मुंह कर लेने से विचारों को विसर्जित भी किया जा सकता है। किन-किन रास्तों से हमने विचार को इकट्ठा किया है? विचार को इकट्ठा करने में सबसे महत्वपूर्ण, सबसे गहरा जो तल है, वह है ममत्व का। वह इस भाव का कि वे मेरे हैं। लगता है विचार मेरे हैं।

कोई विचार आपका है? अगर मैं विवाद करने लगूं, तो आप कहेंगे, मेरा विचार ठीक है। थोड़ा विचार करिए, आपका कोई विचार है? या कि सब विचार बाहर से आए हैं? व्यर्थ ही हम कहते हैं कि मेरा विचार। जो लोग कहने लगते हैं--मेरी कोई पत्नी नहीं है, मेरा कोई बच्चा नहीं है, मेरा कोई मकान नहीं है; वे भी कहते हैं--मेरा धर्म! वे भी कहते हैं--मेरा विचार! मेरा दर्शन! उनको भी वह विचार के तल पर जो ममत्व का भाव है, मेरे होने का

भाव है, नहीं जाता। और जिनका उस तल पर ममत्व का भाव नहीं गया है, उनका किसी तल पर ममत्व का भाव नहीं जाएगा। वे चाहे कितना ही कहें कि मेरी पत्नी नहीं है यह, लेकिन बहुत गहरे में उनका यह भाव रहेगा कि यह मेरी पत्नी है।

स्वामी रामतीर्थ अमरीका से वापस लौटे। सारे यूरोप में, सारे अमरीका में उन्होंने बड़ी तत्वदर्शन की चर्चा की। उनका बड़ा प्रभाव हुआ। लाखों-करोड़ों लोगों ने उन्हें पूजा और माना। फिर वे भारत वापस लौट आए। फिर वे कुछ दिन तक हिमालय में थे। उनकी पत्नी उनसे मिलने गई, तो स्वामी राम ने मिलने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा, मैं नहीं मिलूंगा। तो उनके पास सरदार पूर्णसिंह नाम के एक व्यक्ति रहते थे, वे बहुत हैरान हुए। उन्होंने कहा कि मैंने आपको कभी किसी स्त्री को इनकार करते नहीं देखा। यूरोप में, अमरीका में हजारों स्त्रियां आपसे मिलीं और आपने कभी किसी को इनकार नहीं किया। इस स्त्री को इनकार क्यों करते हैं? क्या किसी तल पर अब भी इसे अपनी पत्नी नहीं मान रहे हैं? छोड़ कर चले गए थे उसे। लेकिन अपनी पत्नी से मिलने को इनकार कर रहे हैं। जरूर किसी तल पर वे मान रहे हैं कि वह पत्नी उनकी है। अन्यथा और स्त्रियां आती हैं, उन्हें मिलने से इनकार उन्होंने कभी किया नहीं।

जब तक आपका विचार पर ममत्व है, तब तक आप इस भ्रम में मत रहें कि आप कुछ भी छोड़ सकते हैं। क्योंकि असली पकड़ और संपत्ति तो केवल विचार की है, बाकी सारी चीजें बाहर हैं, उनकी कोई पकड़ नहीं है। पकड़ तो सिर्फ विचार की है। तो वह जो विचार का घेरा है, वह जो विचार की संपत्ति है, जिससे आपको लगता है कि मैं कुछ जानता हूं। विचारणीय है, क्या उसमें कुछ भी आपका है?

एक बहुत बड़ा साधु था। कुछ ही दिन पहले उसके आश्रम में एक युवा संन्यासी आया। दो-चार-दस दिन तक उस संन्यासी की बातें उसने सुनीं। वह जो वृद्ध साधु था, उसकी बातें बड़ी थोड़ी सी थीं। और युवा संन्यासी थक गया उन्हीं-उन्हीं बातों को बार-बार सुन कर और उसने सोचा, इस आश्रम को छोड़ूं, यहां तो सीखने को कुछ दिखाई नहीं पड़ता। और तभी एक और संन्यासी का आगमन आश्रम में हुआ। रात्रि को उस संन्यासी ने जो चर्चा की, वह बहुत अदभुत थी, बहुत गंभीर थी, बहुत सूक्ष्म थी, बहुत गहरी थी। यह युवा संन्यासी उसकी बातें सुना, उस आगंतुक संन्यासी की, अतिथि की, और इसको लगा कि गुरु हो तो ऐसा हो, जिसके पास ऐसा ज्ञान है, इतना गंभीर और गहरा। और एक यह वृद्ध संन्यासी है, जिसके आश्रम में मैं रुका हूं आकर। इसको तो थोड़ी सी बातें आती हैं, और कुछ आता नहीं। फिर उसे यह भी लगा कि यह वृद्ध संन्यासी इस युवा संन्यासी की बातें सुन कर मन में कैसा दुखी नहीं होता होगा? कैसा इसे नहीं अपमान अनुभव होता होगा? यह तो कुछ भी नहीं जानता। जीवन इसने व्यर्थ गंवा दिया है।

उस नये आए साधु ने अपनी बात पूरी की और गौरव से सबकी तरफ देखा कि उन पर क्या प्रभाव पड़ा। उसने वृद्ध साधु की तरफ भी देखा। वह वृद्ध साधु बोला कि मैं दो घंटे से बहुत स्मृतिपूर्वक सुन रहा हूं, लेकिन मैं देखता हूं कि तुम तो बोलते ही नहीं।

उस संन्यासी ने कहा, आप पागल तो नहीं हैं? दो घंटे से मैं ही बोल रहा हूं, और तो सब लोग चुप हैं। और आप कहते हैं कि दो घंटे से आप सुन रहे हैं और मैं बोलता नहीं हूं!
उस साधु ने कहा, निश्चित ही मैंने बहुत गौर से सुना, तुम कुछ भी नहीं बोले। जो भी तुम बोले, सब दूसरों का है। कोई विचार तुम्हारी अपनी अनुभूति से नहीं है। और इसलिए मैं कहता हूं कि तुम नहीं बोले। दूसरे तुम्हारे भीतर से बोले, लेकिन तुम नहीं बोले।
विचार की मुक्ति के लिए और विचार की स्वतंत्रता के लिए और विवेक के जागरण के लिए, पहली बात, पहला बोध, विचार कोई भी मेरा नहीं है। कोई भी विचार मेरा नहीं है। वह जो मेरे का संबंध है विचार से, उसे देख लें, वह आपका सच नहीं है, वह झूठ है। कोई विचार मेरा नहीं है। वह जो तादात्म्य है विचार से, उसे तोड़ दें।
हम हर विचार से अपना तादात्म्य कर लेते हैं। हम कहते हैं: जैन धर्म मेरा; हिंदू धर्म मेरा; राम मेरे; कृष्ण मेरे; क्राइस्ट मेरे; हम तादात्म्य कर लेते हैं। हम अपने मैं से उनको जोड़ लेते हैं। बड़ा आश्चर्य है!
कोई विचार आपका नहीं है। कोई धर्म आपका नहीं है। यह स्मरणपूर्वक अगर प्रज्ञा में प्रतिष्ठित हो जाए यह बोध कि कोई विचार मेरा नहीं है। आप सारे विचारों को फैला कर देख लें, वे कहीं से आए होंगे। जैसे वृक्ष पर आते हैं पक्षी और संध्या बसेरा करते हैं, ऐसे ही विचार मन में आते और निवास करते हैं। आप केवल एक धर्मशाला की तरह हैं, जहां लोग ठहरते हैं और चले जाते हैं।
एक सराय का मुझे स्मरण आता है। एक छोटी सी सराय थी, वहां कुछ लोग आ रहे थे संध्या को ठहरने को। कुछ लोग जिनका काम पूरा हो गया, वे संध्या को विदा हो रहे थे। और एक फकीर उस सराय के बाहर बैठा था और हंस रहा था। एक नया-नया आदमी भीतर सराय में आ रहा था, उसने उस फकीर से पूछा, हंसते क्यों हो? उसने कहा, इस सराय को देख कर मुझे अपने मन का खयाल आ गया, इसलिए हंसी आ गई। ऐसे ही कुछ विचार आते हैं और कुछ चले जाते हैं। और मन केवल सराय है। और कोई भी विचार उसका अपना नहीं है। मन केवल सराय है। वहां ठहरते हैं विचार और चले जाते हैं।
जरा अपने मन को गौर से देखें, तो पता चलेगा, कल जो विचार थे, वे आज नहीं हैं; परसों जो विचार थे, वे आज नहीं हैं; साल भर पहले जो विचार थे, वे आज नहीं हैं; दस साल पहले जो विचार थे, वे आज नहीं हैं; बीस साल पहले जो विचार थे, उनका कोई पता नहीं है। इन पिछले, अगर आप पचास साल जीए हैं, या चालीस साल, या तीस साल, या बीस साल, तो लौट कर देखें, बीस साल में कौन से विचार आपके रहे हैं? विचार आए हैं और गए हैं। और आप केवल सराय हैं, ठहरने की जगह हैं। और फिर भूल से समझ लेते हैं कि मेरे हैं। जैसे ही समझ लेते हैं कि मेरे हैं, वैसे ही विचार को पकड़ मिल जाती है और दीवाल बननी शुरू हो जाती है।
पहला स्मरण, चित्त की स्वतंत्रता के लिए जरूरी है, जानें कि कोई विचार आपका नहीं है। अगर कोई विचार आपका नहीं है और विचार आते हैं और चले जाते हैं, तो आप कौन हैं

फिर? आप क्या हैं वहां? आप निश्चित ही साक्षी से ज्यादा नहीं हैं। आप निश्चित ही देखने वाले से ज्यादा नहीं हैं। आप वहां केवल एक दर्शक हैं।

लेकिन हम तो नाटक में भी तादात्म्य कर लेते हैं। हम तो फिल्म में भी तादात्म्य कर लेते हैं। वहां फिल्म चलती हो और कोई दुखद चित्र आता हो तो हमारे आंसू बहने लगते हैं। और यह छोटे-मोटे आदमी की बात नहीं है।

बंगाल में एक बहुत बड़े विचारक हुए, ईश्वरचंद्र विद्यासागर। वे तो विद्या के सागर समझे जाते थे। एक छोटा सा नाटक हो रहा था कलकत्ते में। उस नाटक को वे देखने गए। उस नाटक में एक पात्र था, जो एक महिला पर अनाचार करता है, अत्याचार करता है। वह अत्याचार करने लगा, वह उस स्त्री को सताने लगा और विद्यासागर इतने गुस्से में आ गए कि उठ कर उन्होंने अपना जूता निकाला और उसको मार दिया, नाटक में! और वे विद्या के सागर समझे जाते थे। उन्होंने जूता मार दिया उठ कर उसे। वह जो अभिनेता था, उनसे ज्यादा समझदार रहा होगा। उसने जूते को लिया और नमस्कार किया और उसने कहा कि मैं सफल हो गया। इतने बड़े आदमी ने भी धोखा खा लिया। उसने कहा, यह मेरा पुरस्कार जीवन का हुआ। इससे बड़ा पुरस्कार मुझे कभी नहीं मिला। यानी मेरे अभिनय की कुशलता सफल हो गई।

बाद में बहुत घबड़ाए विद्यासागर और कहने लगे, यह क्या भूल मुझसे हो गई! लेकिन मैं भूल ही गया कि यह मामला नाटक का है और मैंने तादात्म्य कर लिया।

इस जीवन में विचार के तल पर भी हम दर्शक से ज्यादा नहीं हैं, लेकिन हम विचार से तादात्म्य कर लेते हैं। वे जो विचार मन के पर्दे पर आते और जाते हैं, उनके हम सिर्फ साक्षी हैं।

खयाल करें, रात आपने स्वप्न देखे, सुबह आप उठे, आप कहते हैं कि स्वप्न आए और गए। फिर आपने दिन देखा। आप बच्चे थे, आपने बचपन देखा। फिर युवा हुए। फिर बूढ़े हुए। जरा खयाल करें कि आपके भीतर कौन सा तत्व शाश्वत पूरे वक्त मौजूद है? सतत मौजूद है?

सिवाय देखने वाले के और कोई मौजूद नहीं है। बाकी सब आता है और चला जाता है। बचपन आता है, चला जाता है; जवानी आती है, चली जाती है; बुढ़ापा आता है, चला जाता है। जन्म होता है, मृत्यु हो जाती है; सुख आते हैं, दुख आते हैं; धूप आती है, छाया आती है; सम्मान आता है, अपमान आता है। लेकिन ये सारी चीजें आती हैं और जाती हैं। पूरे जीवन में कौन सा तत्व है जो न आता है और न जाता है? वह सिर्फ देखने वाले के सिवाय और कोई दूसरा तत्व नहीं है। वह जो इन सबको देखता है। वह जो देखता है कि धूप आई, जो देखता है कि धूप गई; जो देखता है कि युवा हुआ, जो देखता है कि बूढ़ा हो गया; जो देखता है कि एक विचार आया, जो देखता है कि दूसरा विचार गया। एक देखने वाले सूत्र के सिवाय आपके भीतर बाकी सब आता है और जाता है। बाकी कोई तत्व

टिकता नहीं है। हां, एक चीज टिकी रहती है, वह है देखने की शक्ति और देखने की क्षमता और वह द्रष्टा होने का, वह साक्षी होने का भाव।

विचार के तल पर साक्षी हो जाएं। विचार को देखें, पकड़ें नहीं। विचार को बांधें नहीं, देखें। मात्र साक्षी होकर देखें।

लेकिन हम साक्षी नहीं हो पाते, क्योंकि हमने मान रखा है कि कुछ विचार बुरे हैं और कुछ अच्छे हैं। इसलिए हम अच्छे को पकड़ना चाहते हैं, बुरे को धक्का देना चाहते हैं। इसलिए हम साक्षी नहीं हो पाते। अच्छे और बुरे का जो भेद करता है, वह साक्षी नहीं हो सकता। जो अच्छे-बुरे का भेद करता है विचार में कि यह विचार अच्छा है, तो जो अच्छा है उसे पकड़ना चाहता है और जो बुरा है उसे हटाना चाहता है।

विचार केवल विचार है। विचार न अच्छा होता है, न बुरा होता है, विचार न अच्छा होता है, न बुरा होता है। विचार केवल विचार है। जैसे ही हमने अच्छा और बुरा कहा, वैसे ही हम एक को पकड़ने और दूसरे को छोड़ने में लग जाएंगे। और जो एक को पकड़ेगा और दूसरे को छोड़ेगा, वह समझ ले, अच्छे और बुरे जिन्हें हम कह रहे हैं, वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो अच्छे को पकड़ेगा, बुरा भी बच जाएगा; और जो बुरे को धकाएगा, तो अच्छा भी धकेगा। वे दोनों संयुक्त हैं।

विचार संयुक्त है। और इसीलिए जिसको हम अच्छा आदमी कहते हैं, आप यह मत सोचें कि उसके भीतर बुरे विचार नहीं हैं। उसके भीतर बुरे विचार हैं। ऐसा अच्छा आदमी आप नहीं खोज सकते जिसके भीतर बुरे विचार न हों और ऐसा बुरा आदमी भी नहीं खोज सकते जिसके भीतर अच्छे विचार न हों। हां, ऐसा आदमी जरूर होता है जिसके भीतर विचार ही न हों। वह बिलकुल अलग बात है। वह बिलकुल अलग बात है। उसके बाबत मैं नहीं अभी चर्चा कर रहा। ऐसा आदमी होता है जिसके भीतर विचार ही न हों। वह न अच्छा है, न बुरा है। वह तो आदमी के भी ऊपर गया। वह अच्छाई और बुराई के ऊपर गया। उसको मैं साधु कहता हूं। उसने ही जाना। जो अच्छे को पकड़ता है, वह स्मरण रखे, अभी बुरा उसके भीतर रहेगा।

इसलिए आप यह जान कर हैरान होंगे, जो सज्जन है वह स्वप्न में वह काम करता है, जो दुर्जन दिन में जागने में करता है। क्योंकि बुरा विचार उसके भीतर है। जो दुर्जन जागने में करता है, सज्जन सपने में करता है। और आप बहुत हैरान होंगे जान कर कि बुरे आदमी बुरे सपने नहीं देखते; अच्छे आदमी बुरे सपने देखते हैं। बुरे आदमी अच्छे सपने देखते हैं। बुरे आदमी साधु होने के सपने देखते हैं और अच्छे आदमी असाधु होने के सपने देखते हैं। जिसको उन्होंने होश में पकड़ा है और जिसको धकाया है, वह बेहोशी में वापस लौट आता है। वह तो मौजूद था, लेकिन होश में आप उसे प्रकट नहीं होने देते थे। वह बेहोशी में प्रकट होता है।

अगर दुनिया के सज्जन लोगों का मन खोल कर रखा जाए, तो जितने पाप वे लोग करते हैं जो कि जेलखानों में बंद हैं, उतने पाप वे भी मन में करते हैं। उसमें कोई बहुत भेद नहीं है।

वे सारे के सारे वे ही पाप जो दुर्जन करता है, वे सज्जन भी करते हैं। वे मन में ही करते हैं, दुर्जन बाहर कर देता है। और वे सारी अच्छी बातें जो सज्जन करता है, उनकी कल्पना दुर्जन भी करते रहते हैं। उनके सपने वे भी देखते रहते हैं। वे दोनों ही पहलू साथ ही रहते हैं। कोई अच्छा आदमी ऐसा नहीं होता कि उसकी पीठ के साथ बुरा आदमी न जुड़ा हो। और कोई बुरा आदमी ऐसा नहीं होता कि उसकी पीठ के पास ही अच्छा आदमी न खड़ा हो। जिसे हम दबा देते हैं, वह पीछे दब जाता है; जिसे उभार लेते हैं, वह ऊपर निकल आता है। जैसे सिक्के का चेहरा हम ऊपर कर लें, तो पीठ नीचे चली जाती है; और पीठ ऊपर कर लें, तो सिक्के का चेहरा नीचे चला जाता है। वैसे ही अच्छा और बुरा एक ही विचार के दो पहलू हैं।

जिसको साक्षी होना है और जिसे सत्य को जानना है, उसे समस्त विचार को मात्र विचार समझना होगा। न कोई अच्छा है, न कोई बुरा है। क्योंकि जैसे ही हमने यह तय किया कि कुछ अच्छा है और कुछ बुरा है, वैसे ही हम एक को पकड़ने में, दूसरे को हटाने में लग जाएंगे और साक्षी नहीं रह सकेंगे। साक्षी होने के लिए जरूरत है कि हम निष्पक्ष हों। हमारी कोई धारणा न हो; हमारी कोई कामना न हो; हमारी कोई कल्पना न हो; हम कुछ आरोपित न करना चाहते हों। विचार जैसे हैं, हम उनको वैसे ही देखने को राजी हों। और यह आश्चर्यजनक तत्व है कि अगर आप विचार के मात्र साक्षी हो जाएं, निर्णय न लें, अच्छा-बुरा न सोचें, कंडेमनेशन न करें, किसी विचार की निंदा और किसी की प्रशंसा न करें, तो आप बहुत हैरान हो जाएंगे--इस भांति जो मात्र साक्षी की तरह चुप, मौन देखता रह गया है, वह धीरे-धीरे पाता है कि विचार विलीन हो गए, विचार शून्य हो गए। उसके चित्त के द्वार पर विचार आने बंद हो जाते हैं जो उनके प्रति समस्त राग के संबंध छोड़ देता है।

समस्त राग के संबंध से अर्थ है: उनके प्रति प्रेम भी छोड़ देता है और उनके प्रति घृणा भी छोड़ देता है। वे दोनों ही राग के संबंध हैं। और जिसको हम प्रेम करते हैं, वह भी हमारे द्वार आता है; और जिसको हम घृणा करते हैं, वह भी हमारे द्वार आता है। मित्र भी हमको घेरे रहते हैं और शत्रु भी हमको घेरे रहते हैं। एक बार मित्र चाहे न भी घेरें, लेकिन शत्रु जरूर घेरे रहते हैं। वे हमारे चित्त में घूमते ही रहते हैं।

अगर कोई आदमी समझ ले कि धन बुरा है, इसका विचार बुरा है, तो वह पाएगा कि चौबीस घंटे धन का विचार ही उसको घेरे हुए है। अगर कोई आदमी समझ ले कि भोजन बुरा है और करना ठीक नहीं है, तो उसका विचार, भोजन का विचार ही उसे घेरे रहेगा। कोई आदमी समझ ले कि सेक्स पाप है, काम पाप है और उससे लड़ने लगे, तो वह पाएगा कि चौबीस घंटे उसका चित्त उसी विचार से घिरा हुआ है। जिस विचार से आप लड़ते हैं, वही विचार आपका आमंत्रण स्वीकार कर लेता है। जिससे आप लड़ते हैं, वही आने लगता है। मन का नियम है: जिससे लड़ेंगे, वही आमंत्रित हो गया। जिसको आपने धक्का दिया, वह आपके धक्का देने के कारण ही आना शुरू हो जाएगा।

इसलिए विचार से न तो लड़ना है, न विचार को स्वीकार करना है। न उसे पकड़ना है, न धक्के देना है। विचार को मात्र देखना है।

बड़े साहस की जरूरत है। क्योंकि बुरा विचार भी आएगा और मन होगा कि धक्का दे दें। और अच्छा विचार आएगा और मन होगा कि पकड़ लें। इस मन की यह जो पकड़ने और धक्का देने की वृत्ति है, इस पर थोड़ा सा बोधपूर्वक, विचारपूर्वक, स्मृतिपूर्वक अगर कोई ध्यान करेगा तो यह वृत्ति धीरे-धीरे शिथिल हो जाती है और आप विचार को देखने में समर्थ हो जाते हैं।

जो व्यक्ति विचार को देखने में समर्थ हो जाता है, वह व्यक्ति विचार से मुक्त होने में समर्थ हो जाता है। जो व्यक्ति विचार को देखने में समर्थ हो जाता है, वह व्यक्ति विचार से मुक्त होने में समर्थ हो जाता है।

हम विचार को देखते ही नहीं। हम कभी रुक कर, ठहर कर देखते नहीं कि वहां क्या चल रहा है? आपने शायद ही कभी देखा हो कि आधा घंटा बैठ कर आपने देखा हो कि क्या आपके भीतर चल रहा है? वह चल रहा है और आप भी चले जा रहे हैं; वह चल रहा है और आप भी काम किए जा रहे हैं; वह चल रहा है, आप खाना खा रहे हैं; वह चल रहा है, आप दुकान जा रहे हैं; वह चल रहा है, आप लिख रहे हैं, बोल रहे हैं; वह चल रहा है, मैं बोल रहा हूं, आप सुन रहे हैं। वह भीतर आपके चले जा रहा है। वह अलग ही चलता जा रहा है। धीरे-धीरे आपने उसकी फिकर ही छोड़ दी है कि भीतर क्या चल रहा है। आप अपना किए चले जा रहे हैं। इसलिए आप करीब-करीब सोए हुए आदमी हैं। भीतर मन कुछ और कर रहा है, आप कुछ और किए चले जा रहे हैं। आप अनुपस्थित आदमी हैं। आप अपने प्रति उपस्थित नहीं हैं। आप अपने प्रति जागे हुए नहीं हैं।

महावीर से किसी ने एक दिन पूछा, साधु कौन है? तो महावीर ने कहा, असुत्ता मुनि। जो सोया हुआ नहीं है, वह साधु है। पूछा, असाधु कौन है? उन्होंने कहा, सुत्ता अमुनि। जो सोया है, वह असाधु है। बहुत अदभुत, बहुत अदभुत सूत्र है। जो सोया है।

तो हम सारे लोग सोए हुए हैं। हम, भीतर क्या चल रहा है, उसके प्रति बिलकुल सोए हुए हैं। और वह भीतर ही हमारा असली होना है। हम उसके प्रति सोए हुए हैं। बाहर क्या चल रहा है, बाहर क्या हो रहा है, उसके प्रति जागे हुए हैं। जो बाहर चल रहा है, उसके प्रति जागे हैं; जो भीतर चल रहा है, उसके प्रति सोए हैं--यही जीवन का दुख और यही जीवन का अज्ञान है और यही जीवन की परतंत्रता और यही उसका बंधन है।

उसके प्रति जागना होगा जो भीतर चल रहा है। तो वह विचार की समस्त धारा के प्रति जो जागेगा, देखेगा, समझेगा, साक्षी होगा, वह एक बड़े अदभुत अनुभव से गुजरता है। उसे अनुभव में आना शुरू होता है: जिन-जिन विचारों का वह विराग-शून्य साक्षी हो जाता है, वे-वे विचार आने बंद हो जाते हैं। जिस-जिस विचार को वह देखने में समर्थ हो जाता है, वह-वह विचार आने में असमर्थ हो जाता है। और एक घड़ी आती है कि विचार नहीं रह जाते। और तब जो शेष रह जाता है, उसका नाम विवेक है। एक घड़ी आती है कि कोई विचार नहीं

होता और आप होते हैं। तब जो आपके भीतर जाग गया है, वह मुक्त विवेक है, वह स्वतंत्र हुआ विवेक है। यही स्वतंत्र विवेक सत्य को जानने में समर्थ होता है। परतंत्र विवेक सत्य को जानने में असमर्थ होता है।

स्वतंत्रता पहली भूमिका है। यह स्वतंत्रता साधनी ही होगी। इसे साधे बिना कभी कोई सत्य के संबंध में कोई गति नहीं होगी। कितने ही शास्त्र पढ़ें, कितना ही समझें, कितने ही सिद्धांत याद कर लें। शब्द ही याद हो जाएंगे, और कुछ भी नहीं होगा। और शब्द मस्तिष्क को भर लेंगे। और बहुत शब्द किसी ज्ञान का लक्षण नहीं हैं। शब्द तो पागल में भी बहुत होते हैं। आपसे ज्यादा होते हैं। लेकिन शब्द कोई ज्ञान का लक्षण नहीं हैं। और यह भी आप निश्चित समझें, बहुत शब्द बढ़ जाएं तो आप भी पागल हो सकते हैं। पागल में और सामान्य हममें कोई बहुत भेद नहीं है। हममें शब्द थोड़े अभी कम हैं, उसमें थोड़े और ज्यादा हो गए।

हर आदमी पागलपन के किनारे पर खड़ा रहता है। जरा सा ही धक्का और पागल हो सकता है। शब्द अगर और जोर से घूमने लगें, तो वह पागल हो जाएगा। अभी मनोवैज्ञानिक यह कहते हैं कि हर तीन आदमी में एक आदमी तो करीब-करीब पागल होने की हालत में है। हर तीन आदमी में! यहां जितने लोग हैं, उनमें से एक तिहाई तो पागल होने की हालत में हैं। और आप यह मत सोचना कि आपका पड़ोसी इस हालत में है, क्योंकि यह इस बात का लक्षण है कि आप गड़बड़ हैं। अगर आपको यह खयाल आ जाए कि मेरा पड़ोसी गड़बड़ हालत में है, तो आप समझना कि आप गड़बड़ हालत में हैं। क्योंकि यह, पागल कभी यह नहीं समझ पाता कि वह पागल है। वह हमेशा समझता है कि दूसरे पागल हैं। यानी पागल का एक अनिवार्य लक्षण यह है कि वह हमेशा यह समझता है कि दूसरे लोग पागल हैं। पागल को आप समझा नहीं सकते कि वह पागल है। क्योंकि अगर इतना ही वह समझ जाए तो सबूत हो गया कि वह पागल नहीं है। हम करीब-करीब उस हालत में पहुंचते जा रहे हैं।

अमरीका में इस समय कोई पंद्रह लाख आदमी रोज अपने मस्तिष्क के बाबत सलाह लेते हैं, कि उनका दिमाग कुछ गड़बड़ है। ये तो सरकारी आंकड़े हैं उनके। और पंद्रह लाख अंदाज है कि व्यक्तिगत, प्राइवेट डाक्टर से सलाह लेते होंगे। ये कोई तीस लाख आदमी रोज सलाह ले रहे हैं। और काहे की सलाह ले रहे हैं ये? कि विचार बहुत ज्यादा हैं। और धीरे-धीरे तो इतना ज्यादा होता जा रहा है कि उनका काबू छूटा जा रहा है। अब वे क्या करेंगे, उनकी कुछ समझ में नहीं पड़ रहा है। उनके विचार की गति इतनी तीव्र होती जा रही है कि उनका अपने जीवन पर से काबू छूटा जा रहा है।

आप भी विचार करें, आप भी खयाल करें, क्या विचार इतना तीव्र है? दस मिनट बैठ जाएं और जो भी विचार मन में आए उसे लिखें, ईमान से। उसमें से एक भी न छोड़ें। जो भी आए, आधा आए तो आधा लिखें, पूरा आए तो पूरा। एक दस मिनट एक कागज पर लिखें और फिर किसी को उसे दिखाएं। तो वह कहेगा, यह किस पागल ने लिखा है? किसी को भी दिखा लें फिर। वह आपसे कहेगा, यह किस पागल ने लिखा है? असल में आपको खुद ही

समझ में आएगा कि यह किस पागल ने लिखा है? जो आपके भीतर चल रहा है, अगर दस मिनट उघाड़ कर देखा जा सके, तो आप खुद ही घबड़ा जाएंगे कि मैं कैसा पागल हूं! यह क्या चल रहा है? यह क्या मेरे भीतर हो रहा है?

लेकिन हम कभी रुक कर देखते नहीं कि वहां क्या भीतर हो रहा है। और हम समझते हैं कि हम बहुत विचारशील हैं। सभी पागल ऐसा समझते हैं। और इसलिए, आपको यह पता हो कि जो विचारक अति विचार में पहुंच जाते हैं, वे पागल हो जाते हैं।

अभी यूरोप में पिछले पचास सालों में जो बड़े-बड़े विचारक थे, वे करीब-करीब सभी पागल हुए। कोई साल भर पागलखाने में था, कोई दो साल पागलखाने में था। मुझे तो ऐसा लगने लगा कि अब जो और दूसरे विचारक पागल नहीं हुए, वे जरूर कुछ थोड़े कम विचारक होंगे। एक वक्त आ जाएगा कि जो विचारक पागलखाने होकर न आया हो, हम समझेंगे कि कुछ छोटी कोटि का विचारक है। ठीक भी है। विचार की अंतिम परिणति पागलपन है, विक्षिप्तता है, मैडनेस है। इसलिए महावीर को, बुद्ध को मैं विचारक नहीं कहता हूं। वे विचारक नहीं हैं। वे ज्ञानी हैं। ज्ञानी और विचारक में जमीन-आसमान का फर्क है। वे जानते हैं, वे विचार नहीं करते। और जो नहीं जानता, वही केवल विचार करता है। अभी मैं यहां बैठा हूं, सभा खत्म होगी, हम सब उठेंगे और दरवाजों से निकल जाएंगे। कोई विचार नहीं करेगा कि दरवाजा कहां है? क्योंकि दरवाजा हमें दिखाई पड़ रहा है। एक अंधा आदमी यहां बैठा हो। जैसे ही सभा खत्म होगी, वह सोचेगा, कहां से जाऊं? कहां दरवाजा है? कहां दीवाल है? वह विचार करेगा। जो देख सकता है, वह विचार नहीं करता। जो नहीं देख सकता, वह विचार करता है। विचार अज्ञान का लक्षण है, ज्ञान का लक्षण नहीं है। तो जितना ज्यादा विचार आप करते हैं, समझें कि उतना गहन अज्ञान है। ज्ञान उत्पन्न हो तो विचार क्षीण हो जाएगा, शून्य हो जाएगा।

मैंने कहा कि विचार को देखें और उसको क्षीण होने दें, शून्य होने दें। सजग होने से विचार शून्य होता है। साक्षी होने से विचार शून्य होता है। और जब विचार शून्य हो जाता है तो विवेक मुक्त होता है। फिर वह विवेक शास्त्र को नहीं, सिद्धांत को नहीं, सत्य को जानने में उसकी गति हो जाती है। स्वतंत्र विवेक छोड़ देता है किनारा और अनंत सागर में प्रवेश करता है।

एक छोटी सी कहानी और अपनी चर्चा को मैं पूरा करूंगा।

एक रात कुछ मित्र मौज में थे और उन्होंने कहीं जाकर खूब शराब पी और फिर वे सोचे कि चांद पूरा है, रात बहुत सुंदर और रम्य, हम चलें और चल कर झील में यात्रा करें। वे गए और वे एक नाव पर बैठे और यात्रा शुरू की। उन्होंने पतवारें उठाईं और पतवारें चलाईं। और वे रात के बहुत आखिरी पहर तक नाव चलाते रहे। फिर सुबह की ठंडी हवाएं आने लगीं और चांद डूबने को होने लगा। ठंडी हवाओं ने उनके नशे को उखाड़ दिया। उनमें से कुछ लोग ताजे हुए और उन्होंने कहा, हम बहुत दूर निकल आए, अब वापस लौटें, क्योंकि घर पहुंचते-पहुंचते दोपहर हो जाएगी। इतने दूर निकल आए हैं किनारे से। उन्होंने सोचा कि चल

कर नीचे देखें कि हम कितने दूर आ गए हैं! वे नीचे गए और वे हैरान हो गए। वे कहीं भी नहीं गए थे। नाव वहीं खड़ी थी, क्योंकि वे जंजीर खोलना भूल गए थे। वह जंजीर वहीं बंधी थी। वह नाव की जंजीर वहीं बंधी थी। उन्होंने पतवार बहुत चलाई, लेकिन वे कहीं पहुंच नहीं सके और वे बहुत हैरान हुए। उन्होंने कहा, हम व्यर्थ रात भर परेशान हुए और बड़ा सोचते रहे कि बड़ी यात्रा हो रही है। हम तो वहीं के वहीं खड़े हैं।

जिसका विचार, विवेक मुक्त होना चाहता है, उसे विश्वास के किनारे से जंजीर को खोल लेना होगा। और जिसकी विश्वास से कहीं जंजीर बंधी है, वह स्मरण रखे, सत्य के जगत में उसकी कोई यात्रा नहीं हो सकती। वह कहीं नहीं पहुंचेगा। अंतिम जीवन में वह पाएगा, जहां से शुरू किया था, मां-बाप ने जो विश्वास दे दिए थे, वह वहीं खड़ा हुआ है। यात्रा व्यर्थ गई। पतवार चलाना व्यर्थ हुआ। श्रम व्यर्थ गया। मां-बाप ने जो विचार दे दिए थे और समाज ने जो विचार दे दिए थे, उन्हीं विश्वासों पर वह खड़ा है मरते वक्त। ऐसे आदमी का जीवन दुर्भाग्य है। उसकी यात्रा व्यर्थ हो गई। वह नाव की जंजीर को किनारे से खोलना भूल गया।

किनारे से खोल लें अपनी जंजीर को। समाज ने जो दिया है, किसी दूसरे ने जो दिया है, उससे अपनी जंजीर को खोल लें और विवेक को मुक्त होने दें। मुक्त विवेक ही परमात्मा तक ले जाने का पंख बनता है और बंधे हुए विचार और विश्वास परमात्मा से रोकने वाली जंजीरें हो जाते हैं। हम सब जंजीरों में बंधे हैं। यह सारी दुनिया जंजीरों में बंधी है। इन जंजीरों में बंधे होने के कारण परमात्मा का अनुभव नहीं हो पाता। साहस करें और जंजीरों को छोड़ दें और फिर देखें कि आपकी नाव कहां जाती है!

रामकृष्ण का एक अंतिम वचन कहूंगा। रामकृष्ण ने कहा है कि तू अपनी नाव तो खोल, अपनी नाव के पालों को तो उड़ा, परमात्मा की हवाएं तुझे हमेशा अनंत में ले जाने को तैयार हैं। तू अपनी नाव तो खोल, अपने पालों को तो उड़ा, और परमात्मा की हवाएं तुझे अनंत में ले जाने को हमेशा तैयार हैं।

धन्य हैं वे लोग, जो अपनी नाव खोल लेते हैं और अपने पाल खोल देते हैं। और अभागे हैं वे लोग, जो कहीं अपनी नाव को बांधे रखते हैं और श्रम करते हैं और अंत में असफल हो जाते हैं।

अंत में मैं यही प्रार्थना करूं कि प्रभु आपको भी वैसी सामर्थ्य और साहस दे कि आपकी नाव खुल सके किनारे से विश्वास के और ज्ञान के अनंत सागर में उसका प्रवेश हो सके। जो हिम्मत करते हैं, परमात्मा उनके साथ है। और जो कमजोर हैं और रुके रह जाते हैं, परमात्मा भी उनके लिए क्या कर सकता है? इतनी ही थोड़ी सी बातें कहूंगा और धन्यवाद दूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। मेरे प्रणाम अपने भीतर परमात्मा के लिए स्वीकार करें।

कोई मानसिक दासता और गुलामी न हो; कोई बंधे हुए रास्ते, बंधे हुए विचार और चित्त के ऊपर किसी भांति के चौखटे और जकड़न न हों, यह पहली शर्त मैंने कही, सत्य को जिसे खोजना हो उसके लिए। निश्चित ही जो स्वतंत्र नहीं है, वह सत्य को नहीं पा सकेगा। और परतंत्रता हमारी बहुत गहरी है। मैं उस परतंत्रता की बातें नहीं कर रहा हूं, जो राजनैतिक होती है, सामाजिक होती है, या आर्थिक होती है। मैं उस परतंत्रता की बात कर रहा हूं, जो मानसिक होती है। और जो मानसिक रूप से परतंत्र है, वह और चाहे कुछ भी उपलब्ध कर ले, जीवन में आनंद को और कृतार्थता को, आलोक को अनुभव नहीं कर सकेगा। यह मैंने कल कहा।

चित्त की स्वतंत्रता पहली भूमिका है। आज सुबह दूसरी भूमिका पर आपसे कुछ विचार करूं।

दूसरी भूमिका है--चित्त की सरलता।

पहली भूमिका है: चित्त की स्वतंत्रता।

दूसरी भूमिका है: चित्त की सरलता।

जिनके चित्त जटिल हैं, उलझे हुए हैं, द्वंद्वग्रस्त हैं, वे भी सत्य को जानने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। और हमारे चित्त सरल बिलकुल नहीं हैं। हमारे चित्त बहुत जटिल, बहुत उलझे हुए, बहुत द्वंद्वग्रस्त, बहुत विरोधाभासों से भरे, बहुत अराजक हैं। चित्त की यह जटिलता भी बाधा है। क्योंकि जो अपने भीतर उलझा है, वह बाहर आंख कैसे खोल सकेगा? जो अपने भीतर बहुत व्यस्त है और संघर्ष में है, वह सत्य के प्रति उन्मुख कैसे हो सकेगा? जो अपने से लड़ रहा है और अपने ही भीतर खंडित है, वह अखंड को कैसे जान सकेगा?

हम सारे लोग खंडित हैं। अपने ही भीतर बहुत खंडों में विभाजित हैं। और वे सब खंड भी एक-दूसरे के विरोध में खड़े हैं।

क्राइस्ट एक गांव में एक दफा गए। एक युवक उनसे मिलने आया। उस युवक से क्राइस्ट ने पूछा कि तेरा नाम क्या है? इसके पहले कि मैं तुझे कुछ बताऊं, मैं तुझसे पूछ लूं कि तेरा नाम क्या है?

उस युवक ने कहा, माइ नेम इज़ लीजियन। मेरे तो हजार नाम हैं, मैं कौन सा नाम बताऊं? उस युवक ने कहा कि मेरे तो हजार नाम हैं, मैं कौन सा नाम बताऊं?

क्राइस्ट ने कहा, कम से कम तूने एक सत्य तो कहा। दूसरे लोग तो अपना एक ही नाम बताते हैं, जब कि उनके भीतर हजार-हजार आदमी होते हैं।

हर आदमी के भीतर बहुत से आदमी हैं। आप एक भीड़ हैं। आपके भीतर कोई व्यक्ति नहीं है। आप कोई इंडिविजुअल नहीं हैं। आपके भीतर तो एक भीड़ भरी हुई है।

महावीर ने कहा है: मनुष्य बहुचित्तवान है। हम साधारणतः सोचते हैं कि एक ही चित्त है हमारे पास। महावीर कहते हैं, बहुचित्तवान है। अभी आधुनिक खोजें भी कहती हैं, मनुष्य पोलीसाइकिक है। उसमें बहुत से मन एक ही साथ हैं। और आप खुद विचार करें तो दिखाई पड़ेगा, बहुत से चित्त हैं आपके पास। जब आप क्रोध में होते हैं, तो क्या आपके पास वही

चित्त है जब आप बाद में पश्चात्ताप करते हैं? पश्चात्ताप करने वाला चित्त बिलकुल दूसरा है; क्रोध करने वाला चित्त बिलकुल दूसरा है। इसीलिए आप बार-बार पश्चात्ताप करते हैं और फिर बार-बार क्रोध करते हैं। जिस चित्त ने पश्चात्ताप किया, उसकी आवाज उस चित्त तक नहीं पहुंची, जो कि क्रोध करता है। अन्यथा, अन्यथा क्रोध बंद हो गया होता। एक ही भूल आप हजार बार करते हैं। और भूल को करने के बाद पछताते हैं, दुखी होते हैं, निर्णय लेते हैं कि अब यह भूल नहीं करूंगा। अगर आप एक ही आदमी होते, आपके भीतर एक ही मन होता, तो निर्णय पूरा हो जाता। लेकिन आपके भीतर बहुत मन हैं। जो मन निर्णय करता है, वह मन अलग है; और जो मन क्रिया करता है, वह मन अलग है। इसलिए आपके निर्णय निर्णय रहे आते हैं और जीवन जैसा है वह वैसा ही चलता जाता है। रात्रि आप तय करके सोते हैं कि सुबह चार बजे उठ आऊंगा; पूरे मन से निर्णय करते हैं कि मैं सुबह चार बजे उठूंगा। सुबह चार बजे कोई आपके भीतर कहता है, पड़े रहो; क्या फायदा है, सर्दी है। आप सो जाते हैं। सुबह उठ कर पछताते हैं और सोचते हैं, यह कैसे हुआ? मैंने तय किया था कि उठूंगा, फिर उठा नहीं। कल जरूर उठूंगा। कल आप फिर पाते हैं, आपके भीतर कोई कह रहा है, क्या फायदा उठने का, सर्दी बहुत है, सोए रहो। यह मन क्या वही है जिसने निर्णय किया था? या कि कोई दूसरा है?

आपका मन बहुत खंडों में विभाजित है। उसमें बहुत टुकड़े-टुकड़े हैं। और इन टुकड़ों के कारण आपके भीतर एक जटिलता पैदा हो जाती है। जिसका मन एक नहीं है, वह जटिल होगा ही। और जटिलता अनंत गुना हो जाती है, क्योंकि एक मन दूसरे मन के विरोध में है।

थोड़ा विचार करें। आपने अपने ही हाथ से ये विरोध खड़े कर लिए हैं। शिक्षा और संस्कार ने मन को खंड-खंड कर दिया है। उसकी अखंडता नष्ट हो गई है। उसका इंटीग्रेशन नहीं है। आप कहते हैं कि आप एक आदमी हैं, क्योंकि आपका एक ही नाम है, एक ही लेबल है। सारे लोग जानते हैं कि आप एक ही आदमी हैं। अपने भीतर खोजें, तो आपको बहुत आदमी वहां मिलेंगे। आपके विरोध में, आपसे भिन्न, अनेक-अनेक आवाजें आपको भीतर सुनाई पड़ेंगी। क्या कभी आपने खयाल किया है? कई बार आप कहते हैं कि मैंने अपने बावजूद ऐसा काम किया। इंस्पाइट ऑफ माइसेल्फ! एक आदमी किसी को क्रोध में मार देता है और बाद में कहता है, मैंने अपने बावजूद मार दिया। यह कैसे पागलपन की बात है? अपने बावजूद कैसे मार सकते हैं, अगर आपके भीतर आपसे विरोधी भी मौजूद न हों?

आपने अनेक बार अनुभव किया होगा, क्रोध जब मैंने किया तो मैं मौजूद ही नहीं था। आपने अनेक बार अनुभव किया होगा, जब मैं वासना से भर गया तो मैं मैं ही नहीं था, न मालूम कौन हो गया था। क्रोध में क्या आप वही होते हैं जो आप शांति में हैं? प्रेम में क्या आप वही होते हैं जो आप घृणा में हैं? नहीं आप होते। आपके चेहरे बदल जाते हैं। आपके भीतर कोई चीज बदल जाती है। आपके भीतर बहुत सी भीड़ है मन की, बहुत से टुकड़े हैं। कोई एक टुकड़ा आपको पकड़ लेता है और आप एक काम कर जाते हैं। उस टुकड़े के हटने के बाद, जैसे कि गाड़ी का चाक घूमता है और उसके आरे, कभी कोई एक आरा ऊपर होता

है, कभी कोई नीचे हो जाता है, और आरे बदलते रहते हैं, स्पोक्स बदलते रहते हैं, वैसे ही आपका चित्त है। उसमें बहुत चित्त हैं। कोई चित्त ऊपर होता है, कभी कोई नीचे होता है और इससे जटिलता पैदा हो जाती है।

सरल तो केवल वही हो सकता है जिसके पास एक मन हो। वह तो जटिल होगा ही जिसके पास अनेक मन हैं। और ये अनेक मन भी ऐसे हैं कि इनमें एक-दूसरे का किसी को पता ही नहीं है। यह इसी बात से आपको पता चलेगा कि आपके संकल्प सब अधूरे रह जाते हैं। क्योंकि जो मन संकल्प करता है, वह मन पूरे करते वक्त मौजूद ही नहीं होता।

आपने कितनी बार तय नहीं किया होगा--मैं सत्य बोलूं। समय आता है और आप पाते हैं कि आप असत्य बोल रहे हैं। कितनी बार तय किया है कि मैं सबको प्रेम करूं, और समय आता है और आप पाते हैं कि आप घृणा कर रहे हैं। कितनी बार तय किया है कि सब मेरे मित्र हों, लेकिन आप पाते हैं, समय आता है और अनेक आपके शत्रु प्रतीत होने लगते हैं। आप ही तय करते हैं, आप ही निर्णय करते हैं, फिर इसका विरोध कैसे उठ आता है? जो विरोध उठ आता है, वह आपके भीतर मौजूद है। जिनको आप श्रद्धा करते हैं, उनके ही प्रति मन में अपमान का भाव भी लिए होते हैं। जिनको आप प्रेम करते हैं, उन्हीं को आप घृणा भी करते रहते हैं। जिनको आप सम्मान देते हैं, उनका ही अपमान करने की इच्छा भी मन में बनी रहती है। एक ही साथ आपके भीतर विरोध चलता रहता है। इसलिए आप प्रेमियों को निरंतर लड़ते देखेंगे। उन्हीं को प्रेम करते हैं; उन्हीं से लड़ते हैं; उन्हीं को घृणा भी करते हैं। मित्रों को भी आप देखेंगे; श्रद्धालुओं को भी आप देखेंगे। हमारा एक चित्त का हिस्सा जो करता है, उसके ही विरोध में हमारे चित्त के दूसरे हिस्से खड़े रहते हैं। इसीलिए प्रेम जरा सी देर में घृणा में बदल जाता है।

मैं अभी वहां दिल्ली था। किसी ने मुझसे कहा कि जिसको हम प्रेम करते हैं, उसको तो हम प्रेम ही करते हैं। यह आप कैसे कहते हैं?

मैंने उनसे कहा कि समझ लें कि आप अपनी पत्नी को प्रेम करते हैं। और कल आपको पता चल जाए कि आपकी पत्नी किसी और को प्रेम करती है, फिर क्या होगा? उसी क्षण आपका प्रेम घृणा में बदल जाएगा। और प्रेम क्या कभी घृणा में बदल सकता है? यह तो असंभव है। असल में घृणा भीतर छिपी बैठी थी। ऊपर प्रेम था, पीछे घृणा थी। अगर प्रेम का अवसर निकल गया, प्रेम हट जाएगा, घृणा ऊपर आ जाएगी।

एक फकीर हुई है। राबिया नाम की एक स्त्री हुई। एक अदभुत फकीर औरत हुई। उसने कुरान में पढ़ा कि एक वचन आता है: शैतान को घृणा करो। उसने उस वचन को काट दिया। फिर हसन नाम का एक दूसरा फकीर यात्रा पर निकला। वह उसके झोपड़े में मेहमान हुआ। सुबह-सुबह उसने कहा कि मैं जरा कुरान पढ़ना चाहूंगा। कुरान पढ़ने दी गई। उसने उसमें देखा कि उसमें तो एक लकीर कटी हुई है!

तो धर्मग्रंथ में संशोधन! पवित्र वचनों में संशोधन! उसने कहा, यह किस पागल ने कुरान में संशोधन कर दिया?

उस राबिया ने कहा, मुझे ही करना पड़ा।

क्यों? यह कैसे किया? और यह ग्रंथ तो अपवित्र हो गया।

राबिया ने कहा कि मैं तो बड़ी मुश्किल में पड़ गई हूं। इसमें लिखा है--शैतान को घृणा करो। मैं अपने भीतर सब तरफ से खोजती हूं, वहां कोई घृणा नहीं है। तो अगर शैतान मेरे सामने आएगा, तो मैं घृणा कैसे कर सकूंगी? आखिर घृणा करने के लिए घृणा होनी चाहिए, मौजूद होनी चाहिए। नहीं तो आएगी कहां से? जिस कुएं में पानी नहीं है, उसमें आप बाल्टियां डालेंगे, तो पानी आएगा कहां से? पानी होगा तो आएगा। तो उस राबिया ने कहा, मेरे भीतर घृणा नहीं है, सिर्फ प्रेम है। परमात्मा हो या शैतान हो, अगर दोनों भी मेरे सामने आकर खड़े हो जाएं, तो मैं मजबूर हूं, मैं प्रेम ही कर सकूंगी। दोनों को बराबर ही प्रेम कर सकूंगी। मेरे भीतर घृणा नहीं है। मैंने बहुत खोजा, वहां कोई घृणा नहीं मिलती।

लेकिन आप अपने प्रेम के भीतर खोजें, तो आपको घृणा मिल जाएगी। वह प्रेम के पीछे ही खड़ी है; वह प्रेम की छाया की भांति ही खड़ी है। जिससे आपकी मित्रता है, उसी के लिए आपके मन में शत्रुता का भाव भी खड़ा हुआ है। जिसको आप सम्मान दे रहे हैं, उसका ही अपमान करने का मन भी आपके पीछे ही खड़ा हुआ है। जिसकी आप प्रशंसा कर रहे हैं, उसकी निंदा करने की वृत्ति भी आपके पीछे ही खड़ी हुई है। ये दोनों विरोधी वृत्तियां हमेशा साथ हों, तो चित्त सरल कैसे होगा? और जो चित्त सरल नहीं है, वह कैसे सत्य को जान सकेगा?

सरलता तो अनिवार्य है। सरलता तो परमात्मा को पाने की अनिवार्य शर्त है। यह जो हमारा चित्त जटिल है, इसे समझ लेना जरूरी है। चित्त की जटिलता को, उसके खंड-खंड होने को, उसके टुकड़े-टुकड़े में बंटे होने को और हमारे व्यक्तित्व के अनेक-अनेक विरोधी अंशों को समझ लेना जरूरी है। जो व्यक्ति अपने भीतर अखंड नहीं हो सकता, वह समझ ले, उसकी कोई प्रार्थना, उसका कोई ध्यान, उसका कोई योग, उसकी कोई पूजा सार्थक नहीं है, सब व्यर्थ है। वह किसी मंदिर में जाए और किसी मस्जिद में जाए और किसी भगवान को प्रणाम करे, उसका कोई अर्थ नहीं है। अखंड हुए बिना कोई अर्थ नहीं है। जब आप एक मंदिर की मूर्ति के सामने सिर झुका रहे हैं, तब भी आपके भीतर अश्रद्धा मौजूद है श्रद्धा के साथ ही; आदर के साथ ही अनादर मौजूद है; विश्वास के साथ ही संदेह मौजूद है।

मैं अपने गांव जाता हूं। मेरे एक वृद्ध शिक्षक हैं। उनके यहां मैं हमेशा जाता था। पीछे एक बार सात-आठ दिन गांव पर रुका, तो उनके घर रोज गया। सुबह-सुबह उनके घर जाता। दूसरे दिन उन्होंने खबर भेजी कि मैं उनके घर न आऊं। मैंने उनके लड़के को पूछा कि उन्होंने ऐसी खबर क्यों भेजी है? तो उसने कहा, उन्होंने एक चिट्ठी भी दी है। उस चिट्ठी पर लिखा था कि मेरे घर आते हो तो मुझे बहुत खुशी होती है, मेरे आनंद का ठिकाना नहीं होता। लेकिन मैं चाहता हूं, मेरे घर मत आओ। क्योंकि कल मैं पूजा करने बैठा, और तुम्हारी बातों का यह परिणाम हुआ, कि मैं जब पूजा करने बैठा तो मुझे यह शक होने लगा कि पता नहीं, यह सब मूर्खता तो नहीं है यह जो मैं कर रहा हूं? यह सब आरती उतारना,

सब यह बालपन तो नहीं है? और जो पत्थर की मूर्ति सामने रखी है, सच में वह पत्थर ही तो नहीं है? और मैं तीस-चालीस वर्षों से पूजा कर रहा हूं और मेरे मन में संदेह आ गया; मैं डर गया। इसलिए मैं प्रार्थना करता हूं कि मेरे घर दुबारा मत आना।

मैंने उनको पत्र लिखा कि मैं अब आऊं या न आऊं, जो होना था वह हो गया। और मैं आपसे यह भी प्रार्थना करता हूं कि संदेह मैंने पैदा नहीं किया है। वह निरंतर चालीस वर्ष आपने पूजा की है, लेकिन पूजा के पीछे वह संदेह खड़ा ही रहा है।

श्रद्धा करने से कहीं संदेह नष्ट हुआ है? श्रद्धा ऊपर से थोप लेंगे, संदेह भीतर खड़ा रहेगा। प्रेम करने से कहीं घृणा नष्ट हुई है? प्रेम ऊपर से दिखाएंगे, भीतर घृणा मौजूद रहेगी। आदर देने से कहीं अनादर का भाव नष्ट हुआ है? आदर ऊपर से थोप लेंगे, भीतर अनादर बना रहेगा और आप जटिल होते चले जाएंगे।

इसलिए मैं उस श्रद्धा को कहता हूं कि छोड़ दें जिसके पीछे संदेह मौजूद है। जिस दिन संदेह विलीन हो जाता है, उस दिन जो शेष रह जाती है, उसका नाम श्रद्धा है। इसलिए मैं उस प्रेम को व्यर्थ कहता हूं जिसके भीतर घृणा छिपी है। जिस दिन घृणा विसर्जित हो जाती है, तब जो शेष रह जाता है, वह प्रेम है। इसलिए उस मित्रता का कोई अर्थ नहीं है जिसके भीतर शत्रु होने की संभावना है। जिस दिन शत्रुता का भाव गिर जाता है, उस दिन जो शेष रह जाता है, वह मैत्री की भावना है। इसलिए उस सुख का कोई मूल्य नहीं है जिसके पीछे दुख बैठा हुआ है। जिस दिन दुख विलीन हो जाता है, तब जो शेष रह जाता है, वही आनंद है। लेकिन हम तो निरंतर विरोध से भरे हैं। जो विरोध से भरा है, उसका चित्त जटिल होगा, कांप्लेक्स होगा। जो विरोध से भरा है, उसका चित्त निरंतर कांफ्लिक्ट में और द्वंद्व में होगा।

और बड़े समझ लेने की बात है, जो चित्त निरंतर द्वंद्व करता है, उस चित्त की ज्ञान की क्षमता क्षीण होती जाती है। क्योंकि जो निरंतर द्वंद्व में लगा है, उसकी संचेतना, उसकी कांशसनेस, उसका बोध निरंतर धीमा और फीका होता जाता है। जो निरंतर लड़ाई में लगा है, वह दिन-रात लड़ते-लड़ते धीरे-धीरे बोथला हो जाता है। उसकी संवेदनशीलता, उसकी सेंसिटिविटी कम हो जाती है। जो निरंतर द्वंद्व में है, वह धीरे-धीरे मंदबुद्धि होता चला जाता है। उसका विवेक विकसित तो नहीं होता, क्षीण होता चला जाता है।

यही वजह है कि बच्चे से बूढ़े का मस्तिष्क वस्तुतः तो ज्यादा तीव्र और विकसित होना चाहिए, लेकिन हम देखते हैं, वह क्रमशः क्षीण होता जाता है। शरीर वृद्ध हो सकता है; मन के वृद्ध होने का कोई कारण नहीं है, अगर मन द्वंद्व में न हो। मन अगर कांफ्लिक्ट में न हो, मन अगर जटिल न हो, खंड-खंड बंटा हुआ न हो, खुद के भीतर ही विरोध से न भरा हो, तो मन के बूढ़े होने का कोई कारण नहीं है। मन बूढ़ा हो जाता है निरंतर द्वंद्व के कारण, निरंतर लड़ते रहने के कारण, निरंतर विरोध से भरे रहने के कारण। अपने ही भीतर जो निरंतर विरोध से भरा है, स्वाभाविक है कि वह धीरे-धीरे उसकी क्षमता, उसकी संवेदनशीलता कम होती जाए, क्षीण होती जाए।

हम निरंतर मन में भी वृद्ध होते जाते हैं। जब कि मन के वृद्ध होने का कोई भी कारण नहीं है। और यह जो हमारा द्वंद्व है, यह जो संघर्ष है, यह जो मन का खंड-खंड होना है, यह हमारे ही कारण है। हम ही इसे खंड-खंड में बांट देते हैं। अपने ही अज्ञान में हम अपने को ही तोड़ लेते हैं। कैसे हम तोड़ लेते हैं, उसको थोड़ा समझें, तो यह भी समझ में आ जाएगा कि सरलता क्या है, मन की सरलता कैसे पैदा होगी।

इसके पहले कि मैं उसके विचार में जाऊं, मैं आपको यह कह दूं, साधारणतः जो कहा जाता है कि फलां आदमी बहुत सरल है या साधारणतः जो हमसे कहा जाता है कि सरल होना चाहिए, उस तरह की सरलता को नहीं कह रहा हूं। साधारणतः हमसे कहा जाता है, हमें सरल होना चाहिए। लेकिन इस सरलता को नहीं कह रहा हूं। क्योंकि इस तरह की जो सरलता है, उसके पीछे जटिलता मौजूद रहती है। एक आदमी सरल होने का ढोंग कर सकता है। एक आदमी सरल होने का ढोंग अनेक रूपों से कर सकता है। वह बहुत अच्छे कपड़े न पहने; वह मोटी खादी के सामान्य सीधे-सादे कपड़े पहन ले। हम कहेंगे, बहुत सरल आदमी है। या वह और भी ज्यादा करे, वह सिर्फ एक लंगोटी लगा ले। हम कहेंगे, और भी सरल आदमी है। या और भी करे, वह नंगा ही हो जाए। तो हम कहेंगे, कितना सरल आदमी है। यह सरलता नहीं है। या एक आदमी दो बार खाना न खाए, एक बार खाना खाने लगे। हम कहेंगे, कैसा सरल आदमी है, एक ही बार खाना खाता है। या एक आदमी मांस न खाए और शाकाहार करने लगे। हम कहेंगे, कैसा सरल आदमी है। या एक आदमी धूम्रपान न करे; शराब न पीए; जुआ न खेले। हम कहेंगे, कैसा सरल आदमी है।

इतने से कोई सरल नहीं होता। ये कोई सरलता के कारण नहीं हैं। बल्कि ऐसे आदमी बहुत जटिल होते हैं। क्योंकि ऐसे आदमी ऊपर से सरलता को ओढ़ लेते हैं, भीतर की जटिलता तो नष्ट होती नहीं, वह तो वहां मौजूद रहती है।

मैं एक यात्रा में था और एक संन्यासी मेरे डिब्बे में थे। मैं था और वे थे। जिस स्टेशन से उनको लोग छोड़ने आए थे, तो बहुत लोग उन्हें छोड़ने आए थे। निश्चित ही काफी लोग उन्हें मानते होंगे। वे केवल एक फट्टा बांधे हुए थे एक रस्सी से। एक फट्टा बांधे हुए थे। फट्टी थी और एक रस्सी से उसको बांधे हुए थे। सामान भी उनके पास एक दूसरी फट्टी और थी, एक छोटी सी टोकरी थी, उसमें दोत्तीन फट्टी के टुकड़े थे, दोत्तीन रस्सियों के टुकड़े थे। यही उनका सामान था। लेकिन जब उन्हें लोग विदा करके चले गए, तो उन्होंने अपनी टोकरी उठाई और अपने फट्टी के टुकड़े गिने। मैं अकेला ही था उस कमरे में। मैं उनको चुपचाप देखता रहा। उन्होंने गिन लिए कि जितने उनके टुकड़े थे, उतने हैं। उन्होंने उसको रख दिया। फिर रात वे सो गए। जिस स्टेशन पर उन्हें उतरना था, मुझसे उन्होंने पूछा कि वह कब आएगा? मैंने कहा, वह सुबह छह बजे आएगा। आप बिलकुल चिंतित न हों। और यह डिब्बा उसी स्टेशन पर कट जाएगा, इसलिए कोई चिंता का कारण नहीं, आप मजे से सोएं। लेकिन मैंने देखा, वे तो बारह बजे के करीब फिर उठ कर किसी से पूछ रहे हैं। कोई स्टेशन आया है, वे पूछ रहे हैं कि फलां स्टेशन तो नहीं आ गया? मैंने उनको फिर कहा कि

देखिए आप सो जाएं। लेकिन मैंने देखा, तीन बजे के करीब वे फिर किसी स्टेशन पर उठ कर पूछ रहे हैं कि फलां स्टेशन तो नहीं आ गया? मैंने उनको कहा कि देखिए, उस स्टेशन से आप चूक नहीं सकते। यह डिब्बा वहीं कट जाएगा। इसलिए आप बिलकुल निश्चिंत सो जाएं। आप इतने चिंतित क्यों हैं?

ऊपर से वे फट्टा लगाए हुए हैं, भीतर इतनी एंग्ज़ाइटी और ऐसी व्यर्थ की चिंता है।

मैंने सुबह देखा, उनका स्टेशन आने के पहले उन्होंने अपने फट्टे को कस कर बांधा। वह ठीक नहीं मालूम पड़ा। फिर उन्होंने उसे दूसरे ढंग से बांधा। फिर वह भी ठीक नहीं मालूम पड़ा। फिर उन्होंने तीसरे ढंग से बांधा। फिर आईने के सामने खड़े होकर उन्होंने देखा कि वह फट्टा ठीक-ठाक बंध गया।

इसको मैं सरलता कैसे कहूं? यह तो जटिलता है। यह तो उस आदमी से भी ज्यादा जटिल हो गया, जो अच्छे कपड़े पहने हुए है।

यह ऊपर से सरलता का जो ढोंग है, इसका कोई अर्थ नहीं है। यह कोई सरलता नहीं है। सरलता बड़ी दूसरी चीज है। यह वैसा ही है, जैसे कोई कागज के फूल घर में लगा ले। कागज के फूलों में और असली फूलों में बड़ा फर्क है। सरलता लाई नहीं जाती, ऊपर से थोपी नहीं जाती, भीतर चित्त अखंड हो जाए तो सरलता बाहर अपने आप आनी शुरू हो जाती है। और तब आदमी क्या पहनता है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; और क्या खाता है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; कैसा उठता-बैठता है, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। यह सब अपने आप सरल हो जाता है। भीतर चित्त अखंड हो तो बाहर जीवन में सरलता अपने आप प्रवेश पाने लगती है। भीतर चित्त खंडित हो, तो बाहर कोई कितनी ही सरलता को लाद ले, लादी हुई सरलता कोई सरलता नहीं है। कल्टीवेटेड है, उसका कोई मूल्य नहीं है। ऊपर से थोपी गई है। ऊपर से थोपी गई सरलता का क्यों मूल्य नहीं हो सकता? क्योंकि ऐसी सरलता केवल अभ्यासजन्य होती है; सहज उत्पन्न नहीं होती।

कबीर ने कहा है: साधो! सहज समाधि भली। वह जो सहज उत्पन्न हो और सहज विकसित हो जाए, वही भली है। जो असहज हो, थोपी जाए, अभ्यास किया जाए, वह व्यर्थ है।

मैं एक गांव गया था। एक साधु मेरे मित्र थे। वे वहां संन्यास की तैयारी में लगे थे। मैं जब उनके झोपड़े के पास गया, मैंने देखा, वे अंदर नंगे टहल रहे हैं। खिड़की में से दिखाई पड़ा। फिर मैं द्वार पर गया। मैंने द्वार पर दस्तक दी। जब उन्होंने द्वार खोला, तो वे कपड़ा लपेटे हुए हैं। मैंने उनसे पूछा, अभी खिड़की से मैंने देखा था तो आप नग्न थे। अब आप कपड़ा क्यों लपेटे हुए हैं?

वे बोले, मैं नग्न रहने का अभ्यास कर रहा हूं। आज नहीं कल मुझे नग्न साधु हो जाना है। तो उसका मैं अभ्यास कर रहा हूं। अकेले में अभ्यास करूंगा पहले। फिर कुछ मित्रों के बीच। फिर थोड़ा बाहर निकलूंगा घर के। फिर गांव में। फिर शहर में। इस भांति धीरे-धीरे अभ्यस्त हो जाऊंगा।

मैंने उनसे कहा, आप किसी सर्कस में भर्ती हो जाइए। आपको संन्यास लेने की कोई जरूरत नहीं। आप किसी सर्कस में भर्ती हो जाइए।

यह इसलिए आपसे कहता हूं कि अभ्यास से आई हुई नग्नता वह नग्नता नहीं है, जो महावीर को आई होगी। वह नग्नता अभ्यास से नहीं, इनोसेंस से आई। वह नग्नता प्रैक्टिस नहीं की गई थी। चित्त इतना सरल हो गया, इतना निर्दोष हो गया कि वस्त्र अनावश्यक हो गए, छूट गए। वे वस्त्र छोड़े नहीं गए, वे वस्त्र छूट गए। ऐसे जो नग्नता आ जाए, वह तो अर्थपूर्ण है। और वस्त्र छोड़ कर अभ्यास करके जो नग्नता आए, तो वह तो कोई भी सर्कस में कर सकता है। उसका तो कोई मामला नहीं है, उसकी कोई कठिनाई नहीं है।

एक आदमी इतने-इतने प्रभु के स्मरण से भर जाए कि उसे भोजन का खयाल न आए और दिन बीत जाए और उपवास हो जाए, यह तो समझ में आता है। और एक आदमी चेष्टा करके, अभ्यास करके दिन भर भूखा रह जाए, यह मेरी समझ में नहीं आता। उपवास का अर्थ ही है: परमात्मा के निकट होना, उसके पास रहना, उसके पास। जो उसके पास जिसका चित्त है, उसके कारण अगर भोजन भूल जाए और उपवास हो जाए, तब तो समझ में आता है। अन्यथा फिर साधा हुआ उपवास बिलकुल व्यर्थ हो जाता है, उसका कोई मूल्य नहीं है।

साधा हुआ सभी व्यर्थ हो जाता है। जो आ जाए, उसकी सार्थकता है। साधे हुए की सार्थकता नहीं है। जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह आता है, साधा नहीं जाता।

अगर मैं आपके प्रति प्रेम को साध लूं, तो वह प्रेम सत्य होगा? साधा हुआ प्रेम कैसे सत्य हो सकता है? साधा हुआ प्रेम तो अभिनय होगा, पाखंड होगा। आया हुआ प्रेम, मेरे भीतर से प्रेम फूटने लगे, उसके अवरुद्ध द्वार खुल जाएं और मेरे भीतर से प्रेम की धारा बहने लगे, वह तो समझ में आता है। और मैं चेष्टा करूं, प्रयास करूं और आपको प्रेम करूं, तो उस प्रेम का क्या मूल्य होगा? वैसे ही सरलता का भी कोई मूल्य नहीं है, जो साध ली गई हो।

लेकिन हम चारों तरफ लोगों को सरलता साधते हुए देखते हैं। जिसको हम साधु कहते हैं, वह सरलता साधे हुए है। सारी चेष्टा है उसकी। एक-एक बात के लिए नियम और विधि और विधान हैं। कब उठना है? कब सोना है? क्या खाना है? क्या पहनना है? रत्ती-रत्ती उसका हिसाब है। उसकी बड़ी प्लैनिंग है। बेहतर था वह कहीं इंजीनियर होता; बेहतर था कि वह कहीं किसी व्यवस्था में व्यवस्थापक होता, कहीं मैनेजर होता; बेहतर था वह कहीं मशीनें चलाता, उसका मस्तिष्क मशीनों को चलाने में बड़ा योग्य सिद्ध होता। लेकिन वह साधु है। साधु का जीवन स्पांटेनियस होता है। साधु का जीवन साधा हुआ नहीं, सहज होता है। उसके भीतर से जो फलित हो रहा है, वह सहज फलित हो रहा है।

जापान में एक बादशाह हुआ। और उसने लोगों को पूछा कि मैं किसी साधु के दर्शन करना चाहता हूं।

उसके वजीरों ने कहा, साधु के दर्शन! गांव-गांव, सड़क-सड़क साधु ही साधु हैं। कहीं भी जाएं और दर्शन कर लें।

जापान में वैसे ही बहुत भिक्षु हैं। बौद्ध मुल्कों में बहुत भिक्षुओं की संख्या है। कंबोडिया में कोई दोत्तीन करोड़ की तो आबादी है और कोई बीस लाख भिक्षु हैं। वैसे ही जापान में हैं, बहुत भिक्षु हैं। वैसे ही लंका में हैं।

तो बादशाह से उसके वजीरों ने कहा, भिक्षु या साधु की क्या कमी है! अभी चाहें जितनी भीड़ लगा लें।

उसने कहा, नहीं, लेकिन मैं साधु के दर्शन करना चाहता हूं।

उन्होंने कहा कि लेकिन साधु के दर्शन का क्या अर्थ है? सड़क पर आ जाएं, साधु ही साधु हैं।

उसने कहा, अगर ये ही साधु होते, तो मैं तुमसे साधु के दर्शन के लिए नहीं कहता। ये सब मुझे अभिनय करते हुए लोग मालूम पड़ते हैं। एक खास ढंग के कपड़े पहन लेने से, खास ढंग का सिर घुटा लेने से, खास ढंग का झोला लटका लेने से कोई साधु कैसे हो सकता है? ये सब मुझे बड़े इम्मैच्योर, बड़े बचकाने लोग मालूम पड़ते हैं। इनके भीतर अभिनय की वृत्ति है। ये सारे के सारे एक्टर्स तो हो सकते हैं, लेकिन ये साधु कैसे हो सकते हैं?

आप देखें जरा साधुओं को। कोई एक विशेष ढंग का टीका लगाए है; कोई एक विशेष ढंग के कपड़े पहने हुए है; कोई कुछ किए हुए है, कोई कुछ। और फिर उनके पीछे चलने वाले भी ठीक वैसे ही किए हुए हैं। यह सब कितना बचकाना, कितना चाइल्डिश, कितना इम्मैच्योर, कितना अप्रौढ़ मालूम होता है। कोई विचारशील, विवेकशील व्यक्ति ऐसा अभिनय कर सकता है?

गांधी के पास एक संन्यासी ने आकर कहा कि मैं कुछ सेवा करना चाहता हूं। गांधी ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा और कहा, इसके पहले कि तुम सेवा करो, ये गैरिक वस्त्र छोड़ दो। उसने कहा, क्यों? इनसे क्या बाधा है? उन्होंने कहा कि ये वस्त्र तुम पहने हो, ये इसी बात के सबूत हैं कि तुम लोगों से चाहते हो कि वे तुम्हें संन्यासी समझें। अन्यथा और कोई कारण नहीं इन वस्त्रों का। तुम संन्यासी हो तो किसी भी वस्त्र में हो सकते हो। लेकिन लोग तुम्हें किसी भी वस्त्र में संन्यासी नहीं समझेंगे; इसी वस्त्र में समझेंगे। तुम चाहते हो कि लोग समझें कि तुम संन्यासी हो। और जो चाहता है कि लोग समझें संन्यासी है, वह आदमी संन्यासी नहीं है। लोगों की चाह से उसका क्या संबंध?

तो उस राजा ने कहा, मैं साधु को मिलना चाहता हूं।

वजीरों ने बहुत खोज की कि कोई साधु है? बहुत मुश्किल से पता चला कि गांव के बाहर एक झोपड़े में एक आदमी रहता है। कुछ लोग कहते हैं, वह साधु है।

राजा वहां गया। वह सुबह-सुबह पहुंचा। सोचा, साधु ब्रह्ममुहूर्त में उठ आता होगा, तो वह गया। तो सुबह के कोई सात, साढ़े सात बज रहे थे, सूरज ऊपर उठ आया था और साधु सोया हुआ था। और भगवान बुद्ध की मूर्ति रखी थी, उससे वह पैर टिकाए हुए था। उस राजा ने कहा, यह कैसा साधु है? भगवान की मूर्ति से पैर टिकाए हुए है! और इतनी देर तक सोया हुआ है!

लेकिन जो उसे ले गए थे, उन्होंने कहा, इतने जल्दी निर्णय न लें। क्योंकि साधु को पहचानना इतना आसान नहीं। इतने जल्दी निर्णय लेने से ही तो असाधु साधु बने हुए दिखाई पड़ रहे हैं। क्योंकि कोई भी चार बजे उठ सकता है, कोई बड़ी कठिन बात है? और कोई भी भगवान के हाथ जोड़ कर बैठा हुआ मिल सकता है, कोई कठिन बात है? जरा थोड़ा निर्णय लेने में जल्दी न करें। यह आदमी कुछ है। जो भगवान पर पैर टेके हुए है, यह कोई आदमी सामान्य नहीं है। सिर्फ साधु ही टेक सकता है भगवान पर पैर, और कोई नहीं टेक सकता। थोड़ा रुकें, जल्दी निर्णय न लें।

वह साधु कोई आठ बजे उठा होगा। राजा ने उससे छूटते ही पूछा कि तुम इतनी देर तक सोए हुए थे? साधु को ब्रह्ममुहूर्त में उठ आना चाहिए।

उसने कहा कि मैं तो ब्रह्ममुहूर्त में ही उठता हूं। जब उठता हूं तभी ब्रह्ममुहूर्त मानता हूं। जब परमात्मा उठा देता है, उठ आता हूं; जब परमात्मा सुला देता है, तो सो जाता हूं। न अपनी तरफ से सोता हूं, न अपनी तरफ से उठता हूं। अपने को छोड़ ही दिया उसी दिन जिस दिन साधु हुआ। अपने को छोड़ दिया उसी दिन। अब जो होता है। जब धूप में बैठता हूं, धूप तेज लगने लगती है, भीतर परमात्मा कहता है कि छाया में चलो, तो छाया में आ जाता हूं; और जब छाया ठंड देने लगती है और परमात्मा कहता है कि धूप में चलो, तो धूप में चला जाता हूं। अपने को मैंने छोड़ दिया है। अब मैं सिर्फ जी रहा हूं और मैं नहीं हूं। तो जब नींद खुलती है, उठ आता हूं; जब भूख लगती है तो खाना मांग लाता हूं।

राजा ने कहा, हैरान! तुम्हारा कोई विधि-विधान नहीं है? कोई व्यवस्था नहीं है?

उसने कहा, बस। कोई विधि-विधान नहीं है। जिसने परमात्मा के हाथ में अपने को छोड़ा, उसका कोई विधि-विधान नहीं होता।

सब विधि-विधान अहंकार से पैदा होते हैं। सारी विधि-विधान की व्यवस्था अहमता से पैदा होती है। हम कुछ थोपना चाहते हैं जीवन पर, उससे पैदा होती है। और जो मनुष्य भी जीवन पर कुछ थोपना चाहता है, जो मनुष्य जीवन से कोई विशेष अपेक्षा रखता है कि वह ऐसा हो, ऐसा न हो, जो कुछ निषेध करता है और कुछ स्वीकार करता है, वह मनुष्य सरल नहीं हो सकता। और सरलता साधु की अनिवार्य शर्त है। सरलता जीवन में सत्य को पाने की अनिवार्य शर्त है।

उस साधु ने कहा कि हवा-पानी की तरह जो हो जाता है, जैसे एक सूखा पत्ता उड़ता हो; हवा जहां ले जाए, चला जाता है; हवा जहां गिरा दे, गिर जाता है; फिर हवा उठा ले तो फिर उठ जाता है। सूखे पत्ते की तरह जो हो जाए, वैसा व्यक्ति केवल सरल हो सकता है, बाकी तो सारे लोग जटिल होंगे। सागर पर तैरता हुआ लकड़ी के टुकड़े की भांति जो हो जाए कि लहरें जहां ले जाएं, चला जाए; और लहरें जहां छोड़ दें, छूट जाए; जिसकी अपनी कोई विधि-निषेध की इच्छा नहीं है, जिसका अपना कोई आरोपण नहीं है, वही केवल सरल हो सकता है।

तो हम कैसे सरल होंगे जिनका कि चौबीस घंटे विधि-निषेध है? जो चौबीस घंटे अपने को एक विशेष भांति से बनाने में लगे हैं, वे लोग कैसे सरल होंगे? जो आदमी भी अपने को बनाने की चेष्टा में लगा है, वह सरल नहीं हो सकता। जो आदमी इस कोशिश में लगा है कि मैं परमात्मा को पाऊंगा, जो आदमी इस कोशिश में लगा है कि मैं साधु हो जाऊंगा, जो आदमी इस कोशिश में लगा है कि मुझे तो सज्जन होना है, जो आदमी इस कोशिश में लगा है कि मुझे अहिंसक होना है, मुझे सत्यवादी होना है, मुझे अक्रोधी होना है, जो इस कोशिश में लगा है वह आदमी सरल कैसे होगा? वैसा आदमी सरल नहीं हो सकता। जो मनुष्य जीवन में किसी आदर्श के प्रति अपने को समर्पित करता है, वह कभी सरल नहीं हो सकता। और हम सारे लोग किसी न किसी आदर्श के प्रति समर्पित हैं।

महावीर को हुए ढाई हजार वर्ष हुए, क्राइस्ट को हुए दो हजार वर्ष हुए, बुद्ध को हुए ढाई हजार वर्ष हुए; राम को और भी ज्यादा हुआ; कृष्ण को बहुत समय हुआ। उनके बाद हमने आदर्श पकड़ लिए हैं। बुद्ध के बाद ढाई हजार वर्ष से उनके पीछे चलने वाला बुद्ध होने की कोशिश में लगा है। कोई दूसरा आदमी बुद्ध हुआ? ढाई हजार वर्षों में नहीं हुआ। कोई दूसरा आदमी महावीर हुआ? ढाई हजार वर्षों में नहीं हुआ। कोई दूसरा आदमी क्राइस्ट हुआ? दो हजार वर्षों का अनुभव तो इनकार करता है कि नहीं हुआ। फिर भी लाखों लोग क्राइस्ट होने की चेष्टा में लगे हैं, लाखों लोग बुद्ध होने की, लाखों लोग महावीर होने की। जरूर इसमें कोई बुनियादी गलती है।

जो आदमी भी किसी दूसरे आदमी के जैसा होने की चेष्टा में लगता है, वह जटिल हो जाएगा। स्वभावतः जटिल हो जाएगा। वह अपने को इनकार करने लगेगा और दूसरे को अपने ऊपर थोपने लगेगा। वह अपनी वास्तविकता को निषेध करने लगेगा और दूसरे की आदर्शवत्ता को ओढ़ने लगेगा। वह आदमी कठिन हो जाएगा, जटिल हो जाएगा। उसका चित्त खंड-खंड हो जाएगा। वह टूट जाएगा अपने भीतर। उसके भीतर द्वंद्व उत्पन्न हो जाएगा। और बड़ी मुश्किल तो यही है कि महावीर होने के लिए सरल होना जरूरी है; बुद्ध होने के लिए सरल होना जरूरी है; क्राइस्ट होने के लिए सरल होना जरूरी है; और जो उनका अनुगमन करते हैं, अनुगमन करने के कारण जटिल हो जाते हैं।

यह स्थिति आपको दिखनी चाहिए। कोई किसी का अनुगमन करके कभी सरल नहीं हो सकता। अनुगमन का अर्थ ही हुआ कि मैंने दूसरे मनुष्य जैसे होने की चेष्टा शुरू कर दी, बिना उस मनुष्य को समझे हुए, जो मैं था, जो मैं हूं। मैं जो हूं, इसे समझे बिना मैंने दूसरा मनुष्य होने की चेष्टा शुरू कर दी। मैं जो रहूंगा, वह रहा आऊंगा, और दूसरे मनुष्य का आवरण, अभिनय, पाखंड अपने ऊपर थोप लूंगा।

इसीलिए धार्मिक मुल्क अत्यंत पाखंडग्रस्त हो जाते हैं। हमारा मुल्क है। इससे ज्यादा पाखंडी मुल्क जमीन पर खोजना कठिन है। इससे ज्यादा जटिल मुल्क, जटिल कौम, जटिल जाति खोजनी बिलकुल मुश्किल है। जितना पाखंड हममें घना और गहरा है, इतना जमीन पर किसी कौम में नहीं हो सकता। और उसका कारण कुल यह है कि हम सब अनुकरण,

आदर्श, हम कुछ होने के पागलपन में लगे हैं, उस मनुष्य को समझे बिना, जो हम हैं। जब कि जीवन की कोई भी वास्तविक क्रांति, जो हम हैं, उसके समझने से शुरू होती है। जो मैं वस्तुतः हूं, उसे समझने से शुरू होती है।

एक आदमी क्रोधी है; एक आदमी लोभी है; एक आदमी दंभी है। एक दंभी आदमी कोशिश में लग जाता है कि मैं विनीत हो जाऊं। क्या होगा? एक अहंकारी मनुष्य है। शिक्षा और संस्कार और समझाने वाले लोग उससे कहते हैं--अहंकार छोड़ दो, तो तुम्हें बहुत शांति मिलेगी। वह अहंकारी मनुष्य अहंकार को छोड़ने में लगेगा। क्या करेगा? वह करेगा यह। अहंकार कहीं छोड़ा जाता है? अहंकार कहीं छोड़ा जा सकता है? कौन छोड़ेगा अहंकार? जो छोड़ने में लगा है, वह अहंकार ही तो है। इसलिए जब छूटने का उसे लगने लगेगा तो वह यह कहने लगेगा, मैंने अहंकार छोड़ दिया। मैं विनीत हो गया। मैं विनम्र हो गया हूं। मेरे पास कोई अहमता नहीं है। और यह सब क्या है? यह सब अहमता का हिस्सा है। कभी अहंकार अहंकार को कैसे छोड़ सकेगा? छोड़ने में और परिपुष्ट हो जाएगा, और सूक्ष्म हो जाएगा।

इसलिए संन्यासी के बराबर सूक्ष्म अहंकार गृहस्थ का नहीं होता। हो नहीं सकता। गृहस्थ तो एक-दूसरे से मिल जाते हैं। संन्यासी एक-दूसरे से मिलते भी नहीं। संन्यासियों को कहिए कि एक-दूसरे से मिलें, तो नहीं मिल सकते।

एक बड़े साधु को मैंने कहा कि फलां साधु से आप मिलें। वे बोले, जरा मुश्किल है। क्यों मुश्किल है? कौन पहले नमस्कार करेगा, यही मुश्किल है, अगर दो साधु मिलें तो। कौन कहां बैठेगा, यही मुश्किल है। कौन नीचे बैठेगा, कौन ऊपर बैठेगा?

एक जलसे में मैं था। वहां कोई तीस-चालीस साधु अलग-अलग तरह के निमंत्रित, आमंत्रित थे। उस समारोह को करने वालों की इच्छा थी कि सारे लोग एक ही मंच पर बैठें। लेकिन नहीं बैठ सके। क्योंकि कोई शंकराचार्य थे, उनको तो सिंहासन चाहिए, उस पर ही बैठेंगे। और जब शंकराचार्य सिंहासन पर बैठेंगे, तो दूसरा साधु उनके नीचे पैरों में कैसे बैठने को राजी हो सकता है? उसने कहा, मैं भी सिंहासन पर बैठूंगा। फिर यह भी डर है कि सिंहासन किसका ऊंचा-नीचा होगा?

यह सोचते हैं आप, ये पागल हैं या साधु हैं? ये विनम्र हैं या अहंकार की अत्यंत अंतिम चरम सीमा हैं ये? यह अहमता का सूक्ष्मतम रूप है। इसलिए दुनिया में साधु लड़ते हैं और लड़ाते हैं। क्योंकि अहंकार जहां भी हो, वहीं संघर्ष और द्वंद्व और लड़ाई खड़ा कर देता है।

यह अहमता है। और अहंकार कभी अहंकार को छोड़ ही नहीं सकता। जब वह छोड़ने में लगता है, तब भी अहंकार ही है जो सोच रहा है कि मैं विनम्र हो जाऊं। वह क्या करेगा? वह विनम्र होने का ढोंग कर लेगा। जब आप मिलेंगे, तो वह सिर झुका कर नीचे होकर कहेगा, मैं तो कुछ भी नहीं हूं। और जब वह यह कह रहा है कि मैं कुछ भी नहीं हूं, तब वह भीतर जानेगा कि मैं कुछ हूं। जब वह कह रहा है मैं कुछ नहीं हूं, यह केवल वही

आदमी कहता है कि मैं कुछ नहीं हूं जो जानता है कि मैं कुछ हूं। अन्यथा नहीं कहता। लोभी कैसे लोभ को छोड़ेगा? वह लोभ को भी छोड़ेगा तो लोभ के कारण ही छोड़ेगा।

मैं एक जगह था और एक साधु समझाते थे लोगों को: लोभ छोड़ दो तो तुम शांत हो जाओगे; लोभ छोड़ दो तो पुण्य होगा; लोभ छोड़ दो तो मोक्ष मिलेगा। मैंने उन साधु को कहा कि अगर इनमें से कोई बहुत लोभी होगा, तो ही आपकी बात को मान पाएगा। क्योंकि जिसे मोक्ष पाने का लोभ होगा, वह सोचेगा, लोभ छोड़ दें। शांत होने का जिसे लोभ होगा, वह सोचेगा, लोभ छोड़ दें। ये सब लोभ के ही हिस्से होंगे। ये ग्रीड के ही एक्सटेंशंस हैं। ये उसके ही विस्तार हैं। लोभी कभी लोभ कैसे छोड़ सकता है?

असल में कोई बुराई कभी नहीं छोड़ी जाती। वैसे ही, जैसे अंधकार हो, तो अंधकार को हटाया नहीं जा सकता। इस भवन में अंधकार भरा हो, हम उसे धक्के देकर नहीं हटा सकते हैं। अगर कोई अंधकार को धकाने में लगेगा, तो हम क्या कहेंगे उसको? कहेंगे, विक्षिप्त हो गया। इसका मस्तिष्क ठीक नहीं है। अंधकार कहीं हटाया जाता है? हां, प्रकाश जलाया जाता है। प्रकाश जल जाए तो अंधकार अपने आप विलीन हो जाता है, वह नहीं पाया जाता। वैसे ही अहंकार नहीं छूटता। सरलता उत्पन्न होती है, तो अहंकार नहीं पाया जाता है। लोभ नहीं छूटता। शांति उत्पन्न होती है, तो लोभ नहीं पाया जाता है। जीवन में बुराई नहीं छोड़ी जाती। जो सद है उसका जन्म, उसे जगाया जाता है। जो आलोक है उसे जगाया जाता है, अंधकार अपने से छूट जाता है।

लेकिन हम अंधकार को छोड़ने में लगेंगे तो जटिल हो जाएंगे। हम सारे लोग अंधकार को छोड़ने में लगे हैं। मुझे लोग मिलते हैं, जो कहते हैं, हमें अपनी हिंसा छोड़नी है। मैं उनसे कहता हूं, हिंसा कैसे छोड़ी जा सकती है? हां, प्रेम जगाया जा सकता है; हिंसा नहीं छोड़ी जा सकती। लोग कहते हैं, हमें असत्य छोड़ना है। सत्य जगाया जा सकता है, असत्य नहीं छोड़ा जा सकता। और जब हम यह छोड़ने की भाषा में पड़ जाते हैं, तभी जटिलता शुरू हो जाती है, द्वंद्व शुरू हो जाता है, कांफ्लिक्ट शुरू हो जाती है। और हमारे चित्त इसीलिए बहुत ज्यादा द्वंद्व से भरे हैं। हम कुछ छोड़ना चाहते हैं। जब कि छोड़ना जीवन का नियम नहीं है; पाना जीवन का नियम है। कुछ पा लिया जाए तो निम्न छूट जाता है। श्रेष्ठ पा लिया जाए, निम्न विलीन हो जाता है। श्रेष्ठ आ जाए, तो निम्न जगह खाली कर देता है उसके लिए। प्रकाश आ जाए, तो अंधकार स्थान छोड़ देता है। लेकिन अंधकार अपने आप स्थान नहीं छोड़ सकता। प्रकाश का आगमन प्राथमिक है, अंधकार का जाना द्वितीय है। सत का आना प्राथमिक है, असत का जाना द्वितीय है। श्रेष्ठ का आना प्राथमिक है, अश्रेष्ठ का जाना द्वितीय है। और वह जो आगमन है, वह जो वास्तविक सरलता का आगमन है, जिससे जटिलता जाएगी, वह आरोपित नहीं होती है। उसे भीतर से जगाना होता है।

भीतर से जगाने का नियम क्या होगा? नियम होगा कि सबसे पहले हम सब भांति के आदर्शों से अपने को मुक्त कर लें। आदर्श जटिल कर रहे हैं। आप सबसे पहले अपने को जानने में लगें बजाय इसके कि आप अपने को बनाने में लग जाएं। हम पूछते हैं कि हमें

कैसा होना चाहिए? मैं आपसे कहता हूं, यह व्यर्थ है। आप जानें कि आप कैसे हैं? यह वैज्ञानिक है कि आप जानें कि आप क्या हैं? अगर आप अपनी वास्तविकता को पूरी तरह जान लें, तो उस ज्ञान से ही क्रांति शुरू हो जाती है। अगर कोई मनुष्य अपने क्रोध को पूरा जान ले, तो क्रोध विलीन होना शुरू हो जाता है। क्रोध को विलीन करने के लिए और कुछ करना जरूरी नहीं, क्रोध को जान लेना ही जरूरी है। लेकिन आपने कभी क्रोध नहीं जाना।

आप कहेंगे, हमने बहुत बार क्रोध किया है।

मैं आपको कहता हूं, मुल्क में मैं घूमा हूं और अभी मैं ऐसे आदमी की तलाश में हूं, जिसने क्रोध को जाना हो। आपने क्रोध कभी नहीं जाना। जब आप क्रोध करते हैं, तब आप मौजूद ही नहीं होते हैं। आप मूर्च्छित होते हैं, बेहोश होते हैं। कभी कोई आदमी मौजूद होकर क्रोध कर सकता है? मौजूद होकर क्रोध किया ही नहीं जा सकता। अगर आप मौजूद हों, क्रोध असंभव हो जाएगा। अगर आपकी प्रेजेंस पूरी हो उस वक्त, चित्त की क्रोध की वृत्ति के समय अगर आप सजग हों, क्रोध असंभव हो जाएगा। क्रोध नहीं किया जा सकता है। जब भी हम सजग हों, तभी जो बुरा है, वह असंभव हो जाता है। बुरे के लिए असजग होना, मूर्च्छित होना जरूरी है। इसलिए जिसे बुरा काम करना है, वह अगर नशा कर ले, तो बुरा काम और भी आसान हो जाता है, क्योंकि नशे में सजगता और भी क्षीण हो जाती है।

सारे धर्मों ने नशे का विरोध किया है, केवल एक बात से। अन्यथा नशे में कोई खराबी नहीं है। एक आदमी शराब पी रहा है, इसमें क्या खराबी है? शराब में कोई खराबी नहीं है, खराबी यह है कि शराब की स्थिति में उसकी जो होश की स्थिति है, वह विलीन हो जाएगी, वह और भी मूर्च्छित होगा। और मूर्च्छा में सब पाप होते हैं। जितने हम मूर्च्छित हैं, उतने ही पाप हैं। आप जब क्रोध करते हैं, तब आप मूर्च्छित हैं। जब आप काम से पीड़ित होते हैं, तब आप मूर्च्छित हैं। आप होश में नहीं हैं। आप अपने में नहीं हैं। आपको कोई चीज खींच रही है और आपको बिलकुल होश नहीं है कि आप कहां जा रहे हैं। क्रोध में आदमी को देखें। वासनाग्रस्त आदमी को देखें। उसकी आंखों को, उसके भाव को देखें। उसके शरीर को देखें। आप पाएंगे, वह मूर्च्छित है, बेहोश है। इसीलिए जब आप क्रोध में होते हैं, तो न केवल मन के तल पर आप मूर्च्छित होते हैं बल्कि शरीर के तल पर भी। वैज्ञानिक कहते हैं, शरीर की ग्रंथियां जहर छोड़ देती हैं और उस जहर के प्रभाव में आप करीब-करीब शराब की हालत में आ जाते हैं। करीब-करीब शराब की हालत में आ जाते हैं। शरीर के और मन के, दोनों तल पर आप बेहोश हो जाते हैं।

बुद्ध का एक शिष्य था। वह नया-नया दीक्षित हुआ था, उसने संन्यास लिया था। और बुद्ध को उसने कहा, मैं आज कहां भिक्षा मांगने जाऊं?

उन्होंने कहा, मेरी एक श्राविका है, वहां चले जाना।

वह वहां गया। वह जब भोजन करने को बैठा, तो बहुत हैरान हुआ, रास्ते में इसी भोजन का उसे खयाल आया था। यह भोजन उसे प्रिय था। पर उसने सोचा था कि कौन मुझे देगा? आज कौन मुझे मेरे प्रिय भोजन को देगा? वह कल तक राजकुमार था और जो उसे पसंद

था, वह खाता था। लेकिन उस श्राविका के घर वही भोजन देख कर वह बहुत हैरान हो गया। सोचा, संयोग की बात है, वही आज बना होगा। जब वह भोजन कर रहा है, उसे अचानक खयाल आया, भोजन के बाद तो मैं विश्राम करता था रोज। लेकिन आज तो मैं भिखारी हूं। भोजन के बाद वापस जाना होगा। दोत्तीन मील का फासला फिर धूप में तय करना है।

वह श्राविका पंखा करती थी, उसने कहा, भंते, अगर भोजन के बाद दो क्षण विश्राम कर लेंगे तो मुझ पर बहुत अनुग्रह होगा।

भिक्षु फिर थोड़ा हैरान हुआ कि क्या मेरी बात किसी भांति पहुंच गई! फिर उसने सोचा, संयोग की ही बात होगी कि मैंने भी सोचा और उसने भी उसी वक्त पूछ लिया। चटाई डाल दी गई। वह विश्राम करने लेटा ही था कि उसे खयाल आया, आज न तो अपनी कोई शय्या है, न अपना कोई साया है; अपने पास कुछ भी नहीं।

वह श्राविका जाती थी, लौट कर रुक गई, उसने कहा, भंते, शय्या भी किसी की नहीं है, साया भी किसी का नहीं है। चिंता न करें।

अब संयोग मान लेना कठिन था। वह उठ कर बैठ गया। उसने कहा, मैं बहुत हैरान हूं! क्या मेरे भाव पढ़ लिए जाते हैं?

वह श्राविका हंसने लगी। उसने कहा, बहुत दिन ध्यान का प्रयोग करने से चित्त शांत हो गया। दूसरे के भाव भी थोड़े-बहुत अनुभव में आ जाते हैं।

वह एकदम उठ कर खड़ा हो गया। वह एकदम घबड़ा गया और कंपने लगा। उस श्राविका ने कहा, आप घबड़ाते क्यों हैं? कंपते क्यों हैं? क्या हो गया? विश्राम करिए। अभी तो लेटे ही थे।

उसने कहा, मुझे जाने दें, आज्ञा दें। उसने आंखें नीचे झुका लीं और वह चोरों की तरह वहां से भागा।

श्राविका ने कहा, क्या बात है? क्यों परेशान हैं?

फिर उसने लौट कर भी नहीं देखा। उसने बुद्ध को जाकर कहा, उस द्वार पर अब कभी न जाऊंगा।

बुद्ध ने कहा, क्या हो गया? भोजन ठीक नहीं था? सम्मान नहीं मिला? कोई भूल-चूक हुई? उसने कहा, भोजन भी मेरे लिए प्रीतिकर जो है, वही था। सम्मान भी बहुत मिला, प्रेम और आदर भी था। लेकिन वहां नहीं जाऊंगा। कृपा करें! वहां जाने की आज्ञा न दें।

बुद्ध ने कहा, इतने घबड़ाए क्यों हो? इतने परेशान क्यों हो?

उसने कहा, वह श्राविका दूसरे के विचार पढ़ लेती है। और जब मैं आज भोजन कर रहा था, उस सुंदर युवती को देख कर मेरे मन में तो विकार भी उठे थे। वे भी पढ़ लिए गए होंगे। मैं किस मुंह से वहां जाऊं? मैं तो आंखें नीची करके वहां से भागा हूं। वह मुझे भंते कह रही थी, मुझे भिक्षु कह रही थी, मुझे आदर दे रही थी। मेरे प्राण कंप गए। मेरे मन में क्या

उठा? और उसने पढ़ लिया होगा। फिर भी मुझे भिक्षु और भंते कह कर आदर दे रही थी! उसने कहा, मुझे क्षमा करें। वहां मैं नहीं जाऊंगा।

बुद्ध ने कहा, तुम्हें वहां जान कर भेजा है। यह तुम्हारी साधना का हिस्सा है। वहीं जाना पड़ेगा। रोज वहीं जाना पड़ेगा। जब तक मैं न कहूं या जब तक तुम आकर मुझसे न कहो कि अब मैं वहां जा सकता हूं, तब तक वहीं जाना पड़ेगा। जब तक तुम मुझसे आकर यह न कहो कि अब मैं रोज वहां जा सकता हूं, तब तक वहीं जाना पड़ेगा। वह तुम्हारी साधना का हिस्सा है।

उसने कहा, लेकिन मैं कैसे जाऊंगा? किस मुंह को लेकर जाऊंगा? और कल अगर फिर वही विचार उठे तो मैं क्या करूंगा?

बुद्ध ने कहा, तुम एक ही काम करना, एक छोटा सा काम करना, और कुछ मत करना, जो भी विचार उठे, उसे देखते हुए जाना। विकार उठे, उसे भी देखना। कोई भाव मन में आए, काम आए, क्रोध आए, कुछ भी आए, उसे देखना, और कुछ मत करना। तुम सचेत रहना भीतर। जैसे कोई अंधकारपूर्ण गृह में एक दीये को जला दे और उस घर की सब चीजें दिखाई पड़ने लगें, ऐसे ही तुम अपने भीतर अपने बोध को जगाए रखना कि तुम्हारे भीतर जो भी चले, वह दिखाई पड़े। वह स्पष्ट दिखाई पड़ता रहे। बस तुम ऐसे जाना।

वह भिक्षु गया। उसे जाना पड़ा। भय था, पता नहीं क्या होगा? लेकिन वह अभय होकर लौटा। वह नाचता हुआ लौटा। कल डरा हुआ आया था, आज नाचता हुआ आया। कल आंखें नीचे झुकी थीं, आज आंखें आकाश को देखती थीं। आज उसके पैर जमीन पर नहीं पड़ते थे, जब वह लौटा। और बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा और उसने कहा कि धन्य! क्या हुआ यह? जब मैं सजग था, तो मैंने पाया वहां तो सन्नाटा है। जब मैं उसकी सीढ़ियां चढ़ा, तो मुझे अपनी श्वास भी मालूम पड़ रही थी कि भीतर जा रही है, बाहर जा रही है। मुझे हृदय की धड़कन भी सुनाई पड़ने लगी थी। इतना सन्नाटा था मेरे भीतर। कोई विचार सरकता तो मुझे दिखता। लेकिन कोई सरक नहीं रहा था। मैं एकदम शांत उसकी सीढ़ियां चढ़ा। मेरे पैर उठे तो मुझे मालूम था कि मैंने बायां पैर उठाया और दायां रखा। और मैं भीतर गया और मैं भोजन करने बैठा। यह जीवन में पहली दफा हुआ कि मैं भोजन कर रहा था तो मुझे कौर भी दिखाई पड़ता था। मेरा हाथ का कंपन भी मालूम होता था। श्वास का कंपन भी मुझे स्पर्श और अनुभव हो रहा था। और तब मैं बड़ा हैरान हो गया, मेरे भीतर कुछ भी नहीं था, वहां एकदम सन्नाटा था। वहां कोई विचार नहीं था, कोई विकार नहीं था।

बुद्ध ने कहा, जो भीतर सचेत है, जो भीतर जागा हुआ है, जो भीतर होश में है, विकार उसके द्वार पर आने वैसे ही बंद हो जाते हैं, जैसे किसी घर में प्रकाश हो तो उस घर में चोर नहीं आते। जिस घर में प्रकाश हो तो उससे चोर दूर से ही निकल जाते हैं। वैसे ही जिसके मन में बोध हो, जागरण हो, अमूर्च्छा हो, अवेयरनेस हो, उस चित्त के द्वार पर विकार आने बंद हो जाते हैं। वे शून्य हो जाते हैं।

मैं कहता हूं, आपने क्रोध कभी देखा नहीं, क्योंकि क्रोध आप देखते तो क्रोध विलीन हो जाता। आपने कभी सेक्स देखा नहीं, अगर देखते तो विलीन हो जाता। जो भी देख लिया जाए मन के तल पर, वही विलीन हो जाता है। जो भी देख लिया जाए उसकी परिपूर्णता में, वही विलीन हो जाता है। उसके विलीन हो जाने पर जो शेष रह जाता है, वह है प्रेम, वह है ब्रह्मचर्य, वह है अक्रोध, वह है शांति, वह है अहिंसा, वह है करुणा, जो शेष रह जाता है। वह हमारा स्वभाव है, उसे कहीं से लाना नहीं है। जो फॉरेन एलिमेंट, जो विजातीय तत्व हमारे ऊपर हैं, वे ही भर विलीन हो जाएं, तो जो हमारे भीतर है वह प्रकट हो जाएगा।

परमात्मा हमारा स्वभाव है। उस स्वभाव में करुणा सहज है; प्रेम सहज है; ब्रह्मचर्य सहज है; दया और अहिंसा और सत्य और अपरिग्रह और सरलता वहां सहज हैं। अगर विजातीय विलीन हो जाए, तो वह सहजता प्रकट हो जाएगी। इसलिए मैंने कहा, साधुता सहजता है, सरलता है, स्पांटेनियस है। और कबीर का जो मैंने वचन कहा: साधो! सहज समाधि भली। उसका अर्थ है, उसका अर्थ है कि जो बिलकुल सहज होकर देखेगा, उसे समाधि उत्पन्न हो जाएगी। विकार विलीन हो जाएंगे और भीतर से उसका जन्म होगा जो सत्य है।

लेकिन यह किसी के पीछे जाने से नहीं होगा, अपने ही भीतर आने से होगा। यह किसी का अनुगमन करने से नहीं होगा, अपनी ही वृत्तियों का अनुसरण करने से होगा। महावीर और बुद्ध के पीछे नहीं जाना है; क्रोध और काम के पीछे जाना है, उनको पकड़ना और पहचानना है। कोई आदर्श आपको बनाने की जरूरत नहीं है। जो आदर्शतम है, वह आपके भीतर मौजूद है। आपको कुछ होना नहीं है। जो आप हैं, अगर आप उसी को जान सकें, तो सब हो जाएगा। लेकिन हम कुछ होने में लगते हैं, इससे जटिलता, इससे उलझाव, द्वंद्व पैदा हो जाता है। कुछ होने में न लगें; जो हैं, उसे जानने में लगें। और घबड़ाएं न। क्रोध से न घबड़ाएं; काम से न घबड़ाएं; द्वेष से न घबड़ाएं; घृणा से न घबड़ाएं; मोह से, लोभ से न घबड़ाएं। घबड़ाने की कोई भी जरूरत नहीं है। इनमें प्रवेश करें। इनके प्रति सजग हों। जानें, होश से इनको पहचानें। इनका विश्लेषण करें। इनमें प्रवेश कर जाएं।

जो व्यक्ति अपने लोभ में प्रवेश कर जाएगा, वह अलोभ पर पहुंच जाता है। जो अपने क्रोध में प्रवेश कर जाता है, वह अक्रोध पर पहुंच जाता है। जो अपने काम में, सेक्स में प्रवेश कर जाता है, वह ब्रह्मचर्य को अनुभव कर लेता है। लेकिन हम तो बाहर से ही डरे-डरे, परेशान, उनमें प्रवेश ही नहीं करते। कभी उनको जानना ही नहीं चाहते। कभी उनमें प्रवेश करके, पूरे उनके आंतरिक जड़ों तक जाना नहीं चाहते। हम तो बाहर ही घबड़ाए रहते हैं।

बुरे लोग वे हैं, जो बुरा काम करके नष्ट हो जाते हैं। भले लोग वे हैं, जो बुरे काम के डर से ही नष्ट हो जाते हैं।

एक गांव में, एक वृद्ध अपने गांव की सीमा के बाहर बैठा था। एक फकीर था और गांव के बाहर ही रहता था। रात उसने देखा, एक बड़ी विकराल छाया गांव में प्रवेश कर रही है। एक

विकराल छाया मात्र। उसने पूछा कि तुम कौन हो? यह छाया किसकी है और यह कहां जा रही है?

सुनाई पड़ा कि मैं महामारी हूं और गांव में एक हजार बुरे लोगों को नष्ट करने आई हूं।

उसने कहा, सिर्फ बुरे लोगों को न?

सिर्फ बुरे लोगों को। तीन दिन गांव में रहूंगी और एक हजार बुरे लोगों को नष्ट कर दूंगी।

लेकिन तीन दिन में तो कई हजार लोग गांव में नष्ट हो गए! उसमें बुरे ही लोग नहीं थे, बहुत से भले लोग थे, साधु थे, सज्जन थे। वह वृद्ध सजग रहा कि तीसरे दिन जब वह लौटे छाया, तो मैं उससे पूछूं कि यह क्या हुआ? धोखा दिया? वह छाया तीसरे दिन रात को वापस लौटती थी। उस वृद्ध ने कहा कि ठहरो और मुझे बताओ कि मुझे धोखा दिया और झूठ बोली। तुमने कहा कि एक हजार बुरे लोगों को नष्ट करूंगी। तीन दिन में तो हजारों लोग नष्ट हो गए। उसमें बहुत भले और साधु और सज्जन भी नष्ट हुए।

वह महामारी बोली, मैंने तो एक हजार बुरे लोग नष्ट किए, बाकी अच्छे लोग भय से नष्ट हो गए। उसने कहा कि मैंने तो एक हजार बुरे लोग नष्ट किए, बाकी अच्छे लोग भय से मर गए। वे मैंने नष्ट नहीं किए हैं। मेरा जिम्मा एक हजार का, बाकी सब अपने से मर गए हैं।

यह तो बिलकुल ही काल्पनिक है बात, लेकिन सच है। बुरे लोग क्रोध करके नष्ट हो जाते हैं। अच्छे लोग क्रोध से डर कर नष्ट हो जाते हैं।

तीसरा रास्ता है: न तो क्रोध करने का सवाल है, न क्रोध से लड़ने का सवाल है। क्रोध को जानने का सवाल है। न तो क्रोध के पीछे क्रोधी हो जाने का सवाल है और न क्रोध से डर कर अक्रोध को लादने का सवाल है। सवाल क्रोध को जान कर क्रोध को विसर्जित करने का है। और जानते ही क्रोध विसर्जित हो जाता है। जानते ही जटिलता विसर्जित हो जाती है। ज्ञान से बड़ी कोई क्रांति नहीं है।

अभी रास्ते में हम आते थे तो बात चलती थी कि ज्ञान हो जाए तो फिर क्या करेंगे? ज्ञान हो जाए तो फिर आचरण कैसे करेंगे? ज्ञान हो जाए तो उसे फिर जीवन में कैसे लाएंगे?

यह गलत ही बात है। यह गलत ही बात है। यह वैसा ही है जैसे कोई पूछे कि प्रकाश हो जाए, तो फिर अंधेरे का क्या करेंगे? जैसे कोई पूछे कि यहां प्रकाश तो जल गया, लेकिन फिर अंधेरे का क्या करेंगे? तो हम उससे क्या कहेंगे? हम उससे कहेंगे, फिर तुम प्रकाश के जलने का अर्थ ही नहीं समझे। प्रकाश के जलने का अर्थ ही है कि अंधेरा नहीं हो गया। ज्ञान का अर्थ यह है कि अज्ञान नहीं हो गया। और जो आचरण अज्ञान से निकलता था, वह अज्ञान के चले जाने पर नहीं हो जाएगा। वह रह कैसे जाएगा? अज्ञान अनाचरण है; ज्ञान आचरण है। ज्ञान को आचरण में लाना नहीं होता है। ज्ञान हो तो आचरण अपने आप है। अज्ञान को भी आचरण में नहीं लाना होता, अज्ञान हो तो अनाचरण अपने आप है।

आप कोई क्रोध को लाते हैं? आपने कभी क्रोध लाया है? आप हमेशा पाते हैं, क्रोध आया। आप क्रोध को कभी लाए हैं? आपने कभी घृणा की है? आप हमेशा पाते हैं, आई। आई का क्या अर्थ है? आई का अर्थ है कि भीतर अज्ञान है, अनाचरण आता है। ठीक वैसे ही, अगर

भीतर ज्ञान हो तो आचरण आता है, वह भी लाया नहीं जाता। अगर भीतर ज्ञान हो, तो प्रेम वैसे ही आएगा, जैसे घृणा आती है अभी; करुणा वैसे ही आएगी, जैसे क्रूरता आती है अभी; अहिंसा वैसे ही आएगी, जैसे हिंसा आती है अभी। अज्ञान का जो प्रकाशन है, वह अनाचरण है। ज्ञान का जो प्रकाशन है, वह आचरण है। आचरण थोपा नहीं जाता, वह ज्ञान से निःसृत होता है, बहता है और आता है।

जीवन में जो भी है, वह सब आता है। लाया कुछ भी नहीं जाता है। और इसीलिए यह जो मैंने कहा कि जीवन सरल हो, जटिलता न हो उसमें, इसका यह अर्थ मत ले लेना कि आपको सरलता लानी है। इसका अर्थ केवल इतना है, अपनी जटिलता जाननी है और जटिलता में प्रवेश करना है।

जटिलता में प्रवेश का सूत्र है: जटिलता के प्रति, चित्त की सारी वृत्तियों के प्रति जागरण।

मैंने कल कहा, विचार के प्रति साक्षी हों, तो स्वतंत्रता आएगी। भाव के प्रति साक्षी हों, तो सरलता आती है। विचार के प्रति साक्षी हों, तो स्वतंत्रता आती है। भाव के प्रति साक्षी हों, तो सरलता आती है। जो विचार को जानने लगता है, वह विचार से मुक्त हो जाता है। जो भाव को जानने लगता है, वह भाव से मुक्त हो जाता है। ज्ञान विचार का, विचार से मुक्ति है; ज्ञान भाव का, भाव से मुक्ति है।

हमारा भाव जटिल हो, हम सत्य को नहीं जान सकते। विचार जटिल हो, सत्य को नहीं जान सकते। विचार सरल होगा, भाव सरल होगा, तो वह तैयारी हो जाएगी हमारे भीतर जो हमें सत्य को जानने के लिए आंख को खोल देती है।

इसलिए मैंने दूसरे चरण की बात कही: चित्त की सरलता। कल तीसरे सूत्र की बात करूंगा: चित्त की शून्यता। तीन ही सूत्र हैं: चित्त की स्वतंत्रता, चित्त की सरलता और चित्त की शून्यता। स्वतंत्रता, सरलता और शून्यता को जो साध लेता है, वह समाधि को उपलब्ध हो जाता है।

मेरी बातों को प्रेम से सुना, उसके लिए अनुगृहीत हूं। सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

कुछ प्रश्न हैं।

सबसे पहले, पूछा है कि धर्मशास्त्र इत्यादि पाखंड हैं, तो वेद-उपनिषद में जो बातें हैं, वे सत्य माननी चाहिए या नहीं?

शास्त्रों में जो है, उसे ही आप कभी नहीं पढ़ते हैं। शास्त्र में जो है, उसे नहीं; आप जो पढ़ सकते हैं, उसे ही पढ़ते हैं।

इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी होगा।

यदि आप गीता को पढ़ते हैं, या उपनिषद को पढ़ते हैं, या बाइबिल को, या किसी और शास्त्र को, तो क्या आप सोचते हैं, जितने लोग पढ़ते हैं वे सब एक ही बात समझते हैं? निश्चित ही जितने लोग पढ़ते हैं, उतनी ही बातें समझते हैं। शास्त्र से जो आप समझते हैं, वह शास्त्र से नहीं, आपकी ही समझ से आता है। स्वाभाविक है। जितनी मेरी समझ है, जो मेरे संस्कार हैं, जो मेरी शिक्षा है, उसके माध्यम से ही मैं समझ सकूंगा।

तो जब आप गीता को समझ लेते हैं, तो यह मत समझना कि कृष्ण के वचन आपने समझे। आपने अपने ही वचन समझे हैं। इसीलिए शास्त्र में भला सत्य हो, लेकिन शास्त्र के पढ़ने से सत्य उपलब्ध नहीं होता। इसे समझ लेना ठीक से। शास्त्र में भला सत्य हो, लेकिन शास्त्र समझने से सत्य उपलब्ध नहीं होता। हां, सत्य उपलब्ध हो जाए तो शास्त्र समझ में आ जाता है। क्यों?

कृष्ण ने जिस चेतना की स्थिति में वचन कहे हों गीता में, जब तक वैसी चेतना की स्थिति उपलब्ध न हो, कृष्ण के वचन नहीं समझे जा सकते हैं। जो भी आप समझेंगे, वह आपका अपना ही होगा। यही वजह है कि शास्त्रों पर इतना विवाद है। गीता पर हजार टीकाएं हैं। या तो कृष्ण पागल रहे होंगे, अगर उनके एक ही साथ हजार अर्थ हों; या उनका एक ही अर्थ रहा होगा। लेकिन जो हजार-हजार टीकाएं हैं, वे तो कहती हैं, हजार-हजार अर्थ हैं। निश्चित ही ये टीकाएं कृष्ण की गीता पर नहीं, इनके लिखने वालों की बुद्धि की सूचनाएं हैं। ये उनके अपने विचार का प्रतिफलन हैं। अन्यथा हजार अर्थ नहीं हो सकते कृष्ण की गीता में। सच तो यह है कि जितने लोग गीता पढ़ेंगे, उतने ही अर्थ हो जाएंगे। तो जो अर्थ आप समझ रहे हैं, वह गीता का है, इस भूल में मत पड़ना। वह आपका अपना है।

तो जब आप शास्त्र को पढ़ते हैं, आपको सत्य उपलब्ध नहीं होता, जो आप जानते हैं, उसका ही कोई अर्थ उपलब्ध होता है। और वह सत्य नहीं है। कोई सत्य को जान ले तो शास्त्र को समझ सकता है, लेकिन शास्त्र को समझ कर सत्य को नहीं समझ सकता। यही वजह है कि दुनिया के ये सारे धर्मग्रंथ एक ही सत्य को कहते हैं, लेकिन इनके मानने वाले आपस में लड़ते हैं, इनके मानने वालों में विरोध है। दुनिया में सत्य के नाम पर इतने संप्रदाय हैं। सत्य एक है और संप्रदाय अनेक हैं। क्या इससे यह समझ में नहीं आता कि संप्रदाय हम बनाते हैं, सत्य नहीं बनाता? और जैसे-जैसे दुनिया में विचार बढ़ता जाएगा, वैसे-वैसे उतने संप्रदाय हो जाएंगे जितने लोग हैं। क्योंकि विचार हरेक व्यक्ति को अपना मत पैदा करवा देता है।

तो मैंने जो कहा कि शास्त्रों के पढ़ने से सत्य नहीं मिलेगा, उसका अर्थ आप समझ लेना। आप उतना ही समझ सकते हैं जितनी आपकी चेतना की स्थिति है, उससे ज्यादा नहीं। इसलिए शास्त्र पढ़ कर आप अपना ही अर्थ जानते हैं, शास्त्र का अर्थ नहीं जानते। शास्त्र में भला सत्य हो, शास्त्र के अध्ययन से सत्य नहीं मिलेगा।

इसीलिए मैंने कहा कि सत्य को जानने का उपाय अध्ययन नहीं है, ध्यान है। कोई बातें पढ़ कर मस्तिष्क में संगृहीत करके जो स्मृति बन जाती है, वह सत्य नहीं है। वरन सारे विचारों को छोड़ कर जब कोई व्यक्ति निर्विचार हो जाता है, उसके चित्त में कोई विचार नहीं होते, उस निर्विचार अवस्था में उसे जो दिखाई पड़ता है, वही सत्य है। और वह सत्य एक बार अनुभव में आ जाए तो शास्त्रों का कोई प्रयोजन भी नहीं रह जाता। हम उसे स्वयं ही जान लेते हैं, जो कि कोई शास्त्र कहता हो।

मैं समझता हूं कि मेरी बात आपको स्पष्ट हुई होगी।

मैं यहां बोल रहा हूं। मैं बोलने वाला तो एक हूं। मैं जो कह रहा हूं, उसमें भी मेरा प्रयोजन एक ही अर्थ से है। लेकिन क्या आप सोचते हैं, आप जो सुनने वाले हैं, वही सुन रहे हैं जो मैं बोल रहा हूं? अगर आप वही सुन रहे हों और आप सबसे पूछा जाए कि मैंने जो कहा है, क्या कहा है? तो आप सोचते हैं, आप सबका मत एक होगा? वह मत अनेक हो जाएगा। निश्चित ही इसका अर्थ हुआ कि मैंने जो कहा, वही आपने नहीं सुना। मैंने जो कहा, उससे बहुत भिन्न आपने सुना है। आप भिन्न सुनेंगे ही। क्योंकि आपके विचार और आपके संस्कार इतने भिन्न हैं कि मेरी बात आपके भीतर जाकर बिलकुल भिन्न अर्थ ले लेगी। और वह जो भिन्न अर्थ होगा, आप मेरे ऊपर थोपेंगे कि मैंने कहा है। वैसे ही हम कृष्ण के ऊपर अपना अर्थ थोपते हैं, उपनिषद के ऊपर, क्राइस्ट के ऊपर अपना अर्थ थोपते हैं और कहना चाहते हैं कि उन्होंने यह कहा है। इस भ्रम में कभी न पड़ें। आप जो भी कहेंगे, वह आप ही कह रहे हैं, किसी दूसरे के नाम पर उसे न थोपें। और अगर आप सत्य जानने की स्थिति में हैं, तो शास्त्र पढ़ने की कोई जरूरत नहीं। और अगर सत्य जानने की स्थिति में नहीं हैं, तो शास्त्र पढ़ने से कुछ भी नहीं होगा।

इसलिए मैंने कहा, एक आदमी जीवन भर पढ़ता रह सकता है। कितने ही शास्त्र पढ़ता रहे, उससे कुछ भी नहीं होगा। हां, उसके पास बहुत विचार इकट्ठे हो जाएंगे। अगर वह उपदेश देना चाहे तो उपदेश दे सकेगा। और उपदेश देने का जो अहंकार है, जो रस है, वह ले सकेगा। दुनिया में उपदेश देने से बड़ी अहमता और कुछ भी नहीं है। जो रस और जो आनंद उपदेश देने में है, वह किसी और बात में नहीं है। तो शास्त्र पढ़ कर आप उपदेश दे सकेंगे। शास्त्र पढ़ कर चाहें तो दूसरे शास्त्र पैदा कर सकेंगे, दूसरे शास्त्र लिख सकेंगे। यह हो सकता है। लेकिन सत्य से आपका कोई साक्षात नहीं होगा। सत्य के साक्षात के लिए विचार का संग्रह नहीं, विचार का अपरिग्रह, विचार का त्याग, विचार का छोड़ देना जरूरी है। सत्य तो हमारे भीतर है। सत्य तो चारों तरफ मौजूद है, लेकिन हमारे पास देखने की आंख नहीं है।

बुद्ध के जीवन में उल्लेख है। एक गांव में वे गए, कुछ लोग एक अंधे आदमी को लेकर उनके पास आए और उन लोगों ने कहा, यह हमारा मित्र है, इसके पास आंखें नहीं हैं। हम इसे समझाते हैं कि प्रकाश है, सूरज है, लेकिन यह मानता नहीं। यह इनकार करता है। यह अस्वीकार करता है। न केवल यह अस्वीकार करता है बल्कि यह हमें समझाता है कि तुम्हीं

गलत हो और प्रकाश नहीं है। और यह ऐसे-ऐसे तर्क और प्रमाण देता है कि हम हार जाते हैं और यह जीत जाता है। तो सुन कर कि बुद्ध का गांव में आगमन हुआ है, हम इसे आपके पास लाए हैं। आप इसे समझा दें कि प्रकाश है।

बुद्ध ने कहा, मैं इसे कुछ न समझाऊंगा। कुछ मैं तुम्हें समझाऊंगा।

वे मित्र हैरान हुए, उन्होंने कहा, हमें क्या समझाना है? उन मित्रों ने कहा, हम तो इसे कहते हैं, प्रकाश है। तो यह कहता है, मैं उसे छूकर देखना चाहता हूं। क्योंकि जिस चीज की भी सत्ता है, उसे छूकर देखा जा सकता है। हम कहते हैं, प्रकाश है। तो यह कहता है, उसे बजाओ, मैं उसकी आवाज सुनना चाहता हूं। क्योंकि जो भी है, उसे किसी चीज से ठोंका और बजाया जा सकता है। और हम असमर्थ हो जाते हैं।

बुद्ध ने कहा, भूल तुम्हारी है। जिसके पास आंख नहीं है, उसे प्रकाश समझाने की बात ही पागलपन है। प्रकाश समझाया नहीं जाता, प्रकाश देखा जाता है। कोई प्रकाश को समझा नहीं सकता। प्रकाश को देखना होता है। प्रकाश का विचार नहीं होता, प्रकाश का दर्शन होता है। प्रकाश की धारणा नहीं बनानी होती, प्रकाश की अनुभूति होती है। तो तुम इसे समझाते हो, इस बात को जानते हुए कि इसके पास आंखें नहीं हैं, तुम्हीं पागल हो, यह तो ठीक ही कहता है। उचित है कि इसे किसी विचारक के पास नहीं, किसी वैद्य के पास ले जाओ। और इसे उपदेश की नहीं, उपचार की जरूरत है। इसे समझाओ मत, इसकी आंखों का इलाज करो। अगर इसके पास आंखें होंगी, तो तुम्हारे बिना समझाए यह जानेगा कि प्रकाश है। और अगर इसके पास आंखें नहीं हैं, तो तुम्हारे लाख समझाने से भी यह नहीं जान सकता है कि प्रकाश है।

वे उसे वैद्य के पास ले गए। उसकी चिकित्सा हुई। और थोड़े ही दिनों में उसकी आंख की जाली कट गई और वह देखने में समर्थ हुआ। उसने अपने मित्रों से कहा, मुझे क्षमा कर दें। प्रकाश तो था, आंख नहीं थी। तुम कहते थे, वह व्यर्थ हो जाता था। क्योंकि जिसका मुझे अनुभव नहीं था, उस संबंध में कहे गए कोई भी शब्द मेरे लिए सार्थक नहीं हो सकते थे। तुम्हारी बातें मुझे व्यर्थ लगती थीं और मुझे ऐसा लगता था कि तुम प्रकाश की बातें केवल इसलिए करते हो, ताकि तुम मुझे अंधा सिद्ध कर सको। तुम मुझे अंधा सिद्ध करने के लिए प्रकाश की बातें करते हो, यह मेरी समझ में आता था। अब मैं जानता हूं कि प्रकाश है, क्योंकि आंख है।

सत्य का भी विचार नहीं होता, दर्शन होता है। सत्य का भी अध्ययन नहीं होता, अनुभूति होती है। सत्य के लिए भी एक तरह की आंख खोलनी होती है भीतर, तब उसकी प्रतीति होती है। कुछ शास्त्र के पढ़ने से नहीं। एक अंधे आदमी को कितना ही प्रकाश के संबंध में पढ़ाओ और समझाओ, क्या होगा? हो सकता है वह भी उन बातों को दोहराने लगे, लेकिन उससे आंख थोड़े ही खुलेगी! उससे कोई अनुभव थोड़े ही होगा! उससे कोई साक्षात थोड़े ही होगा!

सत्य के लिए भी आंख चाहिए। विचार नहीं, अध्ययन नहीं; साधना, योग। इसलिए कोई शास्त्र सत्य देने में समर्थ नहीं है। और जो शास्त्र नहीं दे सकता, वही साधना से उपलब्ध होता है। इससे यह मत समझ लेना कि मैं कह रहा हूं कि सब शास्त्र गलत हैं। इससे यह मत समझ लेना कि मैं कह रहा हूं कि शास्त्रों में कोई सत्य नहीं है। मैं जो कह रहा हूं वह यह कि शास्त्रों से सत्य उपलब्ध नहीं हो सकता है। मैं जो कह रहा हूं वह यह कि आप उनको पढ़ कर सत्य को नहीं पा सकते हैं। प्रकाश के बाबत ग्रंथ हैं, लेकिन अंधे के लिए व्यर्थ हैं। मैं यह नहीं कह रहा कि उन ग्रंथों में प्रकाश के संबंध में जो लिखा है वह गलत है। लेकिन उससे कोई आंख नहीं खुलती। आंख खोलने का और ही उपचार है। इस बात को ध्यान में रखेंगे तो मेरी बात समझ में आ सकेगी।

आपको कुछ भी पढ़ने से सत्य नहीं मिलेगा। अगर पढ़ने से सत्य मिलता होता तो सत्य के विद्यालय खोले जा सकते थे। कोई कठिनाई न थी। वहां सत्य मिल जाता। लोग पढ़ते और खोज लेते।

विज्ञान अध्ययन से मिल सकता है, धर्म अध्ययन से नहीं मिलता। इसलिए विज्ञान के शास्त्र सहायक हैं और धर्म के शास्त्र बाधक हो जाते हैं। विज्ञान बिना अध्ययन के नहीं मिल सकता। जो भी जड़ के संबंध में है, वह अध्ययन से मिल जाएगा। उसके शास्त्र हो सकते हैं। लेकिन जो चैतन्य के संबंध में है, वह अध्ययन से नहीं मिलेगा। उसकी सिर्फ अनुभूति होती है।

साथ ही इसके और पूछा है कि मनुष्य जन्म से ही ज्ञानी नहीं होता है, उसे तो अध्ययन करना पड़ता है। फिर वह कौन सा अध्ययन कर जीवन सफल बना सकता है?

अभी मैंने जो कहा, उसे अगर आप समझे होंगे, तो मैं कहना चाहूंगा, शास्त्र के अध्ययन से नहीं, जीवन के अध्ययन से जीवन सफल बनता है। जीवन से बड़ा भी कुछ और अध्ययन करने को है? क्या सारे शास्त्र जीवन के अध्ययन से ही नहीं निकले हैं? जिस जीवन के अध्ययन से सबका जन्म होता है, सब विचार का, क्या उचित नहीं है कि उसी जीवन को हम अध्ययन करें, और सेकेंड हैंड, दूसरों के हाथ से आई हुई सूचनाओं को ग्रहण न करें? क्या मुझे प्रेम के संबंध में कोई कुछ कह देगा, तो मैं प्रेम को जान लूंगा? क्या मुझे प्रेम को स्वयं ही नहीं जानना होगा ताकि मैं जान सकूं? क्या मैं किसी दूसरों के प्रेम-अनुभवों से कोई अनुभूति पा सकता हूं? और जब जीवन उपलब्ध है, तो क्या उचित न होगा कि मैं प्रेम को करके ही जानूं? जब जीवन मुझे मिला है, तो मैं जीवन को ही अध्ययन करूं।

तो हम जीवन को तो अध्ययन नहीं करते, हम शास्त्रों को अध्ययन करते हैं। जो कि बिलकुल मृत हैं, जो कि बिलकुल डेड हैं। जीवन सामने है और हम शास्त्रों का अध्ययन करते हैं।

रवींद्रनाथ के जीवन में एक उल्लेख है। वे सौंदर्यशास्त्र का अध्ययन करते थे। एस्थेटिक्स का अध्ययन करते थे। सौंदर्य क्या है, इसकी खोज में थे। बहुत खोजा, बहुत शास्त्र पढ़े। सौंदर्य के बाबत कोई स्पष्ट धारणा नहीं हो पाती थी। एक रात बजरे में थे। पूरी चांद की रात थी, पूर्णिमा थी। नाव पर बजरे में थे। अपनी छोटी सी झोपड़ी में बैठ कर अध्ययन करते थे। सौंदर्यशास्त्र को पढ़ते थे। फिर रात कोई दो बजे थक गए। किताब बंद की, दीया बुझाया और अपनी कुर्सी पर लेट रहे। लेटते ही बाहर खिड़की के दृष्टि गई। खिंचे हुए खिड़की पर आकर खड़े हो गए और कहने लगे: मैं कैसा पागल हूं, सौंदर्य बाहर मौजूद है और मैं शास्त्र में उसका अध्ययन कर रहा हूं! सौंदर्य बाहर मौजूद था और मैं उसका शास्त्र में अध्ययन कर रहा था।

सौंदर्य निरंतर मौजूद है, लेकिन कुछ पागल हैं, जो शास्त्र में उसका अध्ययन करने जाते हैं। प्रेम निरंतर मौजूद है, लेकिन कुछ पागल हैं, जो प्रेम का भी अध्ययन शास्त्र में करने जाते हैं। परमात्मा निरंतर मौजूद है, लेकिन कुछ पागल हैं, जो कि उसका अध्ययन करने शास्त्र में जाते हैं। जीवन चारों तरफ जो है, वह क्या है? क्या प्रतिक्षण वहां परमात्मा और प्रतिक्षण वहां सत्य और सत्ता नहीं है? वहां है। लेकिन हम उसे देखने को न तो तैयार हैं, न देखने की इच्छा है, न देखने की भीतर भूमिका है।

मैं आपसे कहूं कि आप जीवन को देख ही नहीं पाते और जीवन से गुजर जाते हैं।

आप कहेंगे, कैसी बात मैं कर रहा हूं? दिन-रात जीते हैं; सुबह से शाम तक जीते हैं; शाम से सुबह तक जीते हैं; चौबीस घंटे जीते हैं। और मैं कह रहा हूं कि आप जीवन को बिना जाने निकल जाते हैं!

निश्चित, मैं आपसे कह रहा हूं, आप जीवन को बिना जाने निकल जाते हैं। और इसीलिए तो सारे सवाल उठते हैं कि ईश्वर है या नहीं? अगर जीवन से परिचित हो जाते तो ईश्वर मिल जाता। इसीलिए सवाल उठते हैं कि आत्मा है या नहीं? इसलिए सवाल इसमें पूछा हुआ है कि पुनर्जन्म होता है या नहीं? जो जीवन को जान लेगा, उसके लिए मृत्यु विलीन हो जाती है। मृत्यु हो ही नहीं सकती। लेकिन हम जीवन को जानते नहीं। क्या आप सारे लोग, क्या हम सारे लोग मृत्यु से घबड़ाए हुए नहीं हैं? अगर हम जीवन को जान लेते तो मृत्यु से कैसे घबड़ाते? जीवन की क्या कोई मृत्यु हो सकती है? और जिसकी मृत्यु हो जाए, उसे क्या हम जीवन कहेंगे? जो जीवन है, उसकी कोई मृत्यु नहीं है। जो जीवन है, उसका कोई अंत नहीं है। लेकिन हम जीवन से परिचित भी नहीं हैं।

और हम जीवन से परिचित क्यों नहीं हैं?

हम जीवन से इसलिए परिचित नहीं हैं कि जीवन हमेशा वर्तमान में होता है, और हम? हम या तो अतीत में होते हैं या भविष्य में होते हैं। जीवन हमेशा वर्तमान में है। समय के ये तीन खंड हैं--अतीत है, जो बीत गया; भविष्य है, जो अभी नहीं आया; और वर्तमान का छोटा सा क्षण है, जो मौजूद है। वह जो लिविंग प्रेजेंट है, वह जो जीवित वर्तमान का क्षण है, उसमें हम कभी नहीं होते। वह बहुत छोटा सा क्षण है। इसके पहले कि हम होश में

आएं, वह अतीत हो जाएगा। लेकिन हमारा चित्त या तो अतीत में होता है, या तो हम पीछे की बातें सोचते रहते हैं, या हम आगे की बातें सोचते रहते हैं। इसलिए उससे वंचित रह जाते हैं, जो है, जो इसी क्षण है।

मैं एक अपने मित्र को लेकर, एक नाव पर उन्हें बिठा कर पहाड़ियों को दिखाने और नदी की यात्रा को ले गया। वे दूर से बाहर के मुल्कों से घूम कर लौटे थे। बड़े कवि थे। बहुत उन्होंने यात्रा की है। बहुत नदियां, बहुत पहाड़ देखे हैं। बहुत प्रकार के सुंदर स्थानों में वे घूमे हैं। मैं उन्हें घुमाने ले गया। वे मुझसे बोले, वहां क्या होगा? मैं तो बहुत झीलें, बहुत सुंदर पहाड़, बहुत प्रपात देखा हूं। मैंने कहा, फिर भी चलें। क्यों? क्योंकि मेरी मान्यता है कि हर चीज का अपना सौंदर्य है और किसी सौंदर्य की किसी दूसरे सौंदर्य से कोई तुलना नहीं हो सकती। क्योंकि इस जगत में हर चीज अनूठी है और कोई चीज दूसरी चीज जैसी नहीं है। एक छोटा सा कंकड़ का टुकड़ा भी अपने में यूनीक है, बेजोड़ है। आप सारी जमीन खोज लें, तो उस जैसा दूसरा टुकड़ा नहीं मिलेगा। एक छोटा सा फूल भी अपने में बेजोड़ है। वैसा दूसरा फूल पूरी जमीन पर खोजने से नहीं मिलेगा। लेकिन, मैंने उनसे कहा, चलें। जो छोटी सी पहाड़ियां हैं और छोटी सी नदी है, उसको ही देख लें।

मैं उन्हें लेकर गया। दो घंटे तक हम उन पहाड़ियों में, उस नदी के किनारे पर, नाव में सब तरफ घूमे। वे स्विटजरलैंड की झीलों की बातें करते रहे। कश्मीर की झीलों की बातें करते रहे। मैं सुनता रहा। फिर जब हम वापस लौटे दो घंटे बाद, तो उन्होंने कहा, बड़ी सुंदर जगह थी। मैंने उनके मुंह पर हाथ रख दिया। मैंने कहा, मत कहें। क्योंकि वहां मैं अकेला ही गया था। आप वहां नहीं गए। आप वहां नहीं थे, मैं ही वहां था, आप वहां नहीं थे। बोले, यह क्या आप बात कर रहे हैं? मैं आपके साथ हूं और दो घंटे वहां घूमा। मैंने कहा, आप मेरे साथ दिखाई पड़ते थे। आप मेरे साथ नहीं थे। आपका चित्त स्विटजरलैंड में रहा होगा, कश्मीर में रहा होगा, लेकिन ये जो छोटी सी पहाड़ियां हैं, यह जो छोटी सी नदी है, इसमें नहीं था। आप मौजूद नहीं थे। जो आपके सामने था, वह आपको दिखाई नहीं पड़ रहा था। स्मृति पीछे चल रही थी और स्मृति की फिल्म के कारण, जो मौजूद था, वह छिप गया था। फिर मैंने उनसे कहा, और अब मैं यह भी समझ गया कि स्विटजरलैंड की झीलों के बाबत जो आप कहते हैं, वह भी झूठ होगा। क्योंकि जब आप उन झीलों पर रहे होंगे, तो मन कहीं और रहा होगा। क्योंकि मैं आपके मन की आदत को समझ गया।

यह हमारे सबके मन की आदत है। हम जहां हैं, मन वहां नहीं है। जहां हम नहीं हैं, वहां मन है। इस भांति हम जीवन से वंचित रह जाते हैं। या तो हम अतीत के संबंध में सोचते रहते हैं और या भविष्य के संबंध में सोचते रहते हैं। दोनों ही स्थितियों में, जो मौजूद है, वह हमसे चूक जाता है। उससे हम वंचित हो जाते हैं।

और मैंने कहा, जीवन सदा वर्तमान में है। न तो अतीत में कोई जीवन है और न भविष्य में कोई जीवन है।

यह जो हमारा चित्त है, यह जो हमारा मन है, यह जो निरंतर अतीत में और भविष्य में घूमता है, इसके कारण हम जीवन की जो निरंतर, जो निरंतर धारा है, उससे अपरिचित रह जाते हैं। तो जीवन का अध्ययन करिए। मन को अतीत में मत जाने दीजिए। मन को व्यर्थ भविष्य में मत भटकने दीजिए। उसे लाइए। जो मौजूद है, वहां मौजूद करिए। अगर चांद के पास नीचे बैठे हैं, तो थोड़ी देर को चांद के पास ही रह जाइए और मन के सारे अतीत और भविष्य के चिंतन को छोड़ दीजिए। अगर फूल के पास बैठे हैं, तो थोड़ी देर फूल के पास ही रह जाइए और मन के सारे चिंतन को छोड़ दीजिए। जीवन को देखिए और चिंतन को छोड़ दीजिए। और आप हैरान हो जाएंगे, जिसे शास्त्रों में खोजते हैं, वह निरंतर हाथ के पास मौजूद है। जिसे शास्त्रों में नहीं पा सकेंगे, वह निरंतर निकट है। लेकिन हम अनुपस्थित हैं। स्मरण रखें, सत्य सदा उपस्थित है, हम अनुपस्थित हैं। परमात्मा निरंतर उपस्थित है, लेकिन हम उसके प्रति उन्मुख नहीं हैं। हमारी आंखें बंद हैं या कहीं और भटकी हुई हैं।
मैं कहूंगा, अध्ययन जरूर करिए, लेकिन जीवन का। और जीवन के अध्ययन की शर्त है: विचार को छोड़ कर जीवन को देखिए।
कभी आपने किसी चेहरे को देखा है बिना विचार के? कभी आपने कोई आंखें देखी हैं बिना विचार के? कभी आपने आंख उठा कर ऊपर सूरज को देखा है बिना विचार के? कभी आपने सागर को देखा है बिना विचार के? कोई पहाड़, कोई पर्वत, कोई फूल, कोई दरख्त, कोई सड़क, राह पर चलते हुए लोग, कोई कभी देखे हैं बिना विचार के? अगर नहीं देखे तो जीवन से कैसे परिचित होंगे? आप अपने विचार से घिरे रहेंगे। जीवन बहा जाता है।
विचार को छोड़ दें और देखें; विचार को तोड़ दें और देखें; विचार को रुक जाने दें और देखें; तब जो आपको दिखाई पड़ेगा, वह जीवन है। और वह जीवन, उससे बड़ा कोई अध्ययन नहीं, उससे बड़ा कोई शास्त्र नहीं। सब शास्त्र मिट जाएं, सब शास्त्र नष्ट हो जाएं, तो भी सत्य नष्ट नहीं होगा। वह तो निरंतर मौजूद है। और शास्त्र ही शास्त्र बढ़ जाएं...और बहुत बढ़ रहे हैं। मैं सुनता हूं कि सारी दुनिया में कोई पांच हजार ग्रंथ हर सप्ताह छप जाते हैं। हर सप्ताह पांच हजार ग्रंथ! थोड़े दिनों में तो क्या स्थिति होगी! आदमी का रहना मुश्किल हो जाएगा, इतनी किताबें होंगी। और इन सारी किताबों के बावजूद क्या हो रहा है? आदमी कहां है? आदमी रोज गिरता जा रहा है। किताबें बढ़ती जा रही हैं और आदमी सिकुड़ता जा रहा है। किताबें बढ़ती जाएंगी, आदमी छोटा होता जाएगा। धीरे-धीरे किताबों के पहाड़ हो जाएंगे और आदमी का ज्ञान? आदमी का ज्ञान शून्य होता जा रहा है। शास्त्र से नहीं, शब्द से नहीं, जीवन के प्रति सजग होने से, जागने से।
तो मैंने कहा, मैं समझता हूं, मेरी बात समझ में आई होगी। अध्ययन ही करना है, तो जीवन का करें। जीवन तो परमात्मा की खुली किताब है। लोग कहते हैं, परमात्मा ने वेद लिखे। लोग कहते हैं, परमात्मा ने कुरान भेजी। लोग कहते हैं, परमात्मा ने अपना पुत्र भेजा और क्राइस्ट ने बाइबिल लिखवाई। ये सब पागलपन की बातें हैं। परमात्मा ने तो एक ही किताब लिखी है, वह जिंदगी की किताब है। और तो कोई किताब परमात्मा की लिखी

हुई नहीं है। और सब किताबों पर आदमी के हस्ताक्षर हैं। और सब किताबें आदमी के हाथ की हैं। एक ही किताब है जीवन की, जो परमात्मा की है। अगर वेद ही कहना है तो उसे कहें; अगर कुरान ही कहना है तो उसे कहें; अगर बाइबिल ही कहनी है तो उसे कहें। वह जो जीवन, जो परमात्मा की किताब है, उसे अध्ययन करें, उसे जानें, उसे पहचानें और बीच में किताबों को न आने दें। बीच में किताबें आ जाएंगी, तो जीवन को अध्ययन करने से आप वंचित हो जाएंगे। बीच में कोई किताब न आने दें और सीधे जीवन को देखें। परमात्मा के पास जाना है तो किताबें लेकर जाने की कौन सी जरूरत है? वह कोई स्कूल थोड़े ही है? वहां किताबों का भार ले जाने की क्या जरूरत है?

लेकिन कोई आदमी रामायण को लिए खड़ा है परमात्मा के बीच में; कोई बाइबिल को लिए; कोई कुरान को लिए; कोई वेद को लिए। यह किताब काफी मोटी है, यह परमात्मा से नहीं मिलने देगी। इसे फेंकें। परमात्मा सीधा मिल सकता है तो किताब को क्यों बीच में लिए हैं? यह किताब को क्यों बीच में डाल रहे हैं? बीच में किसी को भी लेने की कोई जरूरत नहीं है--न किताब को, न गुरु को, न तीर्थंकर को, न अवतार को, न ईश्वर-पुत्र को--किसी को बीच में लेने की जरूरत नहीं है। जो बीच में ले लेगा, वह वंचित हो जाएगा।

एक छोटी सी कहानी मुझे स्मरण आती है।

एक सूफी फकीर हुआ। उसने एक रात स्वप्न देखा। उसने एक रात स्वप्न देखा कि वह अचानक स्वर्ग में पहुंच गया है। परमात्मा की बस्ती में पहुंच गया है। और वहां बड़े जोर से कोई उत्सव मनाया जा रहा है। रास्तों पर बड़ी भीड़ें हैं, बड़े प्रकाश हैं, बड़ी झंडियां हैं, बड़ा आलोक है, रास्ते बड़े सजाए गए हैं, कुछ हो रहा है, कोई बड़ा उत्सव है। वह राह के किनारे खड़ा हो गया और उसने पूछा, यह क्या हो रहा है? जो भीड़ वहां इकट्ठी थी, करोड़ों-करोड़ों लोगों की भीड़ थी, उस भीड़ में उसने किसी से पूछा, यह क्या हो रहा है? उन्होंने कहा, परमात्मा की सवारी निकल रही है, आज उसका जन्म-दिन है। उसने कहा, बड़े भाग्य कि मैं यहां आ गया और आज मुझे यह अवसर मिल गया कि मैं इसे देख लूं।

फिर एक बहुत बड़ी भीड़, एक बहुत बड़ा जुलूस निकला और एक घोड़े पर भगवान बुद्ध बैठे हुए थे और करोड़ों-करोड़ों लोग उनके पीछे थे। उसने पूछा, क्या भगवान की सवारी आ गई? उन्होंने कहा, नहीं, यह तो बुद्ध की सवारी है और उनके अनुयायी उनके पीछे हैं। फिर राम की सवारी थी; फिर महावीर की थी; फिर क्राइस्ट की थी; फिर कृष्ण की थी; फिर मोहम्मद की थी और सबके पीछे करोड़ों-करोड़ों लोग थे। और वह आदमी बोला, भगवान की सवारी कहां है? लोगों ने कहा, ये तो अभी उनके अवतारों की सवारियां निकल रही हैं, उनके प्रेमी जा रहे हैं। उसने सोचा: जब इनकी सवारियों में करोड़ों-करोड़ों लोग हैं, तो भगवान की सवारी में क्या नहीं होगा हाल? आखिर में जब कि सारा जलसा निकल गया और कोई नहीं दिखाई पड़ता था, तो एक बिलकुल मरे से घोड़े पर एक बूढा आदमी बैठा है। और उसने कहा कि अभी तक भगवान की सवारी नहीं आई? लोगों ने कहा, यह जो आ रही है, भगवान की सवारी है। इनके साथ कोई भी नहीं है। ये बिलकुल अकेले पड़ गए हैं,

क्योंकि बाकी सारे लोग--कोई राम के साथ है; कोई कृष्ण के साथ है; कोई महावीर के; कोई बुद्ध के; कोई क्राइस्ट के; कोई मोहम्मद के--इनके साथ कोई भी नहीं है, ये बहुत अकेले पड़ गए हैं। इनकी सवारी अकेली ही जा रही है। वह जन्म-दिन उन्हीं का है, उनकी सवारी बिलकुल अकेली है।

ऐसा ही हुआ है। किताबें और गुरु और अवतार और ईश्वर-पुत्र बीच में आ गए हैं। जब कि परमात्मा से कोई भी संपर्क अगर हो सकता है तो सीधा हो सकता है। प्रेम का कोई भी संपर्क सीधा हो सकता है। बीच में कोई आदमी नहीं हो सकता प्रेम में।

अब मैं किसी को प्रेम करूं और एक आदमी बीच में हो, प्रेम कैसे होगा? और मैं प्रार्थना करूं और एक आदमी बीच में हो, तो प्रार्थना कैसे होगी? मैं किसी को प्रेम करूं और कोई बीच में एक आदमी हो, एजेंट हो, तो कैसे प्रेम होगा? प्रेम तो सीधा होगा। वहां बीच में कोई नहीं हो सकता। प्रार्थना भी प्रेम है। वह अपरिसीम प्रेम है। वह भी सीधी होगी। वहां भी कोई बीच में नहीं हो सकता--न कोई किताब, न कोई शब्द, न कोई गुरु। जो भी बीच में है, उसे हटा दें। कृपा करें, उसे हटा दें। अगर परमात्मा तक या सत्य तक पहुंचना है, तो बीच से सबको हटा दें। आप काफी हैं। अकेले काफी हैं। और जीवन को अध्ययन करें, और जीवन को जानें। और जीवन से जो मिलेगा, वही सत्य है। और जीवन से जो मिलेगा, वही जीवंत है। जीवन से जो मिलेगा, वही मुक्त करता है।

एक प्रश्न पूछा है कि हठयोग से समाधि लेकर साधना की जाए या राजयोग को लेकर या किसी और को लेकर?

समाधि भी कोई बहुत प्रकार की होती है? कि हठयोग की समाधि कोई अलग होती है और राजयोग की समाधि कोई अलग होती है?

हम तो हर चीज में विभाजन किए हुए हैं और हर चीज में लेबल लगाए हुए हैं। हर चीज में ग्रेडेशन किए हुए हैं। वह दुकान की आदत है न दिमाग में। बाजार की आदत है। वहां हर चीज पर लेबल है। हर चीज का अलग-अलग डिब्बा है। हर चीज का अलग-अलग खांचा है। वही हमारा धर्म के बाबत भी है। वही हमारा हर चीज के बाबत है। हर चीज में हम सोचते हैं कि चीजें अलग-अलग होंगी।

एक बाउल साधु हुआ बंगाल में। वह वैष्णव साधु था। बाउल तो प्रेम की बात करते हैं। वे तो कहते हैं कि प्रेम ही सब कुछ है। वही परमात्मा है। एक बहुत बड़ा पंडित उसके पास गया। उस पंडित ने कहा कि कितने प्रकार का प्रेम होता है मालूम है?

उस बाउल ने कहा, प्रेम और प्रकार! मैंने कभी सुना नहीं। प्रेम तो हम जानते हैं, प्रकार हम नहीं जानते।

तो उसने कहा, कुछ भी नहीं जाना। जीवन तुम्हारा व्यर्थ गया। हमारे शास्त्र में प्रेम पांच प्रकार का लिखा हुआ है। और तुम्हें यह भी पता नहीं है कि कितने प्रकार का प्रेम होता है, तो तुम प्रेम क्या जानोगे!

वह साधु बोला, जब शास्त्र में लिखा है तो ठीक ही लिखा होगा। मैं ही गलत होऊंगा। लेकिन मैं तो प्रेम को ही जानता हूं, प्रकार को नहीं जानता। फिर भी तुम कहते हो तो मैं सुन लूं। तुम्हारे शास्त्र को मुझे सुना दो।

तो उस पंडित ने अपने शास्त्र को खोला और बताया कि कितने प्रकार का प्रेम होता है। सब समझाया। जब वह पूरी बात समझा चुका, तो उसने फकीर से पूछा कि समझे कुछ? क्या प्रभाव पड़ा?

वह बाउल हंसने लगा और उसने कहा, क्या प्रभाव पड़ा? जब तुम शास्त्र को पढ़ने लगे तो मुझे ऐसा लगा, मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई सुनार सोने के कसने के पत्थर को लेकर फूलों की बगिया में आ गया है और फूलों को उस पत्थर पर कस-कस कर देख रहा है कि कौन सा फूल असली, कौन सा फूल नकली। मुझे ऐसा लगा। उसने कहा, पागल! प्रेम के कहीं प्रकार हुए हैं? और जहां प्रकार हैं, वहां कोई प्रेम होगा?

प्रेम तो बस एक है। समाधि भी बस एक है। कोई पच्चीस तरह की समाधि नहीं होती। बीमारियां बहुत तरह की होती हैं, खयाल रखें, स्वास्थ्य एक ही प्रकार का होता है। अशांतियां बहुत प्रकार की होती हैं, शांति एक ही प्रकार की होती है। तो असमाधान बहुत प्रकार के होते हैं, लेकिन समाधि एक ही प्रकार की होती है। लेकिन जो किताबी जिनके दिमाग हैं, वे विभाजन कर लेते हैं। वे विश्लेषण कर देते हैं कि यह इस प्रकार की--यह राजयोग की, यह हठयोग की, यह फलां योग की, यह भक्तियोग की। कोई योग-वोग नहीं है। सिर्फ एक ही योग है। यह सारा का सारा पंडित का विभाजन है, यह कोई साधक की दृष्टि नहीं है। और पंडित को मजा आता है विश्लेषण करने में। अगर शास्त्रों को पढ़िए, तो कैसे बारीक विश्लेषण हैं। हवा में सारी की सारी बातें हैं और उनके खूब विश्लेषण हैं, खूब विभाजन हैं। पर कुछ पागल होते हैं जो विभाजन और विश्लेषण से बहुत प्रभावित होते हैं और समझते हैं कि यह कोई खास बात है।

जीवन में कोई विभाजन नहीं है, कोई विश्लेषण नहीं है। जीवन इकट्ठा है। और समाधि भी एक है। क्या है समाधि का अर्थ? समाधि का अर्थ है: चित्त का इतना शांत हो जाना कि वहां कोई असमाधान न रह जाए, वहां कोई अशांति न रह जाए। चित्त का ऐसा शून्य हो जाना कि चित्त में कोई क्रिया न रह जाए, चित्त में कोई विकार न रह जाए, कोई असंतोष न रह जाए। चित्त ऐसी समता की स्थिति को पा जाए कि वहां कोई हलन-चलन, कोई मूवमेंट, कोई गति न हो। तो उस परम शांत स्थिति में जो जाना जाएगा, वह सत्य होगा। समाधि सत्य का द्वार है।

समाधि के कोई प्रकार नहीं होते और न योग के कोई प्रकार होते हैं। लेकिन हमारे विभाजन हैं, बंटे हुए, शास्त्रों के। उनको हम पकड़ लेते हैं और सोचते हैं ये प्रकार होंगे।

कोई प्रकार नहीं हैं। उसकी मैं चर्चा कल करूंगा। जब हम चित्त की शून्यता का विचार करेंगे तो समाधि का भी विचार करेंगे। तब समझाने की मैं कोशिश करूंगा कि मेरी बात आपके खयाल में आ जाए।

जीवन में ये चीजें एक ही हैं। और अगर अनेक दिखती हों, तो जरूर हमारी कोई देखने में भूल है। जरूर हमारी कोई भूल है। और इन अनेकों के नाम से फिर अनेक पंथ बनते हैं और संप्रदाय बनते हैं। उनके समर्थक खड़े होते हैं और विरोधी खड़े होते हैं। और एक कोलाहल मच जाता है सारी दुनिया में। और सत्य तो दूर रह जाता है, सत्य के संबंध में जो मत होते हैं, उनके विवाद घेर लेते हैं।

एक साधु को किसी ने जाकर पूछा था कि मैं सत्य को जानना चाहता हूं। तो उस साधु ने कहा, तुम सत्य को जानना चाहते हो या सत्य के संबंध में? उसने पूछा कि तुम सत्य को जानना चाहते हो या सत्य के संबंध में? अगर सत्य के संबंध में जानना है तो कहीं और जाओ। बहुत हैं बताने वाले, जो सत्य के संबंध में बता देंगे। और अगर सत्य को जानना है तो फिर यहां रुक जाओ। लेकिन सत्य के संबंध में दुबारा प्रश्न मत पूछना।

वह तो बहुत घबड़ा गया। एक तो रास्ता यह है कि सत्य के संबंध में जानना हो तो कहीं और जाओ। बहुत हैं बताने वाले। लेकिन सत्य को ही जानना हो तो फिर यहां रुक जाओ। फिर दुबारा मत पूछना सत्य के बाबत। उसने कहा, मैं राजी हूं। मैं तो सत्य को ही जानने को आया हूं। रुक जाता हूं।

उस साधु ने कहा, इस आश्रम में पांच सौ भिक्षु हैं। इनका रोज चावल बनता है। तुम जाओ और किचन के पीछे के झोपड़े में जीवन गुजारो, और रोज चावल कूटो, और कुछ मत करना। न तो किसी से ज्यादा बात करने की जरूरत है, न चीत करने की जरूरत है। और न तुम्हें हम वस्त्र देंगे साधु के। तुम तो सिर्फ चावल कूटो। और एक ही बात का खयाल रखना कि चित्त जब चावल कूटे तो सिर्फ चावल कूटे, और कुछ न करे। बस चावल ही कूटो। जब थक जाओ तो सो जाओ, जब जाग जाओ तो चावल कूटो। और दुबारा मेरे पास मत आना। जरूरत होगी तो मैं आ जाऊंगा।

वर्ष बीते, दो वर्ष बीते, तीन वर्ष बीते। वह आदमी चावल कूटता था, कूटता ही रहा। कोई आश्रम में पता भी नहीं कि वहां भी कोई चावल कूट रहा है। आश्रम में लोग विचार कर रहे हैं कि समाधि क्या है? सत्य क्या है? चर्चाएं हो रही हैं। शास्त्र पढ़े जा रहे हैं। और एक आदमी है जो सिर्फ चावल कूट रहा है वहां पीछे। उसे कोई शास्त्र से मतलब नहीं है। वह किसी से बात नहीं करता। उसे सारे आश्रम के पांच सौ भिक्षु हैं, वे एक मूढ़ समझते हैं कि मूढ़ है, पागल है। वह अपने चावल ही कूटता है। वह कोई नौकर-चाकर है, क्या है, धीरे-धीरे लोग उसको भूल गए। ऐसे आदमी को कौन याद रखता है? जो कोलाहल करें, उपद्रव करें, उन्हें कोई याद रखता है। वह बेचारा शांत वहां पीछे चावल कूटता था। उसे कौन याद रखता? उसे सारे लोग भूल गए। वह है भी, यह भी खयाल में नहीं रहा। जैसे और सब चीजें थीं, वैसा वह भी था।

ऐसे कोई दस वर्ष बीत गए। न वह किसी से बात करता है, न वह किसी से चीत करता है। वह अपना चावल कूटता है, सो जाता है। कुछ दिन तक पुराने विचार मन में घूमते रहे। तो चावल कूटता था, नये विचारों की उत्पत्ति नहीं होती थी। नये विचार इकट्ठे नहीं करता था।

पुराने विचार कब तक घूमते? वह तो अपना चावल कूटता। ध्यान उसी पर रखता कि उसका मूसल ऊपर गया तो ऊपर चित्त जाता, मूसल नीचे गया तो चित्त नीचे जाता। चावल को उठाता तो चित्त चावल को उठाता; चावल को रखता तो चित्त चावल को रखता। भोजन करता तो चित्त भोजन करता; सो जाता तो सो जाता। ऐसे बारह वर्ष बीत गए। और बारह वर्षों में उस आश्रम में न मालूम कितने पंडित हो गए लोग, बारह वर्षों में कितना ज्ञान इकट्ठा कर लिया और वह बेचारा अज्ञानी वही अज्ञानी बना रहा।

बारह वर्षों के बाद गुरु वृद्ध हुआ और उसने कहा कि अब मैं दो-चार दिनों में अपना जीवन छोड़ दूंगा, तो मैं चाहता हूं कि किसी को मैं अपनी जगह बिठा दूं। तो जो योग्य हो, वह मेरी जगह बैठ जाएगा। तो उसने कहा कि ऐसा करो, परीक्षा के लिए तुम आकर मुझे एक कागज पर चार पंक्तियों में, सत्य क्या है, लिख कर दे जाओ। जिसका उत्तर मुझे ठीक लगेगा, अनुभव से आया है, उसको मैं बिठा दूंगा। वह मेरी जगह होगा। और याद रखना, मुझे धोखा नहीं दे सकते हो। शास्त्र के उत्तर को मैं पहचान लूंगा कि शास्त्र से कौन सा उत्तर आ रहा है और स्वयं से कौन सा उत्तर आ रहा है। धोखा देने की कोशिश मत करना।

उस गुरु को लोग जानते थे कि वह जानता है, उसे धोखा नहीं दिया जा सकता। बहुत मुश्किल से एक आदमी ने हिम्मत की, जो वहां सर्वाधिक ज्ञानी समझा जाता था आश्रम में, उसने हिम्मत की। लेकिन उसकी भी हिम्मत न हुई कि सीधा जाकर गुरु को दे दे। वह भी चोरी से रात में उसके झोपड़े की दीवाल पर लिख आया। उसने चार पंक्तियां लिखीं। उसने लिखा...चार पंक्तियां उस दीवाल के ऊपर वह लिख आया और भाग आया, अपने दस्तखत भी नहीं किए। क्योंकि हो सकता है वे शास्त्र से ही हों। शक तो उसे खुद भी था, क्योंकि अनुभव तो उसे कुछ था नहीं। उसने लिखा कि चित्त एक दर्पण की भांति है, जिस पर विकार की और विचार की धूल जम जाती है। उस धूल को हम झाड़ दें, सत्य के दर्शन हो जाएंगे।

ठीक ही लिखा। लेकिन गुरु ने सुबह से ही उठ कर कहा कि यह किस पागल ने दीवाल खराब कर दी?

हम भी कहते कि यह ठीक ही लिखा। लेकिन उस गुरु ने कहा, यह किस पागल ने दीवाल खराब कर दी? पकड़ो, किसने यह लिखा है! वह तो अपने दस्तखत भी नहीं कर गया था। वह तो छिप रहा कि कोई कह न दे कि मैंने लिखा है। क्योंकि गुरु ने कहा, यह सब शास्त्र की बकवास है। यह किसी किताब से सीख लिया है इस आदमी ने।

यह खबर पूरे आश्रम में फैल गई। वह जो चावल कूटने वाला था, उसके पास से भी दो भिक्षु निकलते थे। उन्होंने कहा कि देखा, कितना अदभुत वचन लिखा! लिखा कि मन दर्पण की तरह है, धूल जम जाती है विकार की और विचार की। उसे झाड़ दें, तो दर्पण में सत्य दिखाई पड़ने लगेगा। इतना अदभुत वचन लिखा और गुरु उसको भी इनकार कर दिया। अब क्या होगा? क्या गुरु की जगह खाली रहेगी?

वह आदमी चावल कूट रहा था। वह चावल कूटते से हंसा।

उसे तो कभी किसी ने हंसते भी नहीं देखा था। तो उन्होंने पूछा, तुम क्यों हंस रहे हो?
उसने कहा, यूं ही हंसी आ गई।
फिर भी कोई हंसने की वजह?
उसने कहा, गुरु ने ठीक ही कहा है। दीवाल खराब कर दी।
उसे तो कभी किसी ने बोलते नहीं सुना था। उसने कहा, पागल, क्या तुमको भी पता है कि क्या ठीक है?
उसने कहा, मैं लिखना भूल गया हूं। मैं बोले देता हूं, तुम लिख दो।
उसने बोला। उसने कहा: मन का कोई दर्पण ही नहीं, धूल जमेगी कहां? जो इस सत्य को जानता है, वह सत्य को जानता है। उसने कहा: मन का कोई दर्पण ही नहीं, धूल जमेगी कहां? जो इस सत्य को जानता है, वह सत्य को जानता है। लिख दो।
और गुरु भागा आया और उसके पैरों पर गिर पड़ा कि ठीक इस दिन की प्रतीक्षा थी। आशा केवल तुमसे थी।
यह समाधि को उपलब्ध हुआ व्यक्ति। वे शास्त्र को पढ़ने वाले लोग शास्त्र पढ़ रहे हैं। यह व्यक्ति समाधि को उपलब्ध हुआ।
समाधि तो एक ही है कि किसी भी भांति विचार धीरे-धीरे, धीरे-धीरे शून्य हो जाएं। मन धीरे-धीरे, धीरे-धीरे विलीन हो जाए। और जो शेष रह जाएगा मन के विलीन हो जाने पर, वही है। कहीं से और किसी भी भांति कोई सत्य पर पहुंच जाए, वह समाधि को उपलब्ध हो गया। पर समाधि का मूल सार इतना है कि विचार और मन शून्य हो जाए और तब जो शेष रह जाए वही, वही है आत्मा, वही है सत्य, वही है परमात्मा, वही है समाधि। और जो नाम देना चाहें दें। नाम देने से कोई अंतर नहीं पड़ता है।

ज्ञान, सत्य-दर्शन, ईश्वर-दर्शन, क्या इन सबका एक ही अर्थ है?

बिलकुल एक ही अर्थ है। लेकिन अगर पंडितों से पूछिएगा, वे कहेंगे, बिलकुल अलग-अलग अर्थ हैं। वे कहेंगे, ईश्वर? जैन कहेगा, ईश्वर तो होता ही नहीं। आप कहेंगे, आत्मा। बौद्ध कहेंगे, आत्मा? आत्मा तो होती ही नहीं। आप कहेंगे, सत्य। कोई कहेगा, सत्य? सत्य तो कहा ही नहीं जा सकता। आत्मा या सत्य या ईश्वर, ऐसा लगेगा अलग-अलग हैं। जो है उसका कोई नाम नहीं है। नाम तो कामचलाऊ हैं। कोई भी नाम हम दे दें।
आपका जो नाम है, आप समझते हैं, वह आपका नाम है? किसी भी चीज का जो नाम है, आप समझते हैं, वह उसका नाम है? नाम तो दिया हुआ है। लगाया हुआ है। कामचलाऊ है। आपको अगर राम किसी ने कह दिया है मां-बाप ने, तो आप राम हो गए हैं। तो आप सोचते हैं, राम आपका नाम है? आप कोई नाम लेकर पैदा हुए हैं? आप कोई नाम लेकर मरेंगे? यह लेबल तो लगाया हुआ है ऊपर से। बिलकुल साधारण है। जरा भी इसमें चिपकान नहीं है। जरा ही खींच दें, निकल जाएगा। इसमें कोई दिक्कत नहीं है। चाहें अदालत में जाएं, एक रुपया जमा करें, नाम बदल लें।

नाम कोई अर्थ नहीं रखता। किसी का कोई भी नाम नहीं है। सब अनाम हैं। नाम मनुष्य की ईजाद है। मनुष्य की कुछ ईजादें हैं, उनमें नाम भी उसकी ईजाद है। और सबसे खतरनाक ईजाद है, लेकिन बड़ी जरूरी है। इसलिए उसको करना पड़ता है। किसी का कोई भी नाम नहीं है। तो जो है, वह जो टोटेलिटी है, वह जो समग्र सत्ता है, सारे जगत की जो सत्ता है, उसका भी कोई नाम कैसे होगा?

तो हम अपने बच्चों के नाम रखते हैं। बुद्धि हमारी गड़बड़ है। नाम रखने की आदत है। अब तो हम मकानों के भी नाम रखते हैं। भगवान का भी नाम रखते हैं। वही आदत। बच्चों का नाम रखते हैं; मकानों का नाम रखते हैं; सड़कों का नाम रखते हैं; चौगड्डों का नाम रखते हैं; भगवान का भी नाम रखते हैं। नाम रखने की आदत हमारे मन में है, क्योंकि बिना नाम के हम कैसे पहचानेंगे किसी को भी! इसलिए उसका भी कोई नाम रखते हैं। और फिर नामों पर लड़ते हैं, क्योंकि दूसरा कोई दूसरा नाम रख देता है, तीसरा कोई तीसरा नाम रख देता है।

वह ऐसा ही मामला है कि एक बच्चा हो और तीन-चार उसके बाप हों और तय न हो कि कौन उसका बाप है, और वे सब उसका एक-एक नाम रख दें। और सारे लोग लड़ने लगें कि इसका नाम यह है और इसका नाम यह है। ऐसी परमात्मा की गति है। वह आपका पुत्र तो नहीं है, लेकिन बाप है, और बहुत उसके लड़के हैं, और वे सब उसका नाम रखे हुए हैं। और हरेक नाम वाला दावा करता है कि यही नाम सत्य है।

कोई नाम नहीं है। जो है, उसका कोई नाम नहीं है। उसे सत्य कहें, उसे आत्मा कहें, उसे ईश्वर कहें। लेकिन इनमें ध्वनियां अलग-अलग हैं, क्योंकि हमने उन शब्दों को अलग-अलग ध्वनियां दे दी हैं। इसलिए उचित है कि सत्य कहें या उचित है कि कहें कि जो है वही। फिर अगर प्रेम मन में आता है, ईश्वर कहें, आत्मा कहें। लेकिन स्मरण रखें, उसका कोई नाम नहीं है। अगर दुनिया में कोई मनुष्य न हो, तो किसी भी चीज का कोई नाम नहीं होगा। मनुष्य की ईजाद है नाम। और नाम ने बड़ी दिक्कत खड़ी कर दी है। बहुत दिक्कत खड़ी कर दी है। बहुत कठिनाई खड़ी कर दी है। नाम पर कितने लोग लड़ गए और मर गए! और नाम पर कितनी हत्या हो गई! क्योंकि कोई उसे अल्लाह कहता है, कोई उसे राम कहता है, वे लड़ जाएंगे। नाम के पीछे कितना पागलपन हुआ है! और इस पागलपन को विचार करें तो बड़ी हैरानी होती है कि यह दुनिया कैसे धार्मिक हो सकती है जो नामों पर लड़ जाती हो? यह कितनी नासमझ दुनिया है कि जो नामों पर लड़ जाती हो!

एक मित्र मेरे घर मेहमान थे। वे एक साधु थे। सुबह-सुबह मुझसे बोले कि मैं मंदिर जाना चाहता हूं। मैंने कहा, किसलिए जाना चाहते हैं? उन्होंने कहा कि थोड़ा एकांत में शांति से वहां बैठूंगा। कुछ परमात्मा का स्मरण करूंगा। मैंने कहा, देखें, मंदिर तो यहां का बाजार में है। वहां बड़ी भीड़-भाड़, शोरगुल है। चर्च मेरे पास में है। तो यहीं चले जाएं। यहां बड़ी शांति है, बड़ा एकांत है। यहां कोई भी नहीं है, कोई गड़बड़ नहीं है। वे बोले, चर्च? आप कहते क्या हैं? मैंने कहा कि सिवाय नाम के और क्या फर्क है? कल आप खरीद लें, इस चर्च को

हटा दें, इसकी जगह मंदिर का नाम रख दें, तो मंदिर हो जाएगा। यह मकान ही है न! इसमें कोई नाम का फर्क है?

अभी कलकत्ते में मेरे मित्रों ने एक चर्च खरीद लिया और उसको मंदिर बना लिया, तो वह मंदिर हो गया। कल तक उसमें ईसाई जाते थे, अब कोई ईसाई नहीं जाता। अब उसमें जैनी जाते हैं, कल तक कोई जैनी नहीं जाता था। ऐसा पागलपन है। वह नाम! वह मकान वही का वह है, दीवालें वही की वह हैं, मिट्टी वही की वह है, सब वही का वह है; लेकिन अब वह मंदिर है, तब वह चर्च था। तब वह किसी दूसरे भगवान का डेरा था, अब वहां किसी दूसरे भगवान का डेरा है। जैसे भगवान बहुत हैं।

लेकिन हमारी नाम की बड़ी गहरी पकड़ है। बहुत बचकानी, बहुत इम्मैच्योर, एकदम बालबुद्धि से भरी हमारी पकड़ है। और उस पर हम तलवारें उठा लेते हैं और उस पर हम कत्ल करेंगे और मुल्कों को नष्ट कर देंगे और आग लगा देंगे और तबाह कर देंगे।

दुनिया में धार्मिक लोगों ने जितनी दुष्टता की है और जितनी मूर्खता की है, उतनी किसी और ने नहीं की। और सिर्फ नामों की वजह से। और फिर भी आंखें नहीं खुलतीं। फिर भी नाम को हम लेकर चिल्लाते हैं और पकड़ते हैं। और नाम पर हम न मालूम क्या-क्या करते रहे हैं।

मैं आपको कहूं, नाम बड़ी भ्रामक बात है। नाम का कोई अर्थ नहीं है। सच्चाई को देखें। नाम को मत देखें। अन्यथा नाम पर अटक जाएंगे और सच्चाई नहीं देख पाएंगे। नाम को छोड़ दें और देखें कि मतलब क्या है। इसीलिए मैं सबका इकट्ठा प्रयोग करता हूं। मैं कहता हूं कि ईश्वर-दर्शन, आत्म-दर्शन या सत्य-दर्शन; इसीलिए ताकि वे अलग-अलग नामों वाले लोग समझें कि मैं किसी एक ही चीज की चर्चा कर रहा हूं। अगर मैं कहूं ईश्वर-दर्शन, तो बहुत से हैं जो समझेंगे कि मैं तो न मालूम हिंदू धर्म का आदमी हूं या क्या है। अगर मैं कहूं आत्म-दर्शन, तो कुछ समझेंगे कि पता नहीं ये कौन से धर्म के हैं कि ईश्वर की बात नहीं करते। मैं जान कर सबका इकट्ठा प्रयोग करता हूं ताकि आपको खयाल में आ सके कि जो है, उसका कोई नाम नहीं है, और उसका ही विचार करना है; उसको ही अनुभव करना है; उस पर ही प्रवेश करना है; उसका ही साक्षात करना है। सब नाम छोड़ दें और अनाम के प्रति जागें। वह जिसका कोई नाम नहीं है, उसके प्रति जागें। जिसका कोई रूप नहीं है, उसके प्रति जागें। जो कहीं भी, किसी सीमा में आबद्ध नहीं है, उसके प्रति जागें। वह जो सीमा में नहीं है, नाम में नहीं है, रूप में नहीं है, वही है। फिर चाहे उसे परमात्मा कहें, चाहे आत्मा कहें, चाहे सत्य कहें।

मन पाप क्यों करता है और पाप का बाप कौन है?

जरा मुझे कहने में दिक्कत होगी। बाप तो आप ही हैं। कोई और तो कैसे बाप होगा? तबीयत यह होती है, कोई और हो। कोई और बता दिया जाए कि कोई और बाप है पाप का। आप ही हैं। और जब मैं कह रहा हूं आप ही, तो बिलकुल आपसे कह रहा हूं। आपके पड़ोसी

आदमी से नहीं कह रहा। बिलकुल आपसे ही कह रहा हूं, आपके बगल वाले से नहीं कह रहा हूं। और पाप क्यों करता है? सच तो यह है कि इस दुनिया में कोई भी पाप नहीं करता। पाप होता है। पाप किया ही नहीं जा सकता और न पुण्य किया जा सकता है। पुण्य भी होता है और पाप भी होता है।

इसे थोड़ा समझ लेना पड़ेगा। क्योंकि सामान्यतः हम ऐसा ही कहते हैं: फलां आदमी पाप करता है, फलां आदमी पुण्य करता है। यानी हमें खयाल कुछ ऐसा है, जैसे कि आदमी के वश में है--वह चाहे तो पुण्य करे, चाहे तो पाप करे। जब आप पाप करते हैं, कभी आपने विचार किया--क्या आपके वश में था कि आप चाहते तो न करते? और अगर वश में था, तो रुक ही क्यों न गए? जब आप क्रोध में आते हैं, तो क्या आप जानते हैं कि आपके वश में था कि आप क्रोध में न आते? जब कोई आदमी किसी की हत्या करता है, तो आप सोचते हैं कि उसके वश में था कि वह हत्या न करता? तो क्या आप सोचते हैं कि वश में होते हुए उसने हत्या की है?

मेरी दृष्टि ऐसी नहीं है। मनुष्य अगर मूर्च्छित है तो उससे पाप होगा ही। पाप मूर्च्छा का सहज परिणाम है। कोई पाप करता नहीं है, मूर्च्छा में पाप होता है। इसलिए किसी पापी के प्रति मेरे मन में कोई निंदा नहीं है।

और यह जो आप कहते हैं कि पाप करता है, यह असल में निंदा करने का रस लेना चाहते हैं। दुनिया के सभी साधु और सज्जन दूसरे को पापी कह कर मजा लेना चाहते हैं, रस लेना चाहते हैं। क्योंकि जितने जोर से वे आपको पापी सिद्ध कर दें, उतने ही ज्यादा वे पुण्यात्मा सिद्ध हो जाते हैं। इसलिए दुनिया में निंदा का रस है, कंडेमनेशन का रस है। दूसरे आदमी की निंदा करो और कहो कि वह पापी है और पाप करता है। और इस दुनिया में जो बहुत गहरे पाप में हैं, वे अपने पाप को छिपाने के लिए चिल्लाते फिरते हैं कि फलां-फलां पाप है, और फलां-फलां लोग पाप कर रहे हैं, और पाप से बचो। क्योंकि जो चिल्लाने लगता है कि पाप से बचो, आपको यह खयाल पैदा हो जाता है, यह आदमी तो कम से कम पाप से बचा ही होगा। अगर किसी आदमी ने खुद ही चोरी की हो और वह जोर से चिल्लाने लगे कि चोरी हो गई है, पकड़ो चोर को! तो आप कम से कम उसको तो छोड़ ही देंगे। क्योंकि वह तो बेचारा कम से कम, खुद ही चिल्ला रहा है, तो उसने थोड़े ही चोरी की होगी। वह खुद ही चिल्ला रहा है कि चोरी हो गई, चोर को पकड़ो। उसको कौन पकड़ेगा? उसको लोग छोड़ देंगे। इसलिए दुनिया में जो बहुत होशियार हैं, वे दूसरों को चिल्लाते हैं कि फलां-फलां पापी हैं। ये-ये पापी हैं, ये-ये काम पाप हैं।

मैं आपसे कहना चाहता हूं, कोई भी मनुष्य पाप नहीं करता है। पाप होता है। और होने का अर्थ मेरा यह है कि चेतना की एक दशा है, मूर्च्छित दशा। चेतना की एक अवस्था है, जब होश नहीं है उसे। हम क्या कर रहे हैं, इसका भी हमें कोई होश नहीं है। कुछ काम हमसे होते हैं। आप जरा स्मरण करें, आपने जब भी क्रोध किया है, वह आपने किया था? आपने

विचारा था? आपने तय किया था कि मैं क्रोध करूंगा? आपने संकल्प किया था कि अब मैं क्रोध करता हूं? आपने कुछ भी नहीं किया था। आपने अचानक पाया कि आप क्रोध में हैं।

गुरजिएफ नाम का यूनान में एक फकीर था। वह एक गांव से निकलता था। एक बाजार में उसके कुछ दुश्मन थे, वह वहां से निकला, उन्होंने उसे पकड़ लिया और उसे बहुत गालियां दीं। उस पर बड़ा गुस्सा हुए, बहुत अपमान किया। जब वे सारी गालियां दे चुके, अपमान कर चुके, गुरजिएफ ने कहा, मित्रो, मैं कल फिर आऊंगा इसका उत्तर देने। वे लोग एकदम हैरान हो गए। उन्होंने गालियां दीं, अपमान किया, बड़े अभद्र शब्द कहे। गुरजिएफ ने कहा कि मैं कल आऊंगा इसका उत्तर देने। उसने कहा, मित्रो, मैं कल आऊंगा इसका उत्तर देने।

उन्होंने कहा, क्या पागल हो? हम गालियां दे रहे हैं, अपमान कर रहे हैं। कहीं गालियां, अपमान का उत्तर कल दिया जाता है? जो देना हो, अभी दो।

गुरजिएफ ने कहा कि हम मूर्च्छा में कुछ भी नहीं करते। हम तो विवेक करते हैं; विचार करते हैं। सोचेंगे, अगर जरूरी समझेंगे कि क्रोध करना है तो करेंगे। अगर नहीं समझेंगे तो नहीं करेंगे। हो सकता है तुम जो कह रहे हो, वह ठीक ही हो। इसमें भी कोई कठिनाई नहीं है कि तुम जो गालियां दे रहे हो, वे सच ही हों। तो हम फिर आएंगे ही नहीं। हम कहेंगे, ठीक है। उन्होंने जो कहा, ठीक ही था। तो हम उसको अपने चरित्र का बखान समझेंगे, उसको हम निंदा ही नहीं समझेंगे। सच्ची बात कह दी। अगर समझेंगे कि क्रोध करना जरूरी है, तो क्रोध करेंगे।

उन लोगों ने कहा, तुम बड़े गड़बड़ आदमी हो। कोई कभी सोच-विचार कर क्रोध किसी ने किया है? क्रोध तो बिना विचार के, अविचार में ही होता है। कभी क्रोध सोच-विचार कर नहीं होता।

कोई पाप सोच-विचार कर नहीं किया जा सकता है। किसी पाप को कांशसली, सचेत रूप से नहीं किया जा सकता है। इसलिए मैं कहता ही नहीं कि पाप किया जाता है। मैं तो कहता हूं, पाप होता है। फिर मैं क्या कहूं आपको? आप कहेंगे, इसका तो मतलब यह हुआ कि अब हमारे हाथ में ही नहीं है। जब पाप होता है तो हम क्या करें? हत्यारा कहेगा, हम क्या करें? हत्या होती है। क्रोध होता है, हम क्या करें?

सच है। उसके करने का नहीं है सवाल। इस तल पर कुछ भी नहीं करना है। पाप का होना इस बात की सूचना है कि आत्मा सोई हुई है। पाप के तल पर कोई परिवर्तन न हो सकता है, न करना है, न किया जा सकता है। यह तो केवल खबर है इस बात की कि भीतर आत्मा सोई हुई है। पाप बाहर है, इस बात की खबर है कि भीतर आत्मा सोई हुई है। इस आत्मा को जगाने का सवाल है। पाप को बदलने का सवाल नहीं है। इस आत्मा को जगाने का सवाल है। उसकी मैं चर्चा कर रहा हूं कि वह आत्मा कैसे जग जाए। और वह आत्मा जग जाए तो आप पाएंगे--पाप तो विलीन हो गया, उसकी जगह पुण्य शुरू हो गया। और पुण्य भी होता है, वह भी नहीं किया जाता। अगर आप सोचते हों कि महावीर, जैसा लोग कहते हैं कि महावीर को लोगों ने पत्थर मारे, उन्होंने बड़ी क्षमा की। बिलकुल झूठी बात

कहते हैं। महावीर क्या क्षमा कर सकते हैं? क्षमा भी होती है, की नहीं जाती। महावीर जागी हुई स्थिति में हैं। कोई पत्थर मारे, गाली दे, उनसे क्षमा होती है। इसमें करना क्या है? आपसे क्रोध होता है, उनसे क्षमा होती है। यानी उनसे क्षमा निकलती है, अब वे क्या करेंगे?

एक फूलों भरे दरख्त पर हम पत्थर मारें, तो फूल नीचे गिरेंगे; और एक कांटों वाले दरख्त पर हम पत्थर मारें, तो कांटे नीचे गिरेंगे। जो होता है वह निकलता है, जो होता है वह गिरता है। अब महावीर के भीतर प्रेम ही प्रेम भरा है। आप गए, आपने उनको दो गालियां दीं, वे क्या करेंगे? वे प्रेम ही बांट देंगे। जो देने को है, वही तो दे सकते हैं। जो निकल सकता है, वही निकलता है।

जीवन में चीजें निकलती हैं, होती हैं। करना नहीं होतीं। तो जो लोग कहते हैं, महावीर ने क्षमा की। बिलकुल झूठी बात कहते हैं। जो कहते हैं, महावीर ने अहिंसा की। बिलकुल झूठी बात कहते हैं। जो कहते हैं, बुद्ध ने करुणा की। झूठी बात कहते हैं। किया नहीं, हुआ। वे चेतना की उस अवस्था में हैं, जहां बस करुणा ही हो सकती है।

क्राइस्ट को लोगों ने सूली पर चढ़ा दिया। और जब सूली पर चढ़ा कर उनसे कहा कि कोई अंतिम बात कहनी है? तो क्राइस्ट ने कहा, हे परमात्मा, इनको क्षमा कर देना। ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं। आप कहोगे, क्राइस्ट ने बड़ी क्षमा की। नहीं, बस क्राइस्ट यही कर सकते थे। क्राइस्ट जैसी चेतना की अवस्था में हैं, उससे यही निकल सकता था, और कुछ नहीं निकल सकता था।

मेरी आप बात समझ रहे हैं? कर्म का मूल्य नहीं है। एक्शन का कोई मूल्य नहीं है। बीइंग का, आपकी सत्ता का मूल्य है। आप कर्म को पकड़ेंगे, चक्कर में पड़ जाएंगे। आप सोचेंगे, कर्म को बदलें। यह पाप है, इसको बदलें, उसको करें। आप कुछ नहीं कर सकेंगे। जिसकी भीतर चेतना सोई है, वह कोई पुण्य कभी नहीं कर सकता। तो आप शायद सोचेंगे, दोपहर को ही मैं कह रहा था, अगर एक आदमी है, जिसकी चेतना सोई हुई है, तो भी तो लोग कहते हैं कि उसने धर्मशाला बनाई, मंदिर बनाया; पुण्य किया। बिलकुल झूठी बात है। क्योंकि जिसकी चेतना सोई है, वह मंदिर मंदिर नहीं बना रहा है, वह अपने बाप के लिए स्मारक बना रहा है। अपने नाम के लिए स्मारक बना रहा है। मंदिर-वंदिर नहीं बना रहा है। मंदिर से उसको क्या मतलब? वह जो भी बना रहा है, उसकी सोई हुई चेतना, उसमें जो काम कर रही है, उसमें जरूर पाप होगा।

मेरा मानना है कि सोया हुआ आदमी जो भी करेगा, वह पाप है। पाप की परिभाषा मेरी जो होगी--सोए हुए आदमी से जो भी होता है, वह पाप है। जागे हुए आदमी से जो भी होता है, वह पुण्य है। अगर सोया हुआ आदमी पुण्य की नकल भी करे, तो भी पाप है; और अगर जागे हुए आदमी का कोई काम आपको पाप भी मालूम पड़े, तो जल्दी निर्णय मत लेना, वह भी पुण्य होगा, वह भी पुण्य है। अब उससे पाप हो नहीं सकता है। उससे पाप का कोई प्रश्न नहीं है।

मेरी दृष्टि शायद आपको समझ में आ जाए। पाप और पुण्य के तल पर नहीं, चेतना के तल पर--सोई चेतना और जागी चेतना, जाग्रत आत्मा और प्रसुप्त आत्मा, मूर्च्छित आत्मा और अमूर्च्छित आत्मा--उस तल पर सारी बात है। और दोनों स्थितियों में जिम्मेवार आप हैं--कर्म के लिए नहीं, अपनी चेतना की अवस्था के लिए। मेरा फर्क समझ लें। ज्यादा गहरे तल पर परिवर्तन करना है। ऊपरी तल पर कोई परिवर्तन नहीं होता है। कर्म के तल पर कोई परिवर्तन नहीं, व्यक्तित्व की पूरी प्राण के तल पर, पूरी आत्मा के तल पर परिवर्तन होता है।

इसलिए जब कोई कहता है कि फलां काम पाप है, फलां काम पुण्य है, तो मुझे हैरानी होती है। काम पाप और पुण्य नहीं होते। यह हो सकता है कि वही काम पाप हो और वही काम पुण्य हो। यह तब हो सकता है, जब कि चेतना में भेद हो। जब चेतना बिलकुल भिन्न हो। जागी हुई चेतना वही काम करे और सोई हुई चेतना वही काम करे। काम वही होगा और तल-भेद हो जाने से पाप और पुण्य का फर्क हो जाएगा।

कर्म नहीं होते पाप और पुण्य, चेतना की अवस्था होती है। स्टेट ऑफ माइंड होता है। वह जो स्टेट ऑफ माइंड है, वह जो चित्त की दशा है, अवस्था है, वह जो स्थिति है, वह बात है। वह विचारणीय है। वहीं कुछ करणीय है, वहीं कोई क्रांति, वहीं कोई क्रांति, कोई ट्रांसफार्मेशन, कोई परिवर्तन, वहां करने की बात है।

लेकिन हम इसी तल पर सोचते रहते हैं हमेशा कि यह काम पाप है, वह काम पुण्य है। तो पापी सोचता है कि चलो, हम भी काम करें--पुण्य का काम करें, तो पुण्यात्मा हो जाएं। तो दिन-रात पाप करता है, फिर एक मंदिर बना देता है। सोचता है, हम भी पुण्य का काम करें। दिन-रात पाप करता है, फिर गंगा-स्नान कर आता है। सोचता है, चलो, पुण्य का काम करें।

रामकृष्ण से एक आदमी ने आकर पूछा कि क्या गंगा में जाने से पाप नहीं धुल जाएंगे?

रामकृष्ण सीधे-सादे आदमी थे। उन्होंने कहा कि अब मैं क्या कहूं? अगर मैं कहूंगा कि नहीं धुलेंगे, तो गंगा के प्रति व्यर्थ की निंदा हो जाएगी। मुझे प्रयोजन क्या कि गंगा की निंदा करूं? अगर मैं कहूं कि धुल जाएंगे, तो यह बेईमान यही समझेगा कि जाकर नहा आए और पाप धुल गए। पुण्य हो गया। रामकृष्ण बड़े सीधे आदमी थे। उन्होंने कहा कि अब मैं क्या करूं? बड़ी दिक्कत में पड़ गया हूं। उन्होंने कहा, भई, गंगा में तो पाप जरूर धुल जाते हैं, क्योंकि गंगा बिलकुल पवित्र है। उसमें तो पाप धुल जाते हैं। लेकिन किनारे पर जो दरख्त खड़े हैं, पाप उन पर बैठ जाते हैं। और जब तुम लौटे, वे फिर सवार हो जाएंगे। आखिर तुम निकलोगे तो हो ही। तुम नदी के तो बाहर निकलोगे ही न, कब तक डूबे रहोगे? तो जब तक डूबे रहोगे, नहीं होगा। फिर बाहर, क्या होगा?

तो कोई ऐसा रास्ता नहीं है कि आप गंगा में नहा आए, कि मंदिर बना लिया, कि कुछ दान कर दिया, कि कुछ यह कर दिया, कि कुछ वह कर दिया, कि कुछ सेवा कर दी, कि कोई अस्पताल खोल दिया, कि कोई स्कूल खोल दिया, इससे आप यह मत सोचना कि

आप कोई पुण्य कर रहे हैं। यह कोई पुण्य नहीं है। क्योंकि आपकी चेतना की जो दशा है, वह पाप की है। उससे निकले हुए सारे कृत्य पाप होंगे। ये ऊपरी ढोंग से कोई फर्क नहीं पड़ेगा। और एक आदमी हो सकता है, जिसकी चेतना की दशा परिवर्तित हो गई, उससे कोई ऐसा काम भी आपको दिखाई पड़े जो लगे कि अरे, यह क्या किया?

गांधीजी ने एक बछड़े को जहर दे दिया। सारा मुल्क, जो कि हमारा अहिंसा का चिंतन करता है, वह कहने लगा, पाप हो गया। निश्चित ही, अगर ठीक से समझें तो एक बछड़े को मार डालना पाप है। इसमें क्या शक-शुबहा है? गांधी ने काहे को मार डाला? आखिर गांधी को भी आपके बराबर तो बुद्धि थी। वे भी तो यह सोच सकते थे कि यह पाप है। इतनी बुद्धि तो कम से कम थी, जितनी आपके पास है। जितनी उनके पास है, जो कहते हैं, गांधी ने पाप किया, इतनी बुद्धि तो थी। लेकिन फिर मामला क्या हो गया? पर गांधी का कृत्य पाप नहीं है। दिखता तो बिलकुल ही पाप है। लेकिन गांधी का प्रेम! गांधी से लोगों ने कहा कि अगर इसको जहर देंगे तो सारे मुल्क में विरोध होगा और इसको मारने का पाप भी लग सकता है, नरक भी जाना हो सकता है। तो गांधी ने कहा कि मेरा प्रेम कहता है कि मैं नरक चला जाऊं। बाकी यह इतने कष्ट में है कि मैं इसे नहीं बचा सकता तो इसे मैं मारने का जिम्मा लेता हूं। यह इतनी पीड़ा में है कि मैं इसकी पीड़ा नहीं देख सकता। तो मैं इसे मारने का जिम्मा लेता हूं। पाप ही लगेगा न! हम नरक चले जाएंगे। बछड़ा तो मुक्त हुआ।

अब यह जो गांधी का प्रेम है, जिस तल पर यह है, उस तल पर आपकी अहिंसा नहीं समझ पाएगी। आपकी अहिंसा कहेगी, यह क्या बात कर रहे हैं आप?

कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि तू मार, डर मत। क्योंकि न कोई मरता है, न कोई मर सकता है। न हन्यते हन्यमाने शरीरे। वह कोई मरेगा नहीं। छेद देगा तलवार से, कोई छिदेगा नहीं। अब कृष्ण जो कह रहे हैं, बिलकुल ही ठीक कह रहे हैं। लेकिन हम अगर सोचेंगे तो कहेंगे कि यह क्या कह रहे हैं? किसी को मार डालो, तो कोई मरेगा नहीं? तो मार डालेंगे, तो पाप नहीं हो जाएगा? लेकिन कृष्ण यह कह रहे हैं कि कोई मर ही नहीं सकता। तेरा यह खयाल कि मैं मार रहा हूं, पागलपन है, अज्ञान है, नासमझी है। इसका कोई यह मतलब नहीं है कि कोई मार डाले। लेकिन उस तल पर, चेतना के उस तल पर एक बात है, कृष्ण अगर मार डालें, तो कोई पाप नहीं है। और आप अगर दस आदमियों को सेवा करके जिंदा भी कर लें, तो भी पाप है। क्योंकि जिंदा करके आप फौरन अखबार के दफ्तर में भागे जाएंगे कि मेरा नाम छापो, दस आदमियों को मैंने बीमारी से ठीक कर दिया। सवाल यह नहीं है कि आपने क्या किया? सवाल यह है कि आप क्या हैं? सवाल यह नहीं है कि आपने क्या किया? सवाल यह है कि आप क्या हैं? उस पर विचार करें कि आप क्या हैं? अगर आपका चित्त सोया हुआ है, सब कर्म पाप हैं। अगर चित्त जाग्रत है, तो कोई कर्म पाप नहीं है। परिभाषा मेरी यही है कि जागे हुए मनुष्य से निकला हुआ कर्म पुण्य है, सोए हुए मनुष्य से निकला हुआ कर्म पाप है।

छोटे-छोटे प्रश्न हैं।

पूछा हैः अंतःसंघर्ष का अहसास है। वह मिटाने की इच्छा है, पर धैर्य नहीं है। क्या करें?

पहली बात तो यह कि अगर कोई आदमी आग में गिर पड़ा हो और हम उससे कहें कि आग है, निकल आओ, जल जाओगे। वह कहे, आग का तो अहसास है, लेकिन निकलने का मन नहीं। तो उससे हम क्या कहेंगे? वह कहे कि आग का तो अहसास है, लेकिन निकलने का मन नहीं।

यहां इस भवन में आग लग जाए, तो आप मुझसे यह पूछोगे कि हमको पता तो चल रहा है कि भवन जल रहा है, लेकिन बाहर निकलने का मन नहीं हो रहा? नहीं, आप कोई मुझसे पूछने को नहीं रुकोगे। कोई किसी से पूछने को नहीं रुकेगा। इस मकान में कोई रुकेगा ही नहीं। आप सब बाहर नजर आओगे।

तो जब हम कहते हैंः अंतःसंघर्ष का अहसास तो है। तो मैं आपसे कहूंगा, अभी है नहीं। नहीं तो प्रश्न पूछने की गुंजाइश नहीं है। आप बाहर आ जाओगे। अंतःसंघर्ष का अहसास है नहीं आपको। हां, लोग कहते हैं, इसलिए आप भी सोचते हो कि जरूर अंतःसंघर्ष है। लोग समझाते हैं, किताबें कहती हैं, तत्ववेत्ता कहते हैं, तो आपको लगता है अंतःसंघर्ष है। आपको अहसास है? अगर आपको अहसास है, तो कौन पैदा कर रहा है अंतःसंघर्ष को? अगर आपको अहसास है, तो रोज कौन उसे बनाए जा रहा है? अगर आपको अहसास है, तो कौन रोक रहा है कि छलांग लगा कर बाहर न आ जाएं?

लेकिन आप कहते हैं, धैर्य की कमी है, इच्छा भी है।

सबसे पहली बात तो बुनियाद में यह है कि आपको ठीक से पता नहीं कि क्या है अंतःसंघर्ष। अभी आपने अपने अंतःकरण को देखा भी है या किताबों में पढ़ा है? कभी अपने भीतर गए हैं और पहचाना है, वहां क्या है? या कि अपने आपको कुछ समझ बैठे हैं और वही समझे जा रहे हैं?

हर आदमी के भीतर कम से कम तीन व्यक्तित्व हो जाते हैं। एक तो जैसा वह है, लेकिन उसे उसका कोई पता नहीं। एक दूसरा, जैसा वह अपने को समझता है। और एक वैसा, जैसा वह लोगों को स्वयं को समझाना चाहता है। कोई तीन तल पर आदमी बंट जाता है। एक तो वह, जैसा वह है, लेकिन उसे खुद भी पता नहीं है। एक वह, जैसा कि वह अपने को समझता है कि मैं हूं। और एक वह, जैसा कि वह लोगों को समझाना चाहता है कि मैं हूं। ऐसा तीन तल पर आदमी बंटा रहता है। असली आदमी वह है, जो आप हैं। लेकिन आप अपने को समझते होंगे कि मैं तो बहुत विनीत हूं, और भीतर अहंकार भरा होगा। और आप समझते होंगे कि मैं तो बहुत धार्मिक हूं, और भीतर अधर्म भरा होगा। और आप समझते होंगे कि मैं तो बड़ी सेवा की वृत्ति वाला आदमी हूं, और निरंतर सेवा ही लेना चाहने की इच्छा भीतर बनी रहती होगी। आप जो अपने को समझ रहे हैं, वह हैं? अगर आप उसी पर रुके रहे तो आप अपने वास्तविक अंतःकरण को कभी नहीं जान सकेंगे।

हर आदमी को, इसके पहले कि वह अपने को जान सके, नग्न होना होता है, उसे कपड़े छोड़ देने होते हैं। हम ऊपर से ही कपड़े नहीं पहने हैं, भीतर मन पर भी बहुत कपड़े पहने हुए हैं। और हम केवल ऊपर ही नंगे होने से नहीं डरते हैं, भीतर तो बहुत ही ज्यादा डरते हैं। बहुत घबड़ाते हैं कि कहीं नग्न हम खुद अपने को ही न देख लें। जो हम हैं कहीं वही हमें दिखाई न पड़ जाए। नहीं तो हम अपने से ही घबड़ा जाएंगे, अपने से ही डर जाएंगे। इसलिए बहुत सी अपनी शक्लें बना लेते हैं; बहुत प्रकार से अपने को सजा लेते हैं; बहुत प्रकार से अपनी व्यवस्था कर लेते हैं कि अपना असली अंतःकरण दिखाई न पड़े। इसके पहले कि कोई अपने अंतःकरण को जानना चाहता हो, ये सारे लिबास उतार देने जरूरी हैं। वे जो-जो मुखौटे आपने पहन रखे हैं, वे जो-जो चेहरे और नकाब आपने लगा रखी है, वह अलग कर देना जरूरी है। और तब आप अपने को देख सकेंगे और तब पहचान सकेंगे। उस समय, उस समय जो अंतःसंघर्ष, जो इनर कांफ्लिक्ट, जो तकलीफ, जो बेचैनी, जो कलह भीतर मालूम होगी, उस कलह से निकलने में देर नहीं लगती। उस कलह से बाहर आने में कठिनाई नहीं होती। उस कलह के बाहर आना एकदम आसान है, क्योंकि उसे हमने ही खड़ा किया है। उसे किसी और दूसरे ने खड़ा नहीं किया। हमें साफ दिख जाता है कि हम किन-किन कारणों से यह कलह को खड़ा किए हैं और उन-उन कारणों के प्रति पोषण बंद हो जाता है।

अगर मुझे दिखाई पड़ जाए कि मेरे घर में एक झाड़ पैदा हो रहा है, जिसमें कांटे लग रहे हैं और सारे घर में कांटे फैलते जा रहे हैं; और रोज मैं उसी झाड़ की जड़ में पानी भी डालता हूं, खाद भी डालता हूं। मैं खाद भी डालता हूं, पानी भी डालता हूं, बागुड़ भी लगाता हूं कि कोई जानवर झाड़ को न खा जाए; और झाड़ में से कांटे निकल रहे हैं, और सारे घर में विषाक्त कर रहे हैं, और सारे घर में कांटे फैल रहे हैं, और मैं परेशान हो गया हूं। और मैं बाहर जाऊं और किसी से पूछूं कि बड़ी मुश्किल है, घर में एक झाड़ पैदा हो गया है जिसमें कांटे ही कांटे निकलते हैं, सारे घर में फैल रहे हैं। और वह आदमी आए और देखे कि सुबह से मैं खाद भी देता हूं, पानी भी देता हूं, बागुड़ भी लगाता हूं कि कोई जानवर न खा जाए, कोई नुकसान न कर दे। तो वह आदमी मुझसे क्या कहेगा? कि क्या मामला क्या है? बात क्या है? मस्तिष्क ठीक है कि खराब हो गया है? क्योंकि जिस कांटे का तुम विरोध कर रहे हो, उसी कांटे को रोज पानी दिए जा रहे हो!

लेकिन हमको पता ही नहीं, हम कांटे का तो विरोध करते हैं और हमें पता नहीं कि उसी की जड़ों में पानी देते हैं। यह पता इसलिए नहीं है कि कांटे को पकड़ कर हमने प्रवेश नहीं किया कि हम जड़ तक पहुंच जाएं। कांटे को पकड़ कर अगर हम प्रवेश कर जाएं, तो अंततः हम जड़ पर पहुंच जाएंगे और जड़ हमें दिखाई दे जाएगी। फिर उसमें पानी नहीं दे सकते। फिर बागुड़ तोड़ देंगे, पानी देना बंद कर देंगे, वह खाद देना बंद कर देंगे। झाड़ अपने से सूख जाएगा और मर जाएगा। जड़ें नहीं होंगी, कांटे भी नहीं होंगे। लेकिन कांटे तो हमको चुभते हैं और जड़ों का हमें पता नहीं कि इन कांटों की जड़ें क्या हैं?

तो अपने चित्त में भीतर जाएं। जहां-जहां कलह दिखाई पड़ती है, भीतर घुसें, भीतर जाएं, पहुंचें कि कलह कहां है?

अभी मैं आया। उसी दिन एक व्यक्ति ने आकर मुझसे कहा, एक युवक ने आकर कहा कि मेरा मन बड़ा अशांत है। मेरे मन को किसी भांति शांत करने का उपाय बता दें।

मैंने कहा, शांत किसलिए करना चाहते हो?

उसने कहा, आई ए एस की परीक्षा में बैठ रहा हूं। उसमें मैं चाहता हूं कि मैं प्रथम आ जाऊं। उसमें मैं प्रथम आ जाऊं इसीलिए शांत होना है।

मैंने कहा कि देखो, जड़ को पानी दोगे और कांटे को इनकार करोगे, कठिन हो जाएगा। जहां प्रतियोगिता का भाव है, वहीं अशांति है। जहां मैं दूसरों को पीछे छोड़ना चाहता और खुद आगे जाना चाहता हूं, अशांति मैं खुद पैदा कर रहा हूं। और फिर मैं कहता हूं कि मैं अशांत नहीं होना चाहता, लेकिन आगे जाना चाहता हूं। यह तो गड़बड़ हो गया न। यह तो कंट्राडिक्ट्री हो गया।

वही आदमी शांत हो सकता है, जो पीछे खड़े होने के लिए राजी हो, जो आगे जाने की फिकर छोड़ दे। नहीं तो फिर अशांति को वरण करें। फिर घबड़ाते क्यों हैं? जब आगे जाने की प्रतियोगिता करनी है, तो फिर अशांति तो उसका फल है, वह होगी ही। फिर उसको स्वीकार कर लें कि अशांत होंगे, प्रतियोगिता करेंगे। लेकिन प्रतियोगिता करना चाहते हैं और शांत रहना चाहते हैं ताकि प्रतियोगिता ठीक से कर सकें। तब बड़ी गड़बड़ बात हो गई।

क्राइस्ट ने कहा है: धन्य हैं वे लोग, जो अंतिम होने का सामर्थ्य रखते हैं। टु बी दि लास्ट। सबसे पीछे खड़े होने का जो सामर्थ्य रखते हैं, धन्य हैं वे लोग। क्योंकि परमात्मा की दृष्टि में वे प्रथम खड़े हो गए।

सवाल यह है कि जो आदमी पीछे होने का साहस रखता है, इतने साहस के लोग बहुत कम हैं। आगे आकर खड़े होने का साहस बड़ी बात नहीं। वह तो नार्मल है, सबमें है। सभी आगे आकर खड़े होना चाहते हैं। आगे आकर खड़े होने का साहस कोई मूल्यवान नहीं है। किसी मुल्क का राष्ट्रपति हो जाने में कोई साहस नहीं है, बिलकुल सामान्य बात है। हरेक आदमी होना चाहता है। कोई भी अदना आदमी होना चाहता है। आखिर कोई न कोई अदना आदमी हो ही जाता है। उसमें कोई मूल्य नहीं है। मूल्य तो अंतिम खड़े होने का साहस है, क्योंकि वह आदमी मुश्किल से कोई कर पाता है।

क्राइस्ट ने कहा: धन्य हैं वे लोग, जो अंतिम खड़े होने का साहस करते हैं। वे परमात्मा की दृष्टि में प्रथम खड़े हो गए।

तो जब हम प्रतियोगिता कर रहे हैं और प्रतियोगिता को पोषण दे रहे हैं, और फिर हम कहते हैं कि हम शांति चाहते हैं। तो फिर आपको पता नहीं कि अशांति का कांटा प्रतियोगिता की जड़ में से लग रहा है। तो अपने चित्त में जाएं। यह मैंने एक उदाहरण के लिए कहा। अपने चित्त में जाएं। अपने चित्त को समझें।

तो आप, जहां-जहां आपको दिखाई पड़ रहा है कि कठिनाई है, उसी के पीछे आपको दिखाई पड़ेगा, मैं ही पानी दे रहा हूं। और जब आपको दिख जाएगा कि मैं ही पानी दे रहा हूं, तो फिर आपके हाथ में है। अगर कांटे रखना हो तो पानी और दें; अगर कांटे न रखना हो तो पानी देना बंद कर दें। किसी और का निर्णय नहीं लेना है, आपका निर्णय है। अपने अंतःकरण को ठीक से जानें। किसी से पूछने की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी। कोई जरूरत किसी से पूछने की नहीं है। लेकिन चूंकि अंतःकरण को हम नहीं जानते, इसलिए हम पूछते हैं। जड़ों को बचाए रखना चाहते हैं, कांटों को अलग करना चाहते हैं। इससे सारी कांफ्लिक्ट, सारी परेशानी खड़ी होती है।

किसी मनुष्य के लिए कोई कठिनाई नहीं है, एक ही कठिनाई है कि अपने अंतःकरण को पूरा नहीं जानता। और दो तरह का यह काम चलता है। कांटों को हटाना चाहते हैं, जड़ों को पानी देते हैं। जिन फूलों को लाना चाहते हैं, उनकी जड़ों को पानी नहीं देते। उन्हीं फूलों को ला-ला कर लगाने की कोशिश करते हैं। ऐसा दोहरा आपका काम है। अच्छे गुण लाना चाहते हैं तो उनकी जड़ों का पता नहीं लगाते कि अच्छे गुण की जड़ें कहां होती हैं? अच्छे गुणों को ऊपर से चिपका लेना चाहते हैं। जो बुराइयां हैं, उन्हें अलग करना चाहते हैं, उनकी जड़ें नहीं देखते, जिनमें पानी दिए जा रहे हैं। और फिर जितनी आप ऊपर से कलम करते हैं-- पता होना चाहिए, साधारण सा बगीचे का माली जानता है कि जिस-जिस चीज की कलम की जाती है, उसका झाड़ और घना हो जाता है। तो ऊपर से जिस-जिस की आप कलम करेंगे, उसका झाड़ और घना हो जाएगा, उसकी जड़ें और मोटी हो जाएंगी। ऊपर से कलम करते हैं, नीचे पानी देते हैं। जीवन असुविधा में, कलह में, कांफ्लिक्ट में पड़ जाता है।

इसको समझें। कोई दूसरा आदमी, कोई तंत्र-मंत्र नहीं है कहीं कि आपको कोई दे दिया और आपने एक ताबीज बांध लिया और आप शांत हो गए। या आपने राम-राम जप लिया आधा घंटे और आप शांत हो गए। या आप मंदिर गए, भगवान के सामने कुछ आपने आरती हिलाई और आप शांत हो गए। या आप कहीं गए, कहीं कोई गाय दान कर दी और आप शांत हो गए। इस पागलपन में मत पड़ना। कोई इस भांति शांत नहीं होता। शांत होने के लिए तो भीतर के अंतःकरण के सारे विरोधाभास मिटाने होंगे। असली साधना वहां है। ये कपड़े छोड़ कर भाग गए और रंग लिए कपड़े और यह कर लिया और वह कर लिया, इससे कोई साधना नहीं है। इससे कोई शांत नहीं होता और न अंतःकरण शुद्धता को उपलब्ध होता है।

जीवन की वास्तविक समस्याओं को हल करना है तो समस्याओं से भागने का मत सोचें। समस्याओं को पकड़ें, पहचानें, उनमें प्रवेश करें, जानें, उनकी अंतिम जड़ तक खोज करें। यही विज्ञान है। जीवन को परिवर्तित करने का यही रास्ता है। जीवन को ऊर्ध्व करने का यही रास्ता है। उसकी समस्याओं के भीतर प्रवेश करके जड़ों को पकड़ कर, जड़ों को पहचानते ही क्रांति शुरू हो जाएगी। तब निर्णय साफ हो जाएगा। कांटे रखने हैं तो पानी दें; कांटे नहीं रखने हैं तो पानी देना बंद कर दें। इतना ही सरल है। निश्चित ही, इतनी ही सरल बात है।

लेकिन थोड़ा सा श्रम तो होगा ही। थोड़ा सा भीतर जाने का श्रम तो लेना ही पड़ेगा। थोड़ा सा तो निर्भय होकर प्रवेश करना ही पड़ेगा। और ऐसी स्थिति है कि लोग अनजान, अकेले रास्ते पर जाने में जितने नहीं डरते, उतने अपने भीतर जाने में डरते हैं। और डरने का कारण है। क्योंकि अपना झूठा चेहरा बना रखा है। जैसे ही भीतर जाएंगे, चेहरे का रंग-रोगन सब उड़ने लगेगा। वहां जो आदमी दिखाई पड़ेगा, वह बहुत घबड़ाने लगेगा।

एक आदमी साधु बना बैठा है। उसे हजारों लोग मानते हैं कि वह साधु है। अब वह भीतर कैसे जाए? भीतर जाए तो असाधु के दर्शन होते हैं। तो घबड़ाहट लगती है, भीतर कैसे जाए? भीतर जाए तो पापी बैठा दिखाई पड़ता है; बाहर पुण्यात्मा है। तो वह यह सोचता है कि भीतर की फिकर छोड़ो। कोई भांति बाहर ही बाहर रहे आओ और गुजारा कर लो। तो बाहर-बाहर रहने का उपाय करता है। हम सारे लोग इसीलिए बाहर-बाहर रहने का उपाय करते हैं। भीतर जाने में डर है, क्योंकि भीतर के असली आदमी को देखने में घबड़ाहट हो सकती है। अगर सच में आंतरिक कलह को मिटाना है, तो कलह के भीतर प्रवेश करना जरूरी है।

और कुछ बात होगी इस संबंध में, तो कल सुबह मैं करूंगा। मैं समझता हूं कुछ न कुछ बात आपको साफ हुई होगी।

बहुत से प्रश्न रह गए। कुछ प्रश्न रह ही जाने चाहिए। क्योंकि मैं कौन हूं कि सारे प्रश्नों का आपको उत्तर दूं? कोई भी नहीं है कि सारे प्रश्नों का उत्तर दे। मैं भी प्रश्नों के जो उत्तर दे रहा हूं तो यह मत खयाल आप लेना कि आपके प्रश्न का उत्तर दे दिया तो आपका कोई प्रश्न हल हो जाएगा। मैं तो केवल अपनी दृष्टि साफ कर रहा हूं। शायद मेरी दृष्टि की बात आपको पकड़ में आ जाए। वह प्रश्न और उसका उत्तर मूल्यवान नहीं है। प्रश्न प्रश्न है, उत्तर उत्तर है। उसका कोई मूल्य नहीं है। लेकिन जिस दृष्टि से मैं उस उत्तर को दे रहा हूं, उत्तर न पकड़ लेना आप, उस दृष्टि पर थोड़ा सा आपका खयाल आ जाए कि किस कोण से, किस दृष्टि से मैं देख रहा हूं जीवन को, वह आपके खयाल में आ जाए तो उत्तर मिल गया। उनका भी, जो मैंने नहीं दिया; और उनका भी, जो मैंने दिया। और अगर वह दृष्टि खयाल में न आए। आप मेरा उत्तर तैयार कर लें। यह कोई परीक्षा नहीं है स्कूल की। वह बच्चों पर छोड़ दें कि वे उत्तर तैयार कर लेते हैं और लिख देते हैं। असल में तो वह भी शिक्षा नहीं है जहां उत्तर तैयार कर लिए जाएं और लिख दिए जाएं। सब अशिक्षा है। लेकिन उसको छोड़ दें।

जीवन में कोई उत्तर नहीं सीखे जाते, जीवन में दृष्टि सीखी जाती है। तो मैं जो सारी कोशिश कर रहा हूं, वह इसलिए नहीं कि आपको कोई बंधा-बंधाया, रेडीमेड फार्मूला कोई आपको दे दूं, वह आपको याद हो जाए। वह तो मैं अपना ही उलटा कर लूंगा। क्योंकि मैं वही तो कह रहा हूं कि रेडीमेड फार्मूला आपको बहुत से मालूम हैं, वे छोड़ दें। दृष्टि को देखें कि जीवन को देखने की क्या दृष्टि हो सकती है। और अगर वह दृष्टि आपके खयाल में आ जाए, तो फिर मेरा उत्तर नहीं होगा, फिर आपकी दृष्टि आपको उत्तर देगी। वही उत्तर वास्तविक है जो आपकी दृष्टि आपके भीतर उत्पन्न कर देती है। शेष सब उत्तर व्यर्थ हैं।

मैं समझता हूं मेरी बात समझ में आई होगी। इतने प्रेम से मेरी बातों को सुन रहे हैं। बहुत सी बातें कड़वी भी होंगी। बहुत सी क्या, अधिक बातें कड़वी होंगी। फिर भी प्रेम से सुनते हैं, इससे बड़ी अनुकंपा आपकी मुझ पर मालूम होती है, बहुत आपकी दया मुझ पर मालूम होती है कि मेरी कड़वी बात को भी इतने प्रेम से सुन लेते हैं। कोई पुराना जमाना होता तो पत्थर मारते, कुछ और करते। दुनिया कुछ बेहतर हो गई, आदमी कुछ अच्छा हुआ है, वह प्रेम से सुन लेता है। यही बड़ी कृपा है।

परमात्मा की बड़ी कृपा है कि दुनिया थोड़ी सी बेहतर है। नहीं तो इतनी बात कहनी भी मुश्किल हो जाए, आप आ जाएं मेरे ऊपर, सिर को पकड़ लें। इतनी कृपा करते हैं तो मुझे बड़ा अनुग्रह मालूम होता है। मेरी कड़वी बात को भी सुन लेते हैं शांति से। परमात्मा करे उस पर विचार भी करेंगे, थोड़ा उसको सोचेंगे। मानेंगे कभी नहीं, सोचेंगे, समझेंगे। वह आपको किसी दिन ठीक लगे दृष्टि, तो आपके भीतर एक द्वार खुल जाएगा। वह द्वार आपका होगा, वह मेरा नहीं होगा। उस वक्त आपको कुछ दिखाई पड़ेगा, वह आपका होगा, वह मेरा नहीं होगा।

उस आशा में कहता हूं कि शायद, शायद कहीं किसी की तैयारी हो और कोई बात उसके भीतर खुल जाए। कोई एक गठान भी थोड़ी ढीली हो जाए, तो भी बड़ी बात हो जाती है।

तो धन्यवाद देता हूं और सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

वह वस्तुतः जिसे हम जीवन जानते हैं, वह जीवन नहीं है। जिसे हम जीवन मान कर जी लेते हैं और मर भी जाते हैं, वह जीवन नहीं है। बहुत कम सौभाग्यशाली लोग हैं जो जीवन को अनुभव कर पाते हैं। जो जीवन को अनुभव कर लेते हैं, उनकी कोई मृत्यु नहीं है। और जब तक मृत्यु है, मृत्यु का भय है, और जब तक प्रतीत होता है कि मैं समाप्त हो जाऊंगा, मिट जाऊंगा, तब तक जानना कि अभी जीवन का कोई संधान, जीवन का कोई संपर्क, जीवन का कोई अनुभव नहीं उपलब्ध हुआ है।

एक छोटी सी कहानी से आज की चर्चा को मैं प्रारंभ करना चाहूंगा। बहुत बार उस कहानी को देश के कोने-कोने में अनेक-अनेक लोगों से कहा है। फिर भी मेरा मन नहीं भरता और मुझे लगता है उसमें कुछ बात है जो सभी को खयाल में आ जानी चाहिए।

जीसस क्राइस्ट यात्रा पर थे। जो उन्हें मिला था उसे लुटाने की यात्रा पर थे। और आनंद का स्वभाव है कि वह मिल जाए तो उसे लुटाना अनिवार्य हो जाता है। दुख मनुष्य को सिकोड़ता है और आनंद मनुष्य को फैला देता है। दुख में मनुष्य चाहता है, मैं अपने में बंद हो जाऊं; और आनंद में मनुष्य चाहता है, मैं सब तक पहुंच जाऊं और सब तक फैल जाऊं। इसीलिए

आनंद को ब्रह्म कहा है। दुख अहंकार की अंतिम सीमा है; आनंद निर-अहंकारिता की, ब्रह्म होने की।

शायद आपने खयाल किया हो, महावीर और बुद्ध या क्राइस्ट जब दुख में हैं, तब वे जंगल में भाग गए हैं; और जब उन्हें आनंद उपलब्ध हुआ है, वे बस्ती में वापस लौट आए हैं। आनंद बंटना चाहता है, दुख सिकुड़ना चाहता है। दुख अपने में बंद होना चाहता है, आनंद दूसरे तक फैलना चाहता है।

क्राइस्ट को जब आनंद उपलब्ध हुआ, वे उसे बांटने की यात्रा पर निकल गए। वे एक गांव में पहुंचे। सुबह-सुबह ही उस गांव को वे पार करते थे--एक झील के किनारे उन्होंने एक मछुए को मछली मारते देखा। उसने अपना जाल फेंका था और मछलियों की प्रतीक्षा करता था। उसे पता भी नहीं था कि पीछे से कौन गुजरता है। क्राइस्ट ने जाकर उसके कंधे पर हाथ रखा और उससे कहा, मित्र, मेरी ओर देखो! कब तक मछलियां ही मारते रहोगे?

और जो क्राइस्ट ने उससे कहा, मैं हरेक आदमी के कंधे पर हाथ रख कर मेरा भी मन होता है कि पूछूं कि कब तक मछलियां ही मारते रहोगे? इससे क्या फर्क पड़ता है कि रोटियां मार रहे हैं या मछलियां मार रहे हैं! सब मछलियां मारना है। जीवन अधिक लोगों का मछलियां मारने में ही नष्ट हो जाता है।

क्राइस्ट ने उससे पूछा कि कब तक मछलियां मारते रहोगे?

उसने लौट कर देखा, एक झील सामने थी और पीछे इस आदमी की आंखें थीं जो झील से भी ज्यादा गहरी थीं। उसने सोचा कि अब इस जाल को वहीं फेंक दूं और इन आंखों में एक जाल को फेंकूं। उसने जाल वहीं फेंक दिया और क्राइस्ट के पीछे हो लिया। उसने कहा, मैं साथ चलता हूं। अगर कुछ और पकड़ा जा सकता है, उसे पकड़ने को मैं तैयार हूं। यह जाल यहीं फेंक दिया, ये मछलियां यहीं छोड़ दीं।

जिसे धर्म की खोज करनी हो, उसे इतना साहस होना चाहिए कि समय पड़े तो जाल को और मछलियों को फेंक दे।

वह क्राइस्ट के पीछे गया। वे गांव के बाहर भी नहीं निकल पाए, एक आदमी ने आकर उस मछुए को खबर दी कि तुम कहां जा रहे हो? तुम्हारे पिता जो बीमार थे, उनकी रात्रि में मृत्यु हो गई। अभी-अभी वे समाप्त हो गए हैं। लौटो, हम तुम्हें खोजते हुए सब तरफ घूम आए हैं!

वह युवा मछुआ क्राइस्ट से बोला, क्षमा करें, मैं जाऊं और अपने पिता का अंतिम संस्कार करके दो-चार दिन में वापस लौट आऊंगा।

क्राइस्ट ने उसका हाथ पकड़ा और उससे कहा, तुम तो मेरे पीछे आओ। एंड लेट दि डेड बरी देयर डेड। और वे जो गांव के मुर्दे हैं, वे मुर्दे को दफना लेंगे। तुम मेरे पीछे आओ। क्राइस्ट ने कहा, वे जो गांव में बहुत मुर्दे हैं, वे मुर्दे को दफना लेंगे। तुम्हें जाने की कौन सी जरूरत है?

बहुत ही अजीब बात उन्होंने कही और बहुत अर्थपूर्ण भी। निश्चित ही जिन्हें अभी जीवन का पता नहीं है, वे मृत ही हैं। और हमें जीवन का कोई भी पता नहीं है। जिसे हम जीवन कहते हैं, वह तो क्रमिक मृत्यु का ही नाम है। वह वस्तुतः जीवन नहीं है। हम जिस दिन पैदा होते हैं और जिस दिन हम मर जाते हैं, इन दोनों के बीच में जो फैला हुआ है, वह जीवन नहीं है, वह तो धीमे-धीमे मरते जाने का नाम है। हम रोज मरते जा रहे हैं। जिसे हम जीवन कह रहे हैं, वह रोज मरते जाना है। वह ग्रेजुअल डेथ है।

मौत कोई आकस्मिक घटना थोड़े ही है, वह जन्म के दिन ही शुरू हो गई। जो जन्म का दिन है, वही मृत्यु का दिन भी है। उसी दिन हम मरना शुरू हो जाते हैं। जन्मते नहीं कि मरना शुरू हो जाता है। फिर मौत धीरे-धीरे बड़ी होती जाती है, एक दिन पूरी हो जाती है। जिस दिन पूरी होती है, हम कहते हैं, मौत आ गई। मौत रोज आ रही थी, अन्यथा अचानक कैसे आ जाती? मौत रोज आती गई, एक दिन पूरी हो गई।

जन्म मृत्यु का प्रारंभ है और मृत्यु मृत्यु की परिपूर्णता है। जन्म जीवन की शुरुआत नहीं है और न मृत्यु जीवन का अंत है। जीवन तो जन्म के भी पहले है और मृत्यु के भी बाद है। बस यह जो मृत्यु है और जन्म है, इसके बीच ही जो जीता है, वह जीवित नहीं है। इसके पीछे और पार के जीवन से जो संबंधित हो जाता है, वही केवल जीवित है। और धर्म का संबंध उसी संपर्क, उसी सत्य, जिसका कोई जन्म नहीं होता और कोई मृत्यु नहीं होती, उससे जोड़ने से है। ये दो चरणों की हमने चर्चा की उस जीवन की तरफ जाने के लिए।

मैंने कहा पहले चरण में कि समस्त शास्त्रों से, समस्त सिद्धांतों से, समस्त विचारों से मुक्त हो जाएं। जो विवेक शास्त्र के भार से दबा रहता है, वह विवेक स्वयं की निजता को उपलब्ध नहीं हो पाता। जो विवेक दूसरों के विचार से बोझिल रहता है, वह कभी अपनी विचार-शक्ति को जगा नहीं पाता। जो विवेक दूसरों की संपत्ति को अपनी संपत्ति मान लेता है--महावीर की, कृष्ण की या राम की--उसकी अपनी संपत्ति अनजानी और अपरिचित पड़ी रह जाती है। इसलिए मैंने कहा कि समस्त विचारों से, वे चाहे कैसे भी हों, किन्हीं महापुरुषों के हों, किन्हीं ग्रंथों के हों, किन्हीं शास्त्रों के हों, कितने ही पवित्र शास्त्रों के हों, वे विचार आपके लिए पराए हैं। जो उन विचारों को अपना मान कर जीने की कोशिश करेगा, वह उस विचार-शक्ति से वंचित रह जाएगा जो निरंतर उसके भीतर मौजूद है और प्रकट होना चाहती है, लेकिन बाहर के आए हुए विचार उसे प्रकट नहीं होने देते।

इसके पहले कि किसी का अपना विचार जगे, उसे निर्विचार हो जाना जरूरी है। इसके पहले कि उसे अपनी संपत्ति का पता चले, उसे दूसरों की संपत्ति से खाली हो जाना जरूरी है। स्वाभाविक ही है, स्वाभाविक ही है कि अगर हम दूसरों की संपत्ति को अपनी संपत्ति मानें, तो अपनी संपत्ति की खोज बंद हो जाए। बहुत से लोग शास्त्रों, सत्य के संबंध में कही गई बातों और सिद्धांतों में इस भांति भटक जाते हैं कि उनकी खुद की खोज समाप्त हो जाती है, शून्य हो जाती है।

और स्मरण रखें, मैंने जैसा कहा, सत्य को खोजना हो तो स्वयं ही खोजना होगा। कोई दूसरा उसे किसी को दे नहीं सकता है। सत्य ट्रांसफरेबल नहीं है। सत्य जो है वह एक हाथ से दूसरे हाथ में नहीं दिया जा सकता। अगर दिया जा सकता होता, अब तक सारे लोगों को सत्य मिल गया होता। सत्य दिया नहीं जा सकता, सत्य पाना होता है। सत्य खुद ही पाना होता है। वह स्वयं के श्रम से ही उपलब्ध होता है। और जो दूसरों के श्रम पर विश्वास कर लेते हैं, वे अपने जीवन को गंवा देते हैं। उन्हें कुछ भी उपलब्ध नहीं हो पाता है। इसलिए दूसरों से अपने को मुक्त कर लें, यह मैंने कहा। यह आपका विवेक स्वतंत्र होगा, चित्त मुक्त होगा।

चित्त जिसका परतंत्रता में है, वह सत्य को कैसे जानेगा? यह मैंने पहले चरण में विस्तार से बात की। दूसरे चरण में मैंने कहा कि चित्त सरल हो। और सरलता का मैंने अर्थ नहीं किया कि आप कम कपड़े पहनें या कम भोजन करें तो आप सरल हो जाएंगे। या कि आप घर-द्वार छोड़ दें तो आप सरल हो जाएंगे। सरलता बहुत गहरी बात है। इन छोटी सी बातों से सरलता का कोई विशेष संबंध नहीं है। और यह भी हो सकता है कि बहुत जटिल लोग, जिनका चित्त बहुत जटिल, बहुत कठिन है, जिनका चित्त बहुत कठोर और पत्थर की तरह ग्रंथियों से भरा है, वे लोग भी इस तरह के वेशभूषा के परिवर्तन को कर लें। वे लोग भी कम खाएं, कम कपड़े पहनें, घर-द्वार छोड़ दें। कोई जटिल मनुष्य भी इस भांति की सरलता को थोप सकता है। इस सरलता का कोई मूल्य नहीं है।

सरलता का मैंने अर्थ किया: चित्त द्वंद्व-शून्य हो जाए और चित्त के खंड-खंड हिस्से विलीन हो जाएं और चित्त अखंड हो जाए, इंटीग्रेटेड हो जाए, समग्र हो जाए। मेरे भीतर बहुत से व्यक्ति न रहें, एक व्यक्ति का जन्म हो जाए। मैं इंडिविजुअल हो जाऊं। मेरे भीतर एक स्वर रह जाए। मेरे भीतर प्रेम हो तो घृणा न रहे। घृणा और प्रेम जिसके साथ-साथ हैं, उस आदमी का चित्त सरल नहीं हो सकता। जिस आदमी के भीतर शांति और अशांति दोनों हैं, उस आदमी का चित्त सरल नहीं हो सकता। दोनों में से एक रह जाए तो चित्त सरल हो सकता है। अगर मात्र अशांति रह जाए तो भी चित्त सरल हो जाएगा या मात्र शांति रह जाए तो भी चित्त सरल हो जाएगा।

आप जानते हैं, अगर कोई आदमी इतना अशांत हो जाए कि उसके भीतर शांति का कण भी न रहे, तो भी क्रांति हो जाएगी। उतनी अशांति में भी क्रांति हो जाएगी। उस क्लाइमेक्स पर भी, उस चरम बिंदु पर भी अशांति की अंतिम सीमा पर पहुंच कर एकदम से सब विलीन हो जाएगा और वह चित्त एकदम शांत हो जाएगा। जैसे कोई तीर को चलाता है तो प्रत्यंचा को पीछे खींचता है। तीर को फेंकना तो आगे है, खींचते पीछे हैं। उलटा दिखेगा। कोई आदमी कहेगा, तीर को फेंकना तो आगे है और खींचते पीछे हैं! आगे फेंकना है तो आगे फेंकें, पीछे क्यों खींचते हैं? उलटा क्यों कर रहे हैं? लेकिन अपनी प्रत्यंचा को धनुर्धारी खींचता चला जाता है। एक सीमा आती है अंतिम कि और आगे नहीं खींचा जा सकता। खींचने का अंतिम बिंदु आता है और प्रत्यंचा छूट जाती है, और तीर जो कि पीछे गया था, वह विपरीत दिशा

में गति कर जाता है। ठीक वैसे ही अगर चित्त पूरा अशांत हो, तो अशांति के अंतिम बिंदु पर पहुंच कर तीर छूट जाता है और शांति की दिशा में गति हो जाती है।

धन्य हैं वे जो पूरे अशांत हैं, क्योंकि शांति उनका भाग्य होगी। लेकिन हम बहुत अधूरे लोग हैं। हम अशांत पूरे नहीं हैं। हम काफी संतुष्ट हैं और काफी शांत हैं। यह जो बीच का मन है, यह कठिन मन है, यह जटिल मन है। इसमें दोनों हैं। इसमें शांति भी, अशांति भी; प्रेम भी, घृणा भी; और सारी बातें। यह जो द्वंद्व है, यह द्वंद्व सत्य तक नहीं जाने देता। या चित्त पूरा शांत हो जाए, तो जीवन में सत्य का अनुभव हो सकता है।

अतियों पर क्रांति होती है, एक्सट्रीम पर क्रांति होती है। बीच में कोई क्रांति नहीं होती। इसलिए जो मध्य में है, वह हमेशा सत्य से दूर बना रहता है। अति पर क्रांति होती है। दुख का अति मनुष्य को दुख के बाहर फेंक देता है। लेकिन हम कभी अति तक दुखी नहीं होते। हम हर दुख को भुला लेते हैं और हर दुख को समझाने का कोई मार्ग निकाल लेते हैं।

किसी का पुत्र मर गया, वे मेरे पास आए और उन्होंने कहा, मैं बहुत दुखी हूं।

मैंने कहा, और दुखी हो जाएं। पूरे दुखी हो जाएं, क्रांति हो जाएगी।

नहीं, लेकिन वे बोले कि क्या आप बताएंगे मुझे कि मेरा जो लड़का मर गया उसकी आत्मा अमर है?

मैंने कहा, आप तरकीबें खोज रहे हैं, जिससे कि दुख जो है वह क्षीण हो जाए। अगर कोई आपको विश्वास दिला दे कि पुनर्जन्म होता है, लड़का मरा नहीं, कोई घबड़ाने की बात नहीं, आत्मा उसकी अमर है, उसका दूसरी जगह जन्म हो गया, आप निश्चिंत हो जाएंगे। दुख बीच में रुक जाएगा और कोई क्रांति नहीं होगी। दुख को आप समझा लेंगे। समझौता कर लेंगे।

अनेक लोग पूछते फिरते हैं कि पुनर्जन्म है क्या? वे इसलिए नहीं पूछ रहे हैं कि पुनर्जन्म में उन्हें कोई उत्सुकता है। वे इसलिए पूछते हैं, रोज जो मरते हुए देखते हैं लोगों को, तो उनको डर लगता है कि कहीं मुझे भी न मरना पड़े। तो वे पूछते आते हैं कि पुनर्जन्म है क्या? अगर विश्वास दिला दें तो वे आपके पैर छुएंगे, कहेंगे कि आप बड़े महात्मा हैं, बड़े साधु हैं। आपने मेरा चित्त शांत किया।

चित्त शांत नहीं किया। इस आदमी ने अपने भीतर समझौता कर लिया। यह मृत्यु को देख कर दुखी हो सकता था। उस दुख से बच गया। वह दुख क्रांति ला सकता था। यह पुनर्जन्म का सिद्धांत कोई क्रांति नहीं लाएगा।

हम जीवन में हमेशा बीच में रुक जाते हैं। किसी चीज को उसकी अति तक नहीं पहुंचने देते। मैं आपसे कहता हूं, क्रोध ही करना है तो पूरा कर लें। देखें, पूरे क्रोध में एक क्रांति हो जाएगी। पूरे क्रोध के बिंदु पर आप पाएंगे कि क्रोध तो विलीन हो गया। वाष्पीकरण के बिंदु होते हैं। जैसे कोई पानी को गरम करे तो वह सौ डिग्री पर जाकर भाप हो जाता है। लेकिन पचास ही डिग्री पर रुक जाए, तो न तो पानी पानी रहा और न भाप हो पाया, वह केवल उत्तप्त होकर रह गया।

तो मैंने कहा कि जीवन की सरलता पैदा होती है किसी एक बिंदु के केंद्र पर सारे जीवन के आ जाने से, एक अद्वंद्व की स्थिति आ जाने से। उसकी मैंने चर्चा की कि जीवन अखंड हो। वह कैसे हो सकता है, उसको मैंने आपको दूसरे चरण में समझाया। और आज मैं तीसरे चरण पर आपसे बात करना चाहता हूं कि चित्त, जो चित्त स्वतंत्र हो गया है और जो चित्त सरल हो गया है, वह चित्त अगर शून्य भी हो जाए, तो सरलता, स्वतंत्रता और शून्यता के मिलने से समाधि उपलब्ध हो जाती है। कैसे हमारा चित्त शून्य हो सकता है? और शून्य का क्या अर्थ है? शून्य का क्या अर्थ है?

शून्य का अर्थ है: हम अपने भीतर अपने होने से बहुत भरे हुए हैं। हम अपने मैं से, अपने अहंकार से बहुत भरे हुए हैं। चौबीस घंटे उसी से भरे हुए हैं। कभी अपने भीतर खोज करें। आपके उठने में आपका अहंकार है; आपके वस्त्र पहनने में आपका अहंकार है; आपके चलने में आपका अहंकार है; आपके मकान बनाने में आप केवल छाया के लिए थोड़े ही मकान बनाते हैं, उसमें भी अहंकार है। वह बगल वाले का मकान छोटा करने को भी मकान बनाते हैं। आप वस्त्र कोई शरीर को ढंकने को थोड़े ही पहनते हैं, उसमें भी अहंकार है, दूसरों के वस्त्रों को फीका करने के लिए पहनते हैं। आप जो भी कर रहे हैं चौबीस घंटे, आपकी अहमता उससे विकीर्ण हो रही है। चौबीस घंटे आपका मैं...

यहां तक हद हो जाती है, एक आदमी धन इकट्ठा करता है, इसलिए कि उसके अहमता की पुष्टि मिल जाए। आखिर कौन, धन इकट्ठा करने में कौन सा रस होगा? हां, धन की एक उपयोगिता है, वहां तक भी समझ में आता है। लेकिन धन तो उस सीमा पर भी इकट्ठा किया जाता है, जहां उसकी कोई उपयोगिता नहीं है।

मैं कल ही बात करता था। एंड्रू कारनेगी मरा। अमरीका का एक करोड़पति मरा। तो कोई तीन अरब की संपत्ति छोड़ गया। तीन अरब की क्या उपयोगिता हो सकती है? यानी क्या करेगा तीन अरब का कोई आदमी? जरूर धन की उपयोगिता है--वस्त्र के लिए, भोजन के लिए, जीवन को चलाए जाने के लिए उसकी उपयोगिता है। लेकिन तीन अरब की क्या उपयोगिता है? फिर भी आप हैरान होंगे। कारनेगी दुखी मरा। क्योंकि वह सोचता था, केवल तीन ही अरब तो! दस के उसके इरादे थे। उसने मरते वक्त कहा, जो उसका चरित्र लिख रहा था, उस लेखक को उसने कहा। लेखक ने उससे पूछा कि आप तो संतुष्ट मरते होंगे? कारनेगी ने कहा, संतुष्ट? मेरे दस के इरादे थे, मात्र तीन ही मैं इकट्ठा कर पाया और जीवन बीत गया।

और यह पक्का समझिए कि इसे दस भी मिल जाते तो इसके इरादे सौ के हो गए होते और यह कहता कि बस केवल दस! वह जो दस रुपये जिसके पास हैं, वह जैसा कहे कि केवल दस रुपये! वैसा ही वह भी कहता है जिसके पास दस अरब रुपये हैं। वह कहता है, केवल दस अरब! लेकिन इसकी उपयोगिता क्या है?

रुपये की उपयोगिता थोड़ी दूर के बाद समाप्त हो जाती है और अहंकार की उपयोगिता शुरू हो जाती है। फिर रुपये का उपयोग नहीं है, फिर अहंकार के भरने के लिए रुपया सहयोगी है।

जितना मेरे पास है, उतना मैं बड़ा आदमी हो जाता हूं। उतना मेरा मैं बड़ा हो जाता है, विराट हो जाता है, मजबूत हो जाता है। बड़े पद की खोज अहंकार की खोज है, और क्या है? जीवन में प्रथम होने की खोज अहंकार की खोज है, और क्या है? हैरान होंगे आप, धन की खोज अहंकार की खोज है और अनेक बार त्याग की खोज भी अहंकार की खोज ही होती है। वह जिस आदमी के पास बहुत है, वह अगर उसको छोड़ दे, तो वह यह कहना शुरू कर देता है कि मैंने इतने बहुत को छोड़ा। मैं एक साधु के पास था। वे मुझसे कहते थे, मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी। मैंने दो-चार दफा उनसे सुना। फिर थोड़ा मैंने कहा कि मैं पूछूं कि यह लात कब मारी? तो मैंने उनसे पूछा। वे बोले, कोई बीस साल हो गए। मैं थोड़ा हैरान हुआ। मैंने कहा, बीस साल हो गए और यह बात भूलती नहीं है, तो लात ठीक से नहीं लग पाई। यह बात अब याद रखने की कौन सी जरूरत है? इसका क्या प्रयोजन है, कि आप इस बात को रखे रहें मन में कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी है? क्या यह वह पुराना अहंकार ही नहीं है जो कहता था मेरे पास लाखों हैं, अब वह कह रहा है कि मैंने लाखों को लात मार दी? क्या वही अहमता, वही मैं, क्या वही मैं जो रुपये से भरता था, वही मैं रुपये के त्याग से नहीं भर गया है? और अगर भर गया है तो बीस साल व्यर्थ चले गए। उनका कोई उपयोग नहीं हुआ।

मैंने कहा, यह लात पूरी लग नहीं पाई। स्मरण में आपको लगता है कि रुपयों को मैंने लात मारी। निश्चित रुपये का मूल्य आपको अभी भी मालूम हो रहा है!

अब जो रुपया पास में नहीं है, उसका क्या मूल्य होगा? उसकी क्या उपयोगिता होगी? यानी एक आदमी के पास लाख रुपये हैं, तो हम समझ भी सकते हैं कि उसके लिए कोई उपयोगिता होगी। एक आदमी कहता है कि मैंने लाखों पर लात मार दी। अब तो उसके पास रुपये नहीं हैं। लेकिन जो रुपया नहीं है उसकी स्मृति का अब क्या लाभ है? उसका भी लाभ है। उसका लाभ है, अहंकार की परिपूर्ति उससे हो रही है। मैंने! मैंने लाखों पर लात मारी है! और मैं उन लोगों से बड़ा हो गया जो लाखों को पकड़े बैठे हैं! इसलिए हम साधु को बड़ा कहते हैं गृहस्थ से, क्योंकि वह लात मारता है। और साधु भी अपने को समझ ले कि मैं बड़ा हूं, तो भूल हो जाती है। क्योंकि वह तो मामला गृहस्थ हो गया। वापस वह वही का वही आदमी हो गया। क्योंकि उसकी बुद्धि का केंद्र तो वही अहंकार हो गया।

तो सवाल धन का और पद का ही नहीं, सवाल धन और पद के त्याग का भी है। प्रश्न असल में, आपके पास क्या है, इसका नहीं है। प्रश्न असल में यह है कि आप उस क्या से अपने अहंकार को तो नहीं भर रहे हैं? जो है उससे और जो नहीं है उससे, दोनों से अहंकार भर सकता है। जो आपने पाया उससे और जो आपने छोड़ा उससे, दोनों से अहंकार भर सकता है।

शून्य का अर्थ है: इस अहंकार से शून्य हो जाना। इसलिए दुनिया में धन के त्याग को मैं त्याग नहीं कहता। घर के त्याग को मैं त्याग नहीं कहता। पद के त्याग को मैं त्याग नहीं कहता। क्योंकि ये सब त्याग होकर भी यह हो सकता है कि जिस चीज की ये पूर्ति करते

थे, उसी की पूर्ति इनका त्याग भी करता हो। सिर्फ एक चीज के त्याग को मैं त्याग कहता हूं और वह अहमता है। और किसी चीज के त्याग को मैं त्याग नहीं कहता। सिर्फ अहमता के त्याग को मैं त्याग कहता हूं। सिर्फ अहमता के न हो जाने को मैं त्याग कहता हूं।

लेकिन क्या करेंगे? समझ में यह बात आ जाए कि अहंकार बुरा है। कितने दिनों से यह शिक्षा दी गई है कि अहंकार बुरा है और अहंकार पाप है और अहंकार छोड़ना चाहिए। क्या करेंगे? अगर यह समझ में भी आ जाए कि अहंकार बुरा है तो क्या करेंगे? आप छोड़ने में लग जाएंगे कि मैं अहंकार को छोडूं। यह बड़ा पागलपन हो जाएगा। कौन अहंकार को छोड़ेगा? अहंकार ही न, वही मैं। तो आप उस भूल में पड़ जाएंगे जैसे एक कुत्ता अपनी पूंछ को पकड़ने की कोशिश में लगा हो। वह उचकता है और पूंछ उचक जाती है। वह फिर उचकता है। फिर वह बड़ा हैरान हो जाता है कि मैं अपनी पूंछ को नहीं पकड़ पाता, क्या बात है? जितना वह नहीं पकड़ पाता है, उतना ही दौड़ता है, उतनी ही मुश्किल हो जाती है। कुत्ता अपनी पूंछ को नहीं पकड़ सकता, अहंकार अहंकार को नष्ट नहीं कर सकता है।

अहंकार को विनाश करने के लिए अनेक लोग उत्सुक होते हैं कि अहंकार चला जाए। लेकिन जितनी वे चेष्टा करते हैं, अहंकार उनके डर के कारण उतना सूक्ष्म होता चला जाता है, पीछे सरकता जाता है। ऊपर से विलीन हो जाता है, भीतर बैठ जाता है। और ऊपर का अहंकार बेहतर, भीतर का अहंकार बहुत घातक। क्योंकि ऊपर का दिखता है, भीतर का दिखता नहीं। वह बहुत भीतर सरकता जाता है। साधु में, संन्यासी में, जिसको हम कहते हैं, उसमें जो अहंकार की सूक्ष्मता है, वह सामान्यजन में भी नहीं होती। इसीलिए दुनिया के साधु एक-दूसरे से नहीं मिल पाते। उनके बीच दीवाल खड़ी है। कौन सी दीवाल? गृहस्थ के बीच तो मकानों की दीवालें हैं, समझ में आता है। लेकिन साधुओं के बीच कौन सी दीवाल है जिनके कोई मकान नहीं हैं? गृहस्थों के बीच तो खैर मकानों की दीवालें हैं। पड़ोसी के पास कैसे जाएं? बीच में दीवाल है। लेकिन साधुओं के पास कौन सी दीवालें हैं?

लेकिन साधुओं के पास और सूक्ष्म दीवालें हैं। उनके अहंकार की दीवालें हैं। तो ये मिट्टी की दीवालें तो खोद कर फेंक दी जाएं आधा घंटे में, लेकिन अहंकार की दीवालों को खोदने में जन्म-जन्म लग जाते हैं। वे बहुत सूक्ष्म होकर पकड़ लेती हैं।

अहमता को सीधा नष्ट नहीं किया जा सकता। और जो अहंकार को सीधा नष्ट करने में लगेगा, वह भूल में पड़ जाएगा। अहंकार सूक्ष्म हो जाएगा, अचेतन हो जाएगा, अनकांशस हो जाएगा, भीतर बैठ जाएगा। उसके रास्ते ऊपर से दिखाई पड़ने बंद हो जाएंगे और उसकी जड़ें भीतर प्रविष्ट हो जाएंगी और वह पूरी आत्मा को ग्रसित कर लेगा, पूरी आत्मा को पकड? लेगा।

एक छोटी सी कहानी कहूं। उससे समझ में आएगा कि निर-अहंकारी आदमी से मेरा क्या अर्थ है। और फिर मैं समझाऊं कि कैसे निर-अहंकार उत्पन्न हो सकता है। तो शून्यता समझ में आ जाएगी।

एक गांव के बाहर एक युवा संन्यासी बहुत दिन तक ठहरा था। युवा सुंदर था। बहुत लोग उसे प्रेम करते और बहुत लोग उसे आदर करते। बहुत उसका सम्मान था और उसके विचार का बहुत प्रभाव था। बड़ी क्रांति की उसकी दृष्टि थी और जीवन में बड़ा बल था। और अचानक एक दिन सब बदल गया। वे ही लोग, जो गांव के उसे आदर करते थे, उन्हीं ने जाकर उसके झोपड़े में आग लगा दी; और वे ही लोग, जो उसके पैर छूते थे, उन्होंने ही जाकर उसके ऊपर चोटें कीं; और जिन्होंने उसे सम्मान दिया था, वे ही उसे अनादर देने को तैयार हो गए।

अक्सर ऐसा होता है। जो सम्मान देते हैं, वे सम्मान देने का बदला किसी भी दिन अपमान करके ले सकते हैं। इसलिए सम्मान करने वाले से बहुत डरना पड़ता है, क्योंकि वे उसका बदला चुकाएंगे किसी दिन। सम्मान देने में उनके अहंकार को चोट लगी है। किसी को सम्मान दिया है; किसी को ऊपर माना है। उनके बहुत गहरे तल पर तो उन्हें बहुत चोट लगी है। इसका बदला वे किसी भी दिन ले सकते हैं। कोई छोटी सी बात; इसका बदला वे ले सकते हैं। इसलिए उस आदमी से बहुत डरना पड़ता है जो सम्मान देता हो, क्योंकि किसी दिन वह पोटेंशियल अपमान करने वाला है। किसी भी दिन वह अपमान कर सकता है। वह किसी भी दिन बदला लेगा इस बात का।

एक व्यक्ति मेरे पास आए और उन्होंने मेरे पैर छुए। मैंने उनसे कहा, पैर मत छुएं, इसमें खतरा है।

वे बोले, क्या बात है?

खतरा केवल इतना है कि किसी दिन इसका बदला ले सकते हैं। आज पैर छुआ है, कोई छोटा सा मौका मिल जाए तो मेरे सिर को तोड़ने के लिए लकड़ी भी उठा सकते हैं।

उस युवा को बहुत सम्मान दिया था गांव के लोगों ने। फिर एक दिन सुबह जाकर उसका अपमान किया। बात यह हो गई, गांव में एक लड़की को बच्चा हो गया और उसने कहा कि वह संन्यासी का बच्चा है। स्वाभाविक था कि वे अपमान करते। स्वाभाविक था कि वे अपमान करते। बिलकुल ही स्वाभाविक था। अब इसमें कौन सी गड़बड़ थी? यह तो वे ठीक ही कर रहे थे गांव के लोग। वे उस बच्चे को ले गए और जाकर उस युवा संन्यासी के ऊपर पटक दिया। उस संन्यासी ने पूछा कि बात क्या है? क्या मामला है?

वे बोले कि मामला हमसे पूछते हो? यह बच्चे के चेहरे को देखो और पहचानो कि मामला क्या है! मामला तुम जानते हो। तुम नहीं जानोगे तो कौन जानेगा? यह बच्चा तुम्हारा है।

उस संन्यासी ने कहा, इज़ इट सो? ऐसी बात है? बच्चा मेरा है?

वह बच्चा रोने लगा तो वह संन्यासी उसको, उस बच्चे को चुप कराने में लग गया। गांव के लोग आए और गए। वे उस बच्चे को वहीं छोड़ गए। अभी सुबह थी। फिर उस बच्चे को लेकर वह गांव में भिक्षा मांगने गया, जैसे रोज गया था। लेकिन आज उसे कौन भिक्षा देता? वे जो सम्मान में करोड़ों दे सकते हैं, अपमान में रोटी का एक टुकड़ा भी नहीं दे सकते। कौन उसे रोटी देता? जहां वह गया, द्वार बंद कर दिए गए। जिस द्वार पर उसने

आवाज दी, वह दरवाजा बंद हो गया और लोगों ने कहा, आगे हो जाओ। और पीछे भीड़ थी।

एक बच्चे को लेकर किसी संन्यासी ने शायद जमीन पर कभी भीख न मांगी होगी। वह बच्चा रोता था और वह भीख मांग रहा था। वह बच्चा रो रहा था और वह संन्यासी हंस रहा था, उन लोगों पर जिनका इतना आदर था और जिनका इतना प्रेम था। वह उस द्वार पर भी गया, जिस घर का वह बच्चा था, जिस घर की बच्ची का वह लड़का था। उसने वहां भी आवाज दी और उसने कहा कि मेरी फिकर छोड़ दें, कसूर भी होगा तो मेरा होगा, इस बच्चे का कौन सा कसूर है? इसे कुछ दूध मिल जाए।

उस लड़की को सहना मुश्किल हो गया जिसका वह बच्चा था। उसने अपने पिता से कहा, मुझे क्षमा करें। मैंने झूठ बोला। उस संन्यासी का तो मुझसे कोई परिचय भी नहीं है। उस बच्चे के असली बाप को बचाने के लिए मैंने ऐसा कह दिया। मैंने सोचा था कि थोड़ा कुछ कहा-सुनी करके आप वापस लौट आएंगे। बात यहां तक पहुंच जाएगी, यह मेरी कल्पना के बाहर था।

घर के लोग घबड़ा गए कि यह क्या हुआ? यह तो बड़ी भूल हो गई। यह तो बड़ा मुश्किल हो गया। वे नीचे भागे आए, वे उसके पैर पर फिर गिर पड़े, उसके पैर पड़ने लगे, बच्चे को उसके हाथ से लेने लगे। उसने कहा, क्या मामला है? बात क्या है?

उन्होंने कहा, यह बच्चा आपका नहीं है।

उसने कहा, इज़ इट सो? ऐसी बात है कि बच्चा मेरा नहीं? आप ही तो सुबह कहते थे कि बच्चा आपका है!

यह आदमी है निर-अहंकार। लोगों ने उससे कहा, तुम कैसे पागल हो? सुबह क्यों नहीं कहा कि बच्चा मेरा नहीं है?

उसने कहा, क्या फर्क पड़ता था? बच्चा जरूर किसी का होगा! मेरा भी हो सकता है! यानी यह बच्चा किसी का तो होगा ही! कोई न कोई इसका बाप होगा ही! अब तुम मुझे तो गाली दे ही चुके, अब एक और आदमी को गाली दोगे। क्या फायदा? मेरा मकान जला ही चुके, अब एक आदमी का और जलाओगे। क्या फायदा है? तो मैंने कहा कि इसमें फर्क भी क्या पड़ता है! और अच्छा ही हुआ। तुम्हारे सम्मान, तुम्हारी श्रद्धा की भी मुझे गहराई पता चल गई। तुम्हारी बातों का भी मुझे मूल्य पता चल गया। अच्छा ही हुआ। इस बच्चे ने मुझ पर बड़ी कृपा की। मुझे कुछ बातें दिखाई पड़ गईं।

उन्होंने कहा, तुम बिलकुल ही पागल हो! इतना इशारा भर कर देते कि मेरा नहीं है, तो सब मामला बदल जाता।

उसने कहा, क्या फर्क पड़ता था? मेरी इज्जत ही बिगड़ रही थी न! तो क्या मैं इज्जत के लिए साधु हूं? रिसपेक्टबिलिटी के लिए? तुम्हारा आदर मिले इसलिए? तुम्हारे आदर-अनादर का भाव छोड़ा, उसी से तो मैं साधु हूं। तुम्हारे आदर-अनादर को विचार करके मैं कुछ करूं तो फिर मैं कैसा साधु हूं?

असल में भीतर मैं का भाव जिसका विलीन हो जाए, वही साधु है। और मैं का भाव विलीन हो जाना सीधा नहीं होता। कुछ और रास्ते से परोक्ष होता है, इनडायरेक्ट होता है। कैसे इनडायरेक्ट होता है? मैं के भाव को विलीन करने के लिए सबसे पहली साधना का अंग है--हम मैं को खोजें कि वह कहां है?

महर्षि रमण ने कहा है कि तुम पूछो कि मैं कौन हूं? मैं कहता हूं, यह मत पूछना। मैं यह कहता हूं कि पूछना कि मैं कहां हूं? अपने चित्त में खोजें हम कि मैं कहां है? अपनी देह में हम खोजें कि मैं कहां है? आपको कहीं भी मिलेगा नहीं। अगर आप शांत बैठ कर खोजें कि मैं कहां हूं? तो आप खोजते रहेंगे और कोई बिंदु नहीं मिलेगा जहां आपको लगे कि यहां मैं हूं। अपने भीतर खोज लेने पर कहीं मैं उपलब्ध नहीं होगा।

चीन में एक राजा था, वू। और भारत से एक संन्यासी चीन गया, बोधिधर्म। जब बोधिधर्म चीन पहुंचा तो वू उसका स्वागत करने को राज्य की सीमा पर आया। और उस वू ने कहा कि मैंने इतने-इतने विहार बनवाए; इतने मंदिर, भगवान की इतनी मूर्तियां प्रतिष्ठित की हैं; इतने-इतने संन्यासी, इतने-इतने भिक्षु मैंने तैयार किए; इतने विद्यालय खोले; इतना दान किया; इतना पुण्य किया; इस सबका क्या फल होगा?

बोधिधर्म ने कहा, फल पूछा, सब निष्फल हो गया। फल की कामना की, सब व्यर्थ हो गया। न वह दान है, न वह कुछ है; वह सब अधर्म हो गया। जहां फल की कामना है, वहीं अधर्म है, वहीं पाप है। यह पूछा कि सब निष्फल हो गया। चुप रह जाते, न पूछते, न भीतर भाव उठता, तो बहुत फल था।

वू ने कहा, बोधिधर्म आदमी अदभुत मालूम होता है। शायद इससे कुछ हो। उसने कहा, मेरा मन बहुत अशांत है। क्या कोई रास्ता हो सकता है कि मेरा मन शांत हो जाए?

बोधिधर्म ने कहा, सुबह चार बजे आ जाना अकेले में। शांत कर देंगे।

और भी हैरान हुआ कि अजीब संन्यासी है। बहुत से संन्यासियों से पूछा, तो वे बातचीत तो बहुत करते हैं, कोई यह नहीं कहता कि शांत कर ही देंगे। जब वह उतर कर जाने लगा, सीढ़ियों पर था, तो बोधिधर्म ने कहा कि सुन, मन को खयाल से साथ ले आना, घर मत भूल आना! और नहीं तो अकेले खाली हाथ आ जाओ तो मैं किसको शांत करूंगा? मन को साथ ले आना तो मैं शांत कर दूंगा। नहीं तो बस सुबह आ जाओ। कई पागल मेरे पास आते हैं कि मन शांत करना है। मैं उनसे कहता हूं आ जाना, तो वे खाली हाथ आ जाते हैं। वे मन को लाते ही नहीं। देख, मन को साथ लेते आना।

वह वू और भी हैरान हुआ। कि मैं जब आऊंगा तो मन तो आएगा ही। इसमें पूछने और कहने की क्या बात है?

सुबह वह बहुत सोचा-विचारा और आया। जब वह आया तो आते से ही बोधिधर्म ने कहा, लाए? मन ले आए?

वह बोला, आप कैसी बातें करते हैं? मन तो मेरे साथ है।

तो उसने कहा, आंख बंद करो और खोजो--कहां है? अगर वह स्थान मिल जाए जहां मन है, तो मैं शांत कर दूंगा। अब तुम मन को ही न पकड़ सको, तो मैं क्या करूंगा?

उसने बहुत खोजा। जैसे ही उसने आंख बंद की और वह खोजने में लगा, उसने पाया, वहां तो कोई मन मिलता नहीं। उसने बहुत खोजा, बहुत खोजा, वहां कोई मन न था और एकदम सन्नाटा था। उसने आंख खोली, उसने कहा, मैं बड़ी मुश्किल में हूं, वहां तो कुछ मिलता नहीं।

तो बोधिधर्म ने कहा, हो गया शांत। जो मिलता ही नहीं वह अशांत कैसे होगा?

असल में तुमने कभी भीतर जाकर नहीं देखा। तुम्हारा बाहर होना ही तुम्हारे मन की उत्पत्ति है और अगर तुम भीतर जाकर खोजो तो वहां कोई मन नहीं है। हमारा बाहर होना हमारे मैं की उत्पत्ति है। अगर हम भीतर जाकर खोजें, वहां कोई मैं नहीं है, वहां कोई अहमता नहीं है। हमारे बाहर होने की छाया से, शैडो, चूंकि हम चौबीस घंटे बाहर दौड़ रहे हैं, तो एक छाया उत्पन्न होती है और उस छाया से मैं का पता चलता है।

आपने देखा होगा, रास्ते पर आप जाएं तो एक छाया आपके पीछे दौड़ती हुई मालूम पड़ेगी। लेकिन आपको पता है क्या कि जिस क्षण आपने पहला कदम सड़क पर रखा, जो छाया आपके पीछे चली, वही छाया घंटे भर बाद भी आपके पीछे है? वही छाया पीछे नहीं है। छाया प्रतिक्षण दूसरी बनती जा रही है। छाया कहां आपके पीछे जाएगी? छाया तो प्रतिक्षण दूसरी किरणें आप पर पड़ रही हैं, इसलिए दूसरी छाया बनती जा रही है। आप एक इंच हटते हैं कि दूसरी छाया बनती है। वही छाया नहीं है जो आपने पहली दफा देखी। घंटे भर आप यात्रा करते हैं तो हर क्षण दूसरी छाया बनती जाती है। लेकिन घंटे भर बाद आप कहते हैं कि मेरी छाया मेरा पीछा कर रही है। बिलकुल झूठी बात। छाया वह है ही नहीं। छाया हर क्षण नई होती जा रही है। कोई छाया आपका पीछा नहीं कर रही है। वह तो आप धूप में खड़े हैं इसलिए हर क्षण छाया बन रही है। आप आगे हट जाएंगे, दूसरी छाया बन जाएगी; और आगे हटेंगे, तीसरी छाया बनेगी। आप बढ़ते जाते हैं, छाया बनती जाती है। छाया आपका पीछा नहीं कर रही है।

ऐसे ही जीवन के व्यवहार में और बाहर के जगत में हम निरंतर सक्रिय हैं। उस सक्रियता से एक छाया बनती है जो प्रतिक्षण बदलती जा रही है। लेकिन उसका प्रतिक्षण बदलना हमें दिखाई नहीं पड़ता और हमें एक भ्रम पैदा होता है कि मैं हूं। मैं होने का भ्रम, मैं होने का भाव, बाहर के जगत में हमारा जो संबंध है उससे पैदा हुई छाया है। यह मैं हम पकड़ लेते हैं। इसे भीतर खोजें, भीतर कोई मैं नहीं मिलेगा। भीतर कितना ही खोजें, कोई मैं नहीं मिलेगा। वहां कोई छाया नहीं है। वहां कोई क्रिया नहीं है। वहां किसी से कोई संबंध नहीं है। वहां कोई सूर्य नहीं है जिससे कि छाया बन जाए। घर के बाहर निकलते हैं, छाया बन जाती है। घर के भीतर आते हैं, छाया विलीन हो जाती है।

एक आदमी घंटे भर बाहर घूमता रहे, फिर घर में आकर किसी से कहे, एक छाया मेरा पीछा कर रही है। तो वह कहेगा कि बताओ कहां है? घर के भीतर कोई छाया नहीं है। घर

के बाहर छाया है। दूसरों से संबंधित होने से जो छाया पैदा होती है, रिलेशनशिप से जो छाया पैदा होती है, वही मैं का भाव है।

जब मैं आपको देखता हूं, तो मुझे लगता है, आप हैं। जब मैं आपको देखता हूं, मुझे लगता है, आप हैं। जब मैं सारी दुनिया को देखता हूं, मुझे दिखता है कि यह सब है। इस सबकी वजह से मुझे लगता है, मैं हूं। मैं का जो छायाभाव है, वह तू की वजह से पैदा हो जाता है। जहां तू है, वहां मैं है। लेकिन अगर मैं भीतर जाऊंगा, वहां तो कोई तू नहीं है, तो वहां मैं कैसे हो सकता है? मेरी आप बात समझ रहे हैं? जब मैं तू के सामने खड़ा हूं तो तू की वजह से मैं का भाव पैदा हो रहा है कि मैं हूं। और जब मैं भीतर जाऊंगा तो वहां तो कोई तू नहीं है। तो वहां जब कोई तू नहीं है तो मैं कैसे पैदा होगा? तू के न होने से मैं पैदा नहीं होता। वहां मैं नहीं है। लेकिन हम जीवन भर बाहर बिता देते हैं। इसलिए लगता है कि मैं हूं।

और फिर यह जो मैं बिलकुल ही काल्पनिक है, यह जो मैं तू की वजह से तू के रिएक्शन में, उसकी प्रतिक्रिया में पैदा हुआ; यह जो बाहर के संबंधों से पैदा हुई छाया है, इस छाया को हम बढ़ाने में लग जाते हैं। इसे बड़े पद पर होना चाहिए, बहुत धन होना चाहिए, इसके पास बड़ा मकान होना चाहिए, इसके पास यह होना चाहिए, वह होना चाहिए। इस मैं को, जो कि बिलकुल काल्पनिक और झूठा है, जो कि केवल एक प्रतिध्वनि है तू की, उस प्रतिध्वनि को सम्हालने में जीवन लगा देते हैं। निश्चित ही आप असफल हो जाएंगे। कोई आदमी अपनी छाया को वस्त्र पहनाने में लग जाए; कोई आदमी अपनी छाया के लिए मकान बनाने में लग जाए; कोई आदमी अपनी छाया के लिए धन इकट्ठा करने में लग जाए; आखिर में पाएगा कि सब पड़ा रह गया, छाया नहीं है। और तब जो दुख और पीड़ा मन को पकड़ती है, वही संताप है, वही असंतोष है, वही असफलता है, वही फ्रस्ट्रेशन है।

मैं यह जो कह रहा हूं कि यह जो तू से पैदा हुई मैं की छाया है, इसको भीतर जाएं और देखें। यह मत पूछें कि मैं कौन हूं? यह पूछें कि मैं कहां हूं? आप बहुत खोजेंगे और पाएंगे कि मैं तो कहीं भी नहीं है। और अगर मैं कहीं भी नहीं है तो आपके जीवन में एक क्रांति हो जाएगी। मैं को भरने के सब उपाय व्यर्थ मालूम होने लगेंगे। मैं के लिए पद और मैं के लिए धन और मैं के लिए त्याग व्यर्थ हो जाएंगे। जो है नहीं, उसके लिए कुछ भी करना व्यर्थ हो जाएगा। मैं से ज्यादा असत्य, मैं से ज्यादा झूठ, मैं से ज्यादा भ्रामक और कोई बात नहीं है। उससे ज्यादा इल्यूजरी और कुछ भी नहीं है। मैं ही एकमात्र माया है। और अगर मैं शून्य हो गया, नहीं पाया गया, तो क्या होगा? तो जिसके दर्शन होंगे, वही सत्य है, वही आत्मा है, वही परमात्मा है। मैं की छाया के विलीन हो जाने पर जिसके दर्शन होंगे, वही है--वही है सत्य; वही है मेरा स्वरूप; वही है आत्यंतिक रूप से मेरा होना, मेरा बीइंग, मेरा आथेंटिक बीइंग, मेरी वास्तविक सत्ता, मेरी आत्मा। और यह मैं शून्य करने के लिए आपको धन छोड़ने की, वस्त्र बदलने की नहीं, आपको खोजने की जरूरत है कि मैं है भी? जिस मैं को आप छोड़ने जा रहे हैं, अगर वह है ही नहीं, तो पागलपन हो जाएगा।

जानना है कि मैं है? अगर मैं नहीं है, तो छोड़ने का कोई प्रश्न नहीं है। इसलिए मैंने कहा, अहंकार छोड़ने का कोई प्रश्न नहीं है। छोड़ने वाला और अहंकार से भर जाएगा। वह तो छाया से लड़ रहा है। वह तो जो नहीं है, उससे लड़ रहा है। जो नहीं है, उसको हराया नहीं जा सकता लड़ कर। जो नहीं है, उससे तो हारना ही पड़ेगा। मेरी आप बात समझ लें। जो नहीं है, अगर उससे लड़ने चले, तो हारना ही पड़ेगा। क्योंकि जो नहीं है, उसे हराया तो जा ही नहीं सकता। अंत में आप पाएंगे कि आप हार गए हैं। जो नहीं है, उससे लड़ना व्यर्थ है। असल में जानने की जरूरत है कि है भी? इसके पहले कि मैं सोचूं कि मैं निर-अहंकार हो जाऊं, मुझे जानना चाहिए: अहंकार कहां है? है कहीं?

जो शांत होकर भीतर खोजते हैं, वे पाते हैं, नहीं है। ध्यान में, शांति में, सरल चित्तता में कोई अहंकार नहीं पाया जाता है। और इसलिए जब नहीं पाया जाता है तो जीवन में एक क्रांति हो जाती है। जो चर्या अहंचर्या थी, वही चर्या ब्रह्मचर्य बन जाती है। जहां अहंकार पर केंद्रित होकर हम सब करते थे, वहीं विलीन हो गया वह केंद्र, दुनिया बदल गई, हम दूसरे आदमी हो गए, दूसरे व्यक्ति का जन्म हो गया। अब जो चर्या होगी, वह ब्रह्मचर्य होगी। अब अहं उसका केंद्र नहीं होगा, अब ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा उसका केंद्र होगा। और अब हम जो कर रहे हैं, वह किसी अहंकार की पूर्ति के लिए नहीं होगा, अब तो वह केवल आत्म-दान है, अब तो केवल वह विसर्जन है, बांटना है।

अहंकार इकट्ठा करता है, निर-अहंकार बांटता है। इसलिए निर-अहंकारिता में जो भी कृत्य हैं, उन सबको मैं दान कहता हूं। और अहंकार से भरे हुए जो कृत्य हैं, उनमें कोई भी दान नहीं हो सकता। वह सब मांग है। वह सब मांग रहा है आदमी। अहंकार वाला मांगता है, निर-अहंकार वाला देता है।

इसलिए जब तक अहंकार आपको प्रतीत होता है, तब तक आप दान नहीं कर सकते। तब दान में भी मांग बनी ही रहेगी। एक मंदिर बनाएंगे तो खयाल रहेगा कि शायद स्वर्ग में इसका कोई प्रतिफल। एक साधु को भोजन करा देंगे, एक भिक्षु को दान दे देंगे तो मन में होगा कि इसका कोई पुण्य, इसका कोई फल अगले जन्म में वसूल करना है। फिर आप जो भी करेंगे। अगर आप त्याग करेंगे तो भी मन में यह भाव रहेगा कि मोक्ष पाना है। यानी आपका जब तक अहंकार शेष है, तब तक आप कुछ भी करें, उसके पीछे मांग मौजूद बनी रहेगी, उसके पीछे लाभ की दृष्टि बनी रहेगी, उसके पीछे पाना बना रहेगा।

अहंकार के बिना हुए कोई व्यक्ति किसी तरह का दान नहीं करता। और निर-अहंकार हो जाने पर सिवाय दान के कुछ हो ही नहीं सकता है। जो भी होगा, वह दान ही होगा। क्योंकि मांगने वाला मौजूद ही नहीं रहा। अब सिर्फ विसर्जन है और बांटना है। इसे मैं शून्यभाव कहता हूं। शून्यभाव ही संन्यास है। मैं का शून्य हो जाना ही तीसरा चरण है। और मैं को आप खोजें, तो आप पाएंगे कि मैं नहीं है, मैं शून्य हो जाता है।

ऐसे तीन चरणों की मैंने आपसे बात की: चित्त की स्वतंत्रता, चित्त की सरलता और चित्त की शून्यता।

अगर इन तीनों को, अगर इन तीन रत्नों को जीवन में जगह मिल जाए तो इन तीनों से जो इकट्ठा रूप पैदा होता है, उसका नाम समाधि है। और समाधि सत्य का द्वार है। समाधि स्वयं का द्वार है। और समाधि परम जीवन का द्वार है। उससे ही अमृत के और आलोक के और आनंद के दर्शन होते हैं। उसे पाकर ही व्यक्ति कृतार्थ होता है और धन्य होता है। उसे जिसने नहीं पाया, वह समझे कि वह मृत है। उसे जिसने नहीं पाया, वह समझे कि वह कब्र में है। उसे जिसने नहीं पाया, तो वह समझे कि उसका कोई जीवन नहीं है। वह व्यर्थ है। उसका जीवन बिलकुल व्यर्थ है। उसमें कोई अर्थ नहीं, कोई सार्थकता, कोई कृतार्थता नहीं।

अपने जीवन को सार्थकता और कृतार्थता तक ले जाने का जो मार्ग है, उसको ही मैं धर्म कहता हूं।

धर्म समाधि का अर्थ रखता है। धर्म और समाधि एक ही बात है। क्योंकि धर्म वही है जो मेरा स्वरूप है और समाधि से उसका दर्शन, उसका साक्षात, उसकी प्रतीति होती है।

धन्य हैं वे थोड़े से लोग जो समाधि को उपलब्ध होते हैं। वे ही हैं, बाकी हम नहीं हैं। हम छायाएं मात्र हैं। जिसका विश्वास छाया में है, शैडो में है, वह छाया मात्र है। जिसका विश्वास प्रतिध्वनि में है, दंभ में, अहंकार में है, वह छाया मात्र है। उस छाया में विश्वास मत कर लेना। उस छाया को मत पकड़ लेना।

और छाया को पकड़ने के दो ढंग हैं--एक तो भोगी छाया को पकड़ता है, वह छाया के लिए भोग की तलाश करता है। और फिर भोगी की प्रतिक्रिया में त्यागी है, वह छाया के लिए त्याग की व्यवस्था करता है। दोनों पागल हैं। क्योंकि जो छाया है, न उसका कोई भोग सार्थक है, न उसका कोई त्याग सार्थक है।

छाया को जान लेने से छाया विसर्जित हो जाती है। वहां न कोई भोग है, न कोई त्याग है; न कोई पकड़ है, न कोई छूट है। उस स्थिति को ही वीतराग कहा है। जहां राग है, वहां भी छाया पर विश्वास है; जहां विराग है, वहां भी छाया पर विश्वास है। जो आदमी धन को इकट्ठा कर रहा है, वह भी धन को मानता है; जो धन को छोड़ रहा है, वह भी धन को मानता है। जो स्त्री के पीछे जा रहा है, वह भी स्त्री को मानता है; जो स्त्री को छोड़ कर भाग रहा है, वह भी स्त्री को मानता है। ये दोनों ही मानते हैं। एक रागी है, एक विरागी है। एक छाया के पीछे जा रहा है, एक छाया से भाग रहा है। लेकिन दोनों का विश्वास छाया में, शैडो में है। उस मैं में है, जो कि है नहीं। और इसलिए दोनों गलत हैं। सही तो वीतराग है।

वीतराग का अर्थ है: जहां न राग है, न विराग है। वहां छाया विसर्जित हो गई है। न किसी के पीछे जाना है, न किसी से भागना है। जो आदमी किसी के पीछे जा रहा है, वह भी अपने से दूर जा रहा है। जो आदमी किसी से भाग रहा है, वह भी अपने से दूर भाग रहा है। जो न किसी के पीछे जा रहा है और न किसी से भाग रहा है, वह अपने में है। अपने में

होना सत्य है; अपने में होना धर्म है; अपने में होना आत्मा में होना है; अपने में होना परमात्मा को पा लेना है।
ये थोड़ी सी बातें इन तीन दिनों में मैंने कही हैं। हो सकता है कोई बात आपके भीतर बीज बन जाए। हो सकता है कोई बात आपके भीतर कोई अंकुर लाए। हो सकता है कोई बात आपके लिए दृष्टि बन जाए। वह दृष्टि बने, इसके लिए परमात्मा से प्रार्थना करता हूं।

मेरी बातों को इतने प्रेम से, इतनी शांति से सुना है, उसके लिए जितना अनुग्रह मानूं, उतना थोड़ा है। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।